प्रकाशक—
श्री उमाशंकर त्रिवेदी
व्यवस्थापक—सामयिक साहित्य-सदन,
चेम्बरलेन रोड, लाहौर।

प्रथम संस्करण—१९४४
मूल्य ३॥)

मुद्रक—
ला० खुशहाल चन्द 'आनन्द'
वीरमिलाप प्रैस, लाहौर।

उन साथी लेखकों को जिनके सहयोग बिना यह संग्रह हिन्दी के आधुनिक कथा-साहित्य का प्रतिनिधित्व करने में कभी समर्थ न हो पाता।

सूची

वर्जित प्रदेश

सच्ची कल्पना

[चन्द्रशेखर नागर]

(१)

नरेन्द्र ने फिर कलम उठाई। अभी-अभी एक घण्टा पहले उसकी विचार-धारा टूटी थी। बरामदे में बैठे-बैठे आधा दर्जन सिगरेट फूँक लेने के बाद विचारों का टूटा हुआ सिल-सिला बड़ी मुश्किल से जुड़ा था। उसका कमरा बीच चौक के एक दोमंजिले मकान में था। नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद, इक्के-ताँगों और मोटरों का शोर, खोंचेवालों की लुभावनी आवाज़, भिखारी की करुण पुकार, पुलिसमैन की डपट, मालदार लाला की शान, जेब काटे जाने पर राहगीर की चिल्लाहट, म्युनिसिपैलिटी के कारिंदे की मुनादी—सुनो हुकुम-सरकार बहादुर का—दवाफ़रोश का लच्छेदार जोशीला लेक्चर, यह सब सुनने और देखने का वह अभ्यस्त हो गया था।

होली का दिन था। चारों तरफ अबीर-गुलाल, रङ्ग-कीचड़ से शराबोर नीले-पीले-काले चेहरे दिखाई पड़ रहे थे। उसके मकान वाले अन्य किरायेदार भी खूब खुलकर खेल रहे थे। बगल के मकान वाले वकील साहब की छोटी लड़की पिचकारी लेकर होली खेलने की नीयत से उसके कमरे में आई,

पर उसकी लाल-लाल आँखे और भारी-भरकम चेहरा देख वह उल्टे पाँव भाग खड़ी हुई।

नरेन्द्र ने उठकर किवाड़ बन्द कर लिए और फिर बरामदे में जा बैठा। चिक उसने गिरा दी और सिगरेट के धुएँ से बनकर उड़ती हुई तरह-तरह की आकृतियों का अध्ययन करना शुरू कर दिया। उसने ज़ोर से सिगरेट का एक कश खींचा और धीरे-धीरे मुँह गोलाकार बनाकर धुआँ निकाला। धुआँ ऊपर उड़ा—ऊपर, और ऊपर। फिर धीरे-धीरे ऊँचे जाकर न जाने कहाँ विलीन हो गया।

धुएँ का अनुकरण करते-करते उसकी दृष्टि आकाश मे पहुँच गई। बादलों के झुंड के झुंड उड़े चले जा रहे थे। कहाँ जा रहे थे, क्यों जा रहे थे, क्या उन्हे करना था—कुछ ठिकाना नही। उसने कागज़ पर कलम दौड़ानी शुरू की। शून्य के आकार की एक शकल बनी। उसने लिखा—दुनिया एक रंग-मंच है। जीवन एक नाटक है। आदम और हौवा के करोड़ों-अरबों प्रतिनिधि इस नाटक के अभिनेता और अभि-नेत्रियाँ हैं। उनके जीवन के खेल का प्रथम अंक शुरू होता है। नौ मास तक गर्भ मे रहकर एक बीज उगा। खुली वायु में साँस लेकर वह पौधा पनपा। बड़ा हुआ। माली न जी-जान से उसे सींचना शुरू किया। वह बढ़ चला। उसके कई साथी और हो गये। पर फिर भी उसे चैन न पड़ा। एक दिन एक मंडप में अग्नि के सामने परिक्रमा लगाकर, नाना प्रकार के राग-रङ्ग में

लिप्त हो, वह अपने लिये एक साथिन ले आया। उसे घर की चहारदीवारी मे क़ैद कर दिया। समय बीता। दो से फिर तीन हुए। गृहस्थी का पेड़ फलने-फूलने लगा।

नरेन्द्र ने पृष्ठ उलट दिया और एक नया शीर्षक लिखा—जन्म और प्रजनन। उसने लिखना शुरू किया—जिसका आदि है, उसका अन्त भी है। शून्य के बाद इकाई और इकाई के बाद शून्य आता है, यही परम्परा है। सृष्टि के आदि से यही नियम चला आया है। एक दिन सब का अन्त होगा। सब को इस गति को प्राप्त होना है। स्वयं विश्वकर्मा भी इससे नही बच सकते। एक दिन उनका भी अन्त होगा और इस महानाश के बाद बचेगा केवल एक शून्य। शून्य का ही आधिपत्य समस्त विश्व में होगा।

नरेन्द्र की विचार-धारा चल रही थी कि पड़ोस में रोने-चीखने की हृदय-विदारक आवाज़ सुनाई पड़ी। उसका ध्यान भङ्ग हो गया। उठकर वह कमरे से बाहर निकल आया। मालूम हुआ, पड़ोसी का जवान पुत्र, जिसकी अभी एक महीना पहले ही शादी हुई थी, पत्नी का सुहाग धूल में मिला, उसे अकेली तड़पने के लिये छोड़ दूसरे लोक में चला गया।

नरेन्द्र अपने कमरे में चला आया। सहानुभूति के दो शब्द भी वह न कह सका। लपककर उसने कलम उठाई और लिखा—मृत्यु, जीवन का अंत। इसके बाद क्या है, कुछ भी तो नहीं—केवल एक शून्य। मनुष्य जन्म लेकर आता है, खाता

है, खेलता है और एक दिन, लगातार घिसते, चलते और रगड़ खाते-खाते वह खत्म हो जाता है। तो जन्म-प्रजनन और मृत्यु की इस क्रिया का नाम ही जीवन है।

नरेन्द्र की कलम कागज़ पर सरपट दौड़ लगा रही थी। सहसा उसे अपने पेट मे एक अजीब प्रकार की कुड़कुड़ाहट महसूस हुई। कल रात से उसने कुछ नही खाया था और आज त्यौहार के दिन भी वह ख़ाली पेट ही था। पेट की आग बुझाने के लिए उसने कुछ पाने की आशा मे अपनी जेबे टटोलनी शुरू की। सन्दूक की तलाशी ली। कमरे का चप्पा-चप्पा छान मारा। आधे घण्टे की मेहनत के बाद उसे ताक मे रखी एक इकन्नी मिली। लपक कर उसे उठा लिया। दौड़ा हुआ बाज़ार गया। चार पैसे के चने उसने खरीदे। रास्ते भर उन्हे चबाता, कुटकता और सोचता घर वापस आया। आकर उसने लिखा—अपने क्षण-भंगुर जीवन मे मनुष्य न जाने कितने पाप और पुण्य करता है। पाप करता है वह पेट के लिए और पुण्य करता है उस पाप का निवारण करने के लिए। सर्वत्र पाप की ही प्रधानता है और यह सब पेट ही कराता है। यह नाना प्रकार के रसना-लिप्सा के पदार्थ, यह छल-कपट, यह आडम्बर, यह टीमटाम, व्यापार, नौकरी-धन्धा, कल-कारख़ाने, दौड़-धूप, झूठ सच, डाक्टर-हकीम, सिनेमा-नाटक, मकान-बंगले, मोटर-गाड़ी, थाना-कचहरी, यह सब क्या है, क्यों है—पेट भरने के लिए ही तो। अगर पेट न हो और इस पेट मे यह भूख नाम

की वस्तु न हो तो फिर इन चीजों का अस्तित्व ही क्या रह जाता है।

नरेन्द्र ने लेखनी को विश्राम दिया। पेट मे पहुँचे हुए चनों ने अपना असर किया। आँखों में नींद उतराने लगी। होली के दीवाने भड़ए अभी भी गुलगपाड़ा मचा रहे थे। वह वही बरामदे मे पड़ गया। एक सिगरेट उसने जलाई और एक कश लेकर उसे रख दिया। धुआँ अपनी प्रकृति के अनुसार धीरे-धीरे ऊपर उड़ने लगा। उसे ही देखते-देखते उसकी आँख लग गई। उसकी एक विचार-धारा लिपि-बद्ध हो उसके सिरहाने पड़ी थी। दूसरी सपने में शुरू हो गई।

(२)

धुएँ की शकल मे उसे एक बड़ी डरावनी छाया दिखाई पड़ी। उसके चार हाथ थे। कई सिर थे। कई आँखें थी। वह छाया धीरे-धीरे उसके पास आ गई। उसकी आँखों पर उस छाया ने पट्टी बाँधी और अपने कन्धों पर लाद कर उसे ले चली। चलते-चलते, उड़ते-उड़ते, वह छाया एक विशाल पुरी के द्वार पर रुकी। उसकी पट्टी खोल दी गई।

चौंधियाई आँखों से नरेन्द्र ने वह दृश्य देखा। छाया अब एक सुन्दर पुरुष के रूप में बदल गई थी। वह नरेन्द्र को साथ लेकर एक विशाल भवन में आई। नरेन्द्र ने देखा कि विशाल रत्न-जड़ित सिंहासन पर एक अत्यन्त तेजस्वी देवमूर्त्ति बैठी है। उसके चारों तरफ असंख्य दूत-सामन्त आदि कर-बद्ध-

खड़े हैं। उस देवमूर्त्ति ने नरेन्द्र पर एक अवहेलनापूर्ण निगाह डाली। फिर दूत से पूछा—"यह कौन है ?"

दूत ने नतमस्तक होकर कहा—"भगवन्, यह मृत्यु-लोक का निवासी एक निर्धन लेखक है। शून्य और इकाई के चक्कर मे फँसकर परम्परागत सृष्टि के नियमों की यह विवेचना कर रहा था। मैंने सोचा, यह अबोध है। इसकी आँखें खोल देनी चाहिएँ। इसके विचार अभी अपरिपक्व हैं। केवल कल्पना के आधार पर ही यह भगवान् विश्वकर्मा के कृत्यों की आलोचना करने की धृष्टता कर रहा था।"

भगवान् सुनकर थोड़ा मुस्कराये और दूत से कहा—"तुमने अच्छा किया जो इसे यहाँ ले आये। सरस्वती के उपासक को मैं लक्ष्मी नहीं देता। यह दरिद्र है और लेखक है। लेखकों का यह वर्ग प्रेम-रोमांस और सस्ती कल्पना के पङ्ख लगाकर साहित्य-वाटिका के इर्द-गिर्द मँडराया करता है। जीवन के यथार्थ चित्रों को खींचने की चेष्टा नहीं करता। इसे ले जाओ और देवी सरस्वती से आज्ञा लेकर कुछ यथार्थ चित्र दिखलाओ। तभी इसकी आँखे खुलेंगी और इसके बाद जिस साहित्य का सृजन यह करेगा, वही सत्य, शिव और सुन्दर होगा।"

दूत ने फिर नरेन्द्र की आँखों पर पट्टी बाँधी और कन्धे पर लादकर ले चला। चलते-चलते, उड़ते-उड़ते, उसने नरेन्द्र को उतारा। फिर उसकी पट्टी खोलते हुए कहा—"देखो, यह शस्य-श्यामला बंगाल की भूमि है। यह शरत् और रवीन्द्र का

देश है। यहाँ के भावुक युवक इसे 'सोनार बंगाल' कहकर पुकारते हैं। देखो यहाँ की स्थिति। अध्ययन करो यह यथार्थ साहित्य!"

नरेन्द्र ने देखा—शहर में चारों तरफ त्राहि-त्राहि मची हुई है। जिधर निकल जाओ, उधर कङ्काल ही कङ्काल दिखाई पड़ते हैं। एक तङ्ग गली से वह गुज़र रहा था कि चार से आठ वर्ष तक की उम्र के हड्डियों के आध दर्जन ढाँचों ने उसे घेर लिया। उनकी आँखों से अजीब प्रकार की करुणा फूटी पड़ती थी। पास ही उसने देखा कि अर्धनग्न और अचेतावस्था मे एक माता अपने बच्चे को सूखे स्तनों से चिपकाये पड़ी है। जीवन का मोह अभी तक नही छूटा है। उससे लगभग तीन फ़ीट की दूरी पर एक कूड़ा-करकट डालने का बड़ा टिन पड़ा था। उसके पास किसी ने हाल ही मे वमन किया था। वमन की बदबू से उसका मस्तिष्क जैसे फटा जाने लगा। उस घिनौने दृश्य को देखकर वह आगे बढ़ जाना ही चाहता था कि उन छोटे-छोटे कंकालों ने वमन मे छितराये अन्न के टुकड़े बीन-बीन कर खाना शुरू कर दिया।

आँखों को अपने हाथों से ढँककर नरेन्द्र उस गली से भाग खड़ा हुआ। यह दूत अब उसे दूसरे मुहल्ले में ले गया। यहाँ नरेन्द्र ने देखा मानवता का और भी भीषण रूप। कच्चे घर में एक भिक्षुक-परिवार बिना अन्न और वस्त्र के इन्सानियत को शर्म से झुक जाने की चुनौती दे रहा था। उसके झोंपड़ी

में प्रवेश करते ही एक शृगाल आहट पा सर्र से निकल भागा। परिवार के दो सदस्य दम तोड़ चुके थे। तीसरा अन्तिम साँसें ले रहा था। शृगाल उन्ही मे से एक के पैर का चर्वण कर रहा था।

नरेन्द्र एक क्षण भी वहाँ खड़ा न रह सका। तुरन्त ही बाहर निकल आया। दूत से उसने गिड़ गिड़ाकर प्रार्थना की—"अब बस करिये। बहुत देख चुका। मेरी आँखें खुल गईं। सच्चा साहित्य मैंने देख लिया। अब जो भी लिखूँगा, वह केवल मिथ्या कल्पना का आधार-भूत न होगा।"

एक फीकी हँसी अपने होंठों पर लाते हुए दूत ने उत्तर दिया—"अभी बहुत कुछ बाकी है। उसे भी लगे हाथ देख डालो। अनुभव करने का ऐसा अवसर फिर हाथ नहीं आयेगा।"

लाचार नरेन्द्र फिर छाया के साथ हो लिया। अब एक साफ से मुहल्ले मे पहुँचा। दूत ने बताया—"यहाँ अधिकांश मध्य श्रेणी के लोग रहते हैं। कुछ क्लर्क हैं। कुछ नौकरी-धन्धा आदि करते है। जरा इनकी परिस्थिति का भी अध्ययन करो। भिखारी फुटपाथ पर मर सकते हैं, पर इनके लिए वहाँ भी स्थान नही है। यह परिवार वाले है। समाज में इनका स्थान है, प्रतिष्ठा है। ये भीख भी नहीं माँग सकते। एक क्लर्क मुश्किल से तीस से चालीस रुपये मासिक तक कमाता है उन तीस-चालीस रुपयों पर पाँच-पाँच, छः-छः प्राणियों की रोटियाँ निर्भर करती हैं। सोच सकते हो, कैसे ये लोग गुजर

करते हैं । एक समय आधा पेट चावल खाकर—बहुधा वह भी नहीं । जाओ और देखो मानवता का भीषण ताण्डव-नृत्य !

रात्रि का समय हो चला था । नगर में सर्वत्र ब्लैक-आउट का साम्राज्य था । एक बड़े मकान की ओर नरेन्द्र चला । सीढ़ी के पास पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि कोई उसके पीछे-पीछे आ रहा है । उसने सावधानी से घूमकर देखा तो एक क्षीणकाय वृद्ध पुरुष दाँत निकाले उसके आगे हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया । नरेन्द्र ने कुछ भय और विस्मय के साथ पूछा—"क्या चाहते हो ?"

क्षीण स्वर में वह बोला—"अज्ञे बाबू, आज दू दिन थेके आमि किछु खाई नी । शुधू एकटू भात चाई—दया करे आमार बाड़ी ते चौलून...कि बोलवो आपना के...बड़ो लज्जार विषय...एकटे चमत्कार मेये-छेले आचे...जदि ओर संगे एकटू अलाप करे...!"

नरेन्द्र उस के साथ हो लिया । एक छोटी-सी कोठरी में उसने पाँव रखा । लालटेन की धीमी रोशनी में उसने देखा कि कमरे के एक कोने में एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की गोरी-सी लड़की सिकुड़ी बैठी है । उसके प्रवेश करते ही वह ज़रा सँभल कर बैठ गई । वृद्ध ने अवसर देखा और चुपचाप खिसक गया ।

नरेन्द्र ने किवाड़ बन्द किये और वहीं ज़मीन पर बैठ-

गया। कमरे में चारों तरफ़ उसने नज़र दौड़ाई। एक रस्सी पर दो फटी हुई साड़ियाँ—एक कुर्त्ता और एक अँगोछा झूल रहे थे। सामने ताक पर काली की एक प्रतिमा रखी थी। उस की बगल में एक अधेड़ पर सुन्दर स्त्री का चित्र टँगा हुआ था। उसने लड़की के चेहरे से उस चित्र को मिला कर अनुमान लगाया कि वह इसकी माँ है। इस बार लड़की को उसने ग़ौर से देखा। गौरवर्ण, बड़ी-बड़ी गड्ढे में धुसी हुई आँखें, दुर्बल शरीर और कान्तिहीन-चेहरा। देखने से मालूम पड़ता था कि कई दिनों से उसे खाना नसीब नहीं हुआ है।

नरेन्द्र ने उसे अपने पास बुलाया। वह उठी। उस ने एक क़दम आगे रखा ही था कि लड़खड़ाकर गिर पड़ी। नरेन्द्र ने उसे सँभालने का प्रयत्न किया, किन्तु स्वयं भी अपना संतुलन खो बैठा। दोनों एक-दूसरे पर लड़खड़ाकर गिर पड़े। कमरे में एक ज़ोर का धमाका हुआ। लड़की के हाथ की चूड़ियाँ टूटकर धरती पर बिखर गईं!

(३)

नरेन्द्र का सपना टूट गया। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसने देखा—न कोई लड़की उस के पास थी, न वह वृद्ध मनुष्य, न वह कलकत्ते के भयावह दृश्य, न वह छाया ही कहीं दीख पड़ती थी। अरे, वह सपना देख रहा था। पर यह कैसा सपना था? ऐसा भयंकर सपना तो उसने पहले कभी नहीं देखा था।

उसे अपने मस्तक में कुछ पीड़ा सी महसूस हुई। सिर पर उसने हाथ फेरा। रक्त से उसका हाथ लाल हो गया। बरामदे में, ताक पर, कॉच का एक गिलास रखा हुआ था। चिड़िया ने उसे गिराकर नरेन्द्र को आहत कर दिया था। कॉच के टुकड़े धरती पर छिटके पड़े थे। उसके पहले के लिखे हुए पृष्ठ भी वहीं पड़े थे। एक आवेश में उसने वे सब पृष्ठ फाड़ डाले और लेखनी उठाकर अपने सिर के रक्त से लिखा—'सच्ची कल्पना अब जागृत हुई है!'

टेढ़ा सवाल

[गजानन सदाशिव पोद्दार]

—:o:—

बाबू संगमलाल की दुनियां एक साल में इस कदर बदल गई है कि मालूम होता है, उनके जीवन की कहानी भी राटरदाम या स्तालिनग्राद से कम दर्दभरी नहीं है। वे स्रोत जो जिन्दगी को हरियाली देने के लिए अपने आपको बहाते रहते हैं, सचमुच में सो चुके हैं। लेकिन संगम बाबू को एक बात की खुशी है। वह यह कि उनके पेट का सवाल हल हो गया है।

संगम बाबू के पेट का सवाल हमेशा उनकी जिन्दगी का सब से टेढ़ा सवाल रहा है। उन्हीं के शब्दों में चाहे एक

बार पाकिस्तान का सवाल हँसी-खुशी सुलझ भी जाये, लेकिन उनके पेट का सवाल कभी नही सुलझ सकता। यही चिन्ता सुबह उठते समय उन्हें सताती—रात को सोते वक्त भी उससे पीछा नही छूटता। त्रिफला, मैगनेशिया, कैस्टर आइल—गरजेकि दुनिया की हर दवा—वैद्यक, हकीमत, एलोपैथी, होमियोपैथी सभी संगम बाबू के पेट से मात खा चुके थे। उनका पेट क्या था, मानो अच्छा-खासा रूसी मोर्चा बन गया था।

संगम बाबू बेचारे बेहद परेशान। बबुआइन के लिये भी बाबू जी के पेट का सवाल आफ़त का बायस था। चाय की हंडिया चढ़ाते चढ़ाते आठ बज जाते। हुक्के की चिलम की भी निगरानी करनी पड़ती। कही ठण्डी पड़ जाय तो बबुआइन की दो घण्टे की मेहनत अकारथ होने का डर। बाबू की क्या है। वह तो पेंशन पाते है। देर-सवेर का सवाल उनके लिए बीती बात हो चुकी है। लेकिन बबुआइन तो सिर्फ बबुआइन ही नही—कल्लू, मुन्नी और गुल्लू की माँ भी हैं। नौ के घण्टे बजे नही कि कल्लू की थाली मे रोटी पड़नी ही चाहिये। वह स्कूल जाता है। कोई मजाक नही है। फिर मुन्नी की पढ़ाई का जोश उससे रत्ती-दो रत्ती तेज ही होगा, कम नही। फिर इस पतझड़ में भी गृहस्थी ने बहार की एक झलक दिखा रखी है। दो साल की कली-सी कोमल गुल्लू रसोई मे हरदम चौखा करती है मानो कह रही है "इस घर में सब से भाग्यशालिनी मै हूं। तुम पर सबसे ज्यादा अधिकार मेरा है।"

बबुआइन का इधर यह हाल, उधर संगम बाबू अपनी ही चिन्ता में मग्न। कल्लू की माँ थाली सजाने की फिक्र में हैं। सहसा बैठक से आवाज़ आती है—"अरे सुनती हो, कल्लू की माँ! ज़रा एक लोटा चाय का पानी चढ़ा देना।"

तकलीफ़ संगम बाबू को बेहद थी। लेकिन पेट के सवाल ने ज़िन्दगी को एक ऐसा रंग दे दिया था कि वे उसी मे मस्त रहा करते। इधर पेट मे सुरंग लगाते जाते, उधर चौसर, ताश या शतरंज की बैठक भी जमती जाती। उस्ताद लोगों की महफ़िल जम जाने पर पेट का सवाल बारह की तोप के बजाय सामनेवाले सिनेमा की पहले खेल की घण्टी बजने पर हल होता। भैरवी से जब कभी इस तरह सवेरा होता, संगम बाबू के जीवन मे वह दिन इतना प्यारा होता कि यदि उनका बस चलता तो प्रत्येक साँझ को सवेरा बनाने से कभी न चूकते!

आठ दिन तक संगम बाबू की मैने यह रंगत देखी और वे आठ दिन मधुचन्द्र के आठ दिनों से कम रसभरे नहीं थे। इस के बाद जब मै बम्बई आया तो कुछ नामी डाक्टरों से सलाह-मशविरा किया और ऐसी-ऐसी चुनी-चुनी दवाइयाँ संगम बाबू के पास भेजी कि पेट की शिकायत सात समुन्दर पार चली जाये। मगर संगम बाबू का पेट भी क्या बला था कि वह न माना सो न ही माना। हर बार यही जवाब आया कि पेट का सवाल ज्यों का त्यों बना हुआ है।

इधर कुछ दिनों से उनका समाचार नहीं मिल रहा था। मैं परेशान था कि अचानक संगम बाबू की चिट्ठियाँ आनी क्यों बन्द हो गई। तार दिया। जवाब फिर भी नदारद। तबी-अत बड़ी बेचैन हुई। यह मै जानता हूँ कि संगम बाबू चिट्ठी लिखने को एक असाध्य रोग मानते है, लेकिन उनके दरबार में स्वयं-सेवकों की कभी कोई कमी नहीं रही। अन्त मे एक बार जाकर मिलने का उनकी चुप्पी ने सख्त तकाजा कर दिया।

दो महीने तक अर्जियाँ देने के बाद एक हफ्ते की छुट्टी मिली। छुट्टी मिलने की उम्मीद होते ही संगम बाबू को नोटिस दे दिया कि आ रहा हूँ और अपने साथ एक ऐसी अचूक दवा ला रहा हूँ कि आप भी 'वाह' कह उठेंगे।

सामान बँधा बँधाया तैयार है। श्रीमती जी वियोग की कल्पना से विह्वल हुई जा रही है और मै बार-बार उस चिट्ठी को पढ़ रहा हूं जो डाकिये ने अभी-अभी लाकर दी है। संगम बाबू के अपने हाथ की चिट्ठी है। शायद पेशन पाने के बाद यह पहली चिट्ठी है जो उन्होंने अपने हाथ से लिखी है। लिखते हैं—

"तुम्हारे आने की खबर पाकर बड़ी खुशी हुई। जरूर आना। इधर का हाल यह है कि दरबार अब सूना हो गया है। क्योंकि जमाना पलट चुका है और पेंशन वही है। चाय-पानी का इन्तजाम पहले की तरह नहीं हो पाता। हाँ, पेट की दवा लाने की अब जरूरत नहीं है। भगवान् ने और सरकार

शरीफ ने लाजवाब दवा दे दी है। कल्लू, मुन्नी और गुल्लू तो किसी तरह दोनों जून दाल-भात खा लेते हैं और हमारा कूच का पैगाम आया ही चाहता है। एक जून मुट्ठी-दो-मुट्ठी मिल जाय वही बहुत है। सो भैया, राम की दया से पेट का सवाल हल हो गया है। दवा-दारू कुछ लाने की जरूरत नहीं है। हाँ, मिल जाये तो सेर दो सेर गेहूँ लेते आना। दो महीने से गेहूँ की फुलकी नहीं मिली है। गुल्लू बहुत रोती है। तुमसे यह बात कह सकता हूँ, लेकिन जहाँ जिन्दगी इज्जत से बिताई है, वहाँ कैसे मुँह खोलूँ?

बाबू संगम-लाल को देखने के लिए जाने की पूरी तैयारी है। लेकिन सामान कुछ बदलना होगा। पिछले साल गुल्लू के लिये मिठाई और खिलौने ले गया था, इस बार गेहूँ लेकर जा रहा हूँ।

इन्त्रेगिल

[रामजी दर]

—०—

दो फुट की जगह और पचास आदमियों का जमघट—सभी एक साथ अन्दर घुसना चाह रहे थे। मेरी समझ में न आया कि आख़िर ऐसा कौन सा आकर्षण है जो यह भीड़ उस के निकट पहुँचने को बेताब है। मै सड़क पर एकाएक रुक गया। कुछ और व्यक्ति भी वहाँ खड़े या बैठे थे। सब मामूली हैसियत के लोग थे। अधिकांश हाथों में बोतलें लटकाये थे।

मैंने उन से पूछा—"क्यों जी, क्या मामला है। यह भीड़ कैसी है?"

एक ने मुझे नमस्कार कर कुछ व्यंग से कहा—"महादेव जी का दर्शन करना चाहते है। देखिये, कैसे टूटे पड़ रहे हैं!"

इतने में मेरी दृष्टि एक तख़्ती पर पड़ी जो उस मकान पर टँगी थी। मैंने हँसकर कहा—"अच्छा, यह सब मिट्टी के तेल के लिए परेशान हैं!"

दूकान के दो दरवाज़े थे। एक बन्द था। दूसरे का एक पट खुला था। भीड़ बराबर बढ़ती जा रही थी। उस में

अधिक संख्या ग़रीबों की थी। बूढ़े, जवान, स्त्री, बच्चे सब की यही कोशिश थी कि सब से पहले और शीघ्र तेल मिल जाये।

दूकानदार बौखलाया हुआ भीड़ हटाता बाहर निकला। मुझे देखते ही बोला—"कहिये लाला जी, आपने कैसे तकलीफ की। क्या तेल चाहिये।"

मैंने कहा—"नही, तेल नही चाहिये। यों ही खड़ा हो गया था। यह तो बतलाओ, तुम ने अपने पट क्यों बन्द कर रखे हैं।"

दूकानदार ने कुछ उलझकर कहा—"अजी लाला जी, गिनती के कनस्तर मिलते हैं और पबलिक न मालूम किन-किन मोहल्लों से आती है। अब बताइये, सब को मैं कैसे दूँ।"

मैं कुछ कहने वाला था कि एक आदमी, जो शकल से अहीर जान पड़ता था, ज़रा गर्म होकर बोला—"अजी साहब, यह जान-बूझकर भीड़ इकट्ठा करता है। इस मे इसका फायदा है। हड़बड़ मे जितना चाहा तेल दे दिया। कोई टोक सकता है। अंधेर है अंधेर!"

इस पर और लोग भी बिगड़ उठे और कहने लगे—"हाँ लाला जी, यह दूकानदार बड़ा चालाक है!"

दूकानदार ने झट मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपनी दूकान के अन्दर चलने को कहा। मैंने मंजूर न किया तो बोला—"देखिये, मै आप के सामने टीन खोलकर देता हूँ।"

जोश में आकर वह अन्दर घुस गया, मगर एक ही पट

पहले की तरह खुला रहा। दूकानदार ने ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर कहा—"पहले मेहरारुओं को लेने दो।"

किसी को किसी की परवाह न थी। टपका-टपकी एक-दो को तेल मिलता और वह बड़े खुशी-खुशी चौथाई बोतल तेल लिये, नाक फुलाए, मानो कोई बड़ी भारी विजय प्राप्त कर ली हो, अपने-अपने घर को रवाना होते। ग़रीब औरतें गोद मे बच्चे लिए, धक्के-मुक्के के बीच, उस फुट भर के रास्ते से, मुश्किल से अन्दर घुसने पाती और काफी देर के बाद तेल लेकर बाहर निकलती।

एक बाबू साहब भी हाथ मे लालटेन लटकाये, कोट-पतलून पहने, आ पहुँचे। मगर वह, चुप मारे, एक कोने मे खड़े हो गये। आगे जाने का शायद उन्हे साहस न पड़ रहा था, या उन्हे लज्जा आ रही थी। मुझे देख अँगरेज़ी मे बोले—"बड़ा खराब इन्तज़ाम है!"

थोड़ी देर बाद आप एकाएक गरज उठे और 'हटो-हटो' कहते, भीड़ को चीरते, दूकान के अन्दर घुस गये। दूकानदार ने भी उन को कोई अफ़सर समझ आने से न रोका। भीतर जाते ही आप ने लोगों को बाहर की तरफ धकेलना चाहा। इस पर भीड़ मे से कुछ नौजवानों ने, जो शायद कुँजड़े या इक्के वाले थे, अन्दर घुसना चाहा।

"अरे कुचल गया—कुचल गया!" कहता एक बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। उसका हाथ इस हाथापाई मे दरवाज़े

की चूल में आ गया था। दरवाज़ा खुल गया और बाबू साहब को हार माननी पड़ी। भीड़ दूकान के अन्दर घुस गई।

दूकानदार ने चिल्लाकर कहा—"तेल खतम हो गया। बाहर निकलो, बाहर निकलो।"

भीड़ एकदम बाहर निकली। एक ग़रीब औरत की बोतल जो और बोतलों के साथ दूकान के अन्दर ज़मीन पर रखी थी, किसी दूसरी स्त्री की ठोकर से टूट गई।

इन दोनों औरतों मे अब छिड़ गई। जिसकी ठोकर लगी थी, उसकी अवस्था कोई बीस बरस की होगी। शकल उसकी बड़ी भोली थी, पर पीली पड़ी हुई थी। बदन पर एक मैली फटी साड़ी थी। वह बड़ी नम्रता से कह रही थी—"अरी बहन, मेरा इसमें क्या दोष। मैंने कोई जान के थोड़ी तेरी बोतल तोड़ो है।"

दूसरी एक न मानती और कहती—"अपनी बोतल दे, नहीं तो मैं जाने न दूँगी।"

वह रुआसी हो चली। मैंने उसकी तरफ देखा तो कहने लगी—"देखो बाबू साहब, यह बेकार मेरे पीछे पड़ी है।"

मैं सब बातें सुन चुका था। मेरे समझाने पर दूसरी औरत मान गई। इतने में उसका पिता घबराया व हाँपता हुआ कहीं से आया और बेटी को देख कर बोला—"अरी ओ चम्पा, बड़ी देर तो का लगी। मोर चित्त व्याकुल हो गवा।

बहुत सबर किया, पर न रहा गया।"

यह कह वह बैठ गया। फिर मेरे पैरों पर दोनों हाथ रख कॉपते हुये स्वर मे कहने लगा—"सरकार, मै आप ही के बंगले के पास रहता हूँ। बहुत दिनों से बीमार हूँ। चला नही जाता। तेल घर मे न रहा। बिटिया को भेजा रहा कि तेल ले आये। इसे बड़ी देर हो गई। मै घबड़ाया कि क्या बात हुई। इसी से चला आया।"

यह कह वह जल्दी-जल्दी सॉस लेने लगा। लड़की ने उसका हाथ पकड़ा और खाली बोतल लिए निराश हो दोनों चले गये।

काफी लोग अभी तक जमा थे। वे दूकानदार की चाल समझते थे। थोड़ा दम लेने के बाद दूकानदार ने सब से कहा—"देखो भाई, हल्ला न मचाओ। सब को तेल मिल जायगा। पहले औरतो को भीतर आने दो।"

लोगों ने कहा—"जाने दो, जाने दो।"

जितनी औरते थी, सब दुकान मे घुस गईं और उनके पीछे घुसते ही सब ने एक बार फिर चाहा कि वह भी घुस जायँ। इस पर वही दृश्य फिर उपस्थित हो गया जो आरम्भ मे था। बोतलों के टकराने की आवाज़ फिर आने लगी।

मै भी भीड़ मे जा पहुँचा। किसी ने चेतावनी दी—"अपनी जेबों से होशियार।"

मैने एक आदमी से कहा—"धक्का मत दो। एक-एक

करके अन्दर जाओ तो सबको आसानी से तेल मिल जायगा।"

उसने कहा—"अजी साहब, आगे वालों से कहिये।"

आगे वाले लोगों ने कहा—"पीछे वालों से कहिये।"

अब रात हो गई थी। बिजली की बत्ती दूकान में जल गई। कोट-पतलून वाले बाबू साहब फिर अपनी पुरानी जगह पर आकर खड़े हो गए। बार-बार सिर पर हाथ फेरते हुये वह लोगों को अँगरेज़ी मे गाली दे रहे थे। कुछ बूंदे तेल की उनके सिर पर किसी ने छिड़क दी थीं।

एक वृद्ध मुसलमान भी अलग खड़े-खड़े दो घंटे से सूख रहे थे। सात या आठ वर्ष की चार ग़रीब लड़कियाँ हँस-कर अपनी-अपनी बोतलों का तेल एक बोतल मे भरतीं और फिर एक दूसरे से कहती—"जा जा, तै अब के तेल ले आ।"

एक लड़की जाती और पड़ोस की दूकान से दोबारा तेल ले आती। इस तरह इन चारों बालिकाओं ने चालाक दूकानदार को चरका देकर थोड़ी देर मे तीन बोतलें पूरी भर ली।

एक आदमी ने मुझ से कहा—"अजी साहब. यह बच्चे सब से मज़े मे रहते है। एक-एक बच्चा चार-चार दफे तेल लेता है और इनके माँ-बाप इस तेल को चौगुने दाम पर अपने मोहल्ले में बेचते हैं। बच्चा समझ कर कोई बोलता नहीं।"

पूरे दो घंटे सड़क पर खड़े-खड़े मैने यह तमाशा देखा। मेरे लिए यह नया अनुभव था। मेरे घर में बिजली लगी थी। अब मैं इसी प्रतीक्षा मे था कि दूकानदार से भेंट हो तो उसे ऐसी

सलाह दूँ कि इसको तेल बेचने और पब्लिक को तेल लेने में सुविधा हो। सहसा दूकान की बत्ती बुझ गई और दूकानदार ने ऊँचे स्वर में कहा—"तेल खतम !"

लोग निराश हो बाहर निकल आये। दूकान का मालिक दरवाजा बन्द कर भीतर बैठ रहा।

× × × × ×

मैं घर से अपनी स्त्री के लिए एक इत्र की शीशी खरीदने चला था। फौरन लौटने का मैंने वादा किया था।

अब इतनी देर बाद खाली हाथ लौटा तो श्रीमती जी ने कुछ रूठी हुई आकृति बनाकर पूछा—"लाए मेरी चीज ?"

मैंने तड़ाख से उत्तर दिया—"हाँ-हाँ, क्यों न लाता।"

उन्होंने हाथ बढ़ा कर कहा—"लाओ।"

मैंने उनका हाथ पकड़ कर अपने पास बैठा लिया और कहा—"सूँघो अपना हाथ।'

श्रीमती जी ने अपना हाथ जो नाक के पास लगाया तो बिगड़ कर बोली—"यह कैसी दुर्गंध है। इस में तो मिट्टी के तेल की बू आ रही है। यह क्या ले आये। मेरा तो दिमाग़ सड़ गया।"

मैंने समझाते हुए कहा—"यह देशी अतर है। बहुमूल्य वस्तु है। इसका मिलना दुर्लभ है। नमूने के तौर पर जरा-सा हाथ पर लगाकर लाया हूँ। फार्सी में इसे इत्रेगिल कहते है। गिल के माने हैं मिट्टी। कहते हैं ..।"

श्रीमती जी बिगड़ कर खड़ी हो गई और कहने लगी—"साफ साफ क्यों नहीं कहते कि मेरी चीज़ नही लाये हो।"

"खफा न हो। पूरी बात तो सुनो। कुछ पता भी है कि दुनिया में क्या हो रहा है!"

मैंने गम्भीर स्वर-से कहा। वह फिर बैठ गई। मै ने पूरी कहानी सुनाई तो क्रोध मिट गया और उसकी जगह चिंता पैदा हो गई।

—o—

अनशन

[शिक्षार्थी]

बात बढ़नी थी, बढ़ गई। हम बात की बात मे उलझ कर दो-दो चोंचे कर बैठे। 'हम' से मतलब हमीं दोनों से है—अर्थात् श्रीमती से और मुझसे—जिन्हें, सच पूछिये तो, अग्नि को साक्षी देकर की हुई प्रतिज्ञाओं के अनुसार, एक-दूसरे के लिए 'एमरी-वादी' कठोरता न ग्रहण करनी चाहिए।

दोष किसका था, यह न पूछिये। जिस संकोच के कारण हमारी गोरी सरकार कांग्रेस-मंत्री-मण्डलों को अपने 'युद्ध-उद्देश्य' नही बतलाना चाहती थी, उससे कुछ मिलता-जुलता-सा संकोच गार्हस्थ्य 'युद्ध-उद्देश्य' के स्पष्टीकरण मे भी उपस्थित होता है। परदे की बातें प्रकाशित करना सदैव निरापद नही हुआ करता।

किसी भी स्त्री के कानों के ऊपर का भाग मेरे लिए सदा

एक पहेली रहा है। विशेषत: अपनी श्रीमती से संबंधित प्रश्न जब उठता है तो यह पहेली मेरे लिए और भी दुरूह हो जाती है। नारी की बुद्धि का कार्यालय विचित्र है, उसकी सारी व्यवस्था विचित्र है। उसे मैं कभी न समझ सका और शायद मेरे ऐसे करोड़ों अन्य साथी भी कभी न समझ सकेंगे।

उसी दिन की बात लीजिए।

वैसे बात कोई बहुत गम्भीर न थी। केवल यूँही-सी थी। सारे झगड़े की जड़ में एक छोटी-सी वस्तु थी। और कुछ नही, बस, एक इयररिंग, जो मेरी बैठक मे मिला। खेद इतना ही है कि वह शुद्ध सोने का न था। नही तो शायद श्रीमती रुष्ट होने के स्थान पर इस प्राप्ति से उलटे अति प्रसन्न होती।

मेरी बैठक के सामान का रूप सँवारते समय वह इयररिंग श्रीमती के हाथ लगा। उन्होंने उसे मुझे दिखलाया। मैंने देखा। वह बहुत मूल्यवान् न था। फिर भी अच्छा था। गिन्नी के सोने की पतली जंजीर के नीचे शिशु की अलकों-सी घूमी हुई तीन पत्तियाँ, जिनमें हलके नीले रंग का एक छोटे गोल शीशे का नग फँसा हुआ तिलमिला रहा था।

श्रीमती को असन्तुष्ट देख मैंने कहा—"इसमें हमारी क्या हानि है। इयररिंग यदि थोड़े सोने का बना हुआ है तो वही सही। हमने उसे दाम देकर तो लिया नही।"

शायद उन्होंने मेरा मतलब नहीं समझा।

सान्त्वना देने के लिए मैंने फिर कहा –"इसका नग

कॉच का है तो क्या हुआ। अवसर आयेगा तो मैं तुम्हारे लिए असली नीलम-जड़ित इयररिंग बनवा दूँगा।"

इस सीधी-सी बात पर एक वाद-विवाद छिड़ गया। मैंने कहा न, औरत के दिल की दुनिया निराली होती है। उस में बहुधा चींटी के अण्डे से हाथी का बच्चा पैदा हो जाता है।

विदेशी ठीक ही कहते है। भारत विचित्रताओं का देश है। हमारी गृहस्थी की यह रीति दुनिया से निराली है कि तना-तनी व्यक्तियों मे होती है, किन्तु हम रूठने लगते है अन्न से। क्रोध उतारने की यह शैली हम भारतीयों की अपनी है—पेटेण्ट। इसे सुनकर, पिस्तौल और कानून की सहायता से झगड़ों का निपटारा करने वाले विदेशी, दाँतों तले उँगली दबाने को मजबूर न हों तो क्या हों।

जो भी हो, उस दिन खटपट हो जाने के बाद मेरी श्रीमती ने अत्यन्त गम्भीरता-पूर्वक कहा—"मुझे आज भूख बिलकुल नही है। तुम्हारे लिए मैं चार रोटियाँ सेक दूँगी।"

मैं श्रीमती का आभार स्वीकार करने के मूड मे बिलकुल न था। बोला—"मेरे लिए बखेड़ा करने की आवश्यकता नही।"

तब उन्होंने बताया, पिछली बार न जाने कौन-सा व्रत उनका छूट गया था। आज उसी के बदले उपवास करना उन के लिए नितान्त आवश्यक था।

'मेरी एनो'ज फ्रूट साल्ट की शीशी कहाँ है ?" मैंने

पूछा—"मेरे पेट में आज दर्द हो रहा है।"

फलतः चूल्हे मे आग पड़ने की नौबत दिन भर नही आई। दिन तो, खैर, किसी प्रकार कट गया। पर, आगे निभना कठिन था। यह पेट के 'डेड-लाक' की समस्या थी, भारतीय राजनीति की नही, कि जब तक जी चाहता टाली जा सकती।

शाम को सात बजने पर, अमरीका के मजदूरों की भाँति, मेरे पेट ने अपनी माँग का प्रश्न उठाया। क्रमशः प्रश्न ने गम्भीर रूप धारण किया और आँतें कुछ देर मे स्पष्ट रूप से कलकल करने लगी।

तब मैं आज का समाचार-पत्र उठा कर बड़े ध्यान से बङ्गाल-सहायता-कोष के दाताओं और उनके दान का विवरण पढ़ने लगा। पहले मैं इसे कालम काले करना समझता था और बिना देखे ही छोड़ देता था। पर आज यह सूची भी मुझे रोचक लग रही थी। थोड़ी देर तक मनन करने के पश्चात् मैं भी बङ्गाल की सहायता के लिए कुछ बचाने की आवश्यकता का अनुभव करने लगा।

किन्तु मानव का मन पुण्य-चिन्तन मे बराबर नही लगा रह सकता। जब किसी प्रकार मुझ से नहीं रहा गया तो मै उठा, और, कपड़े पहन कर बाहर निकलने को तैयार हो गया। मै जानता था कि इस समय भी चूल्हा जलने की आशा करना युद्ध-काल मे गौराङ्ग महाप्रभुओं से शासन-अधिकार पाने की दुराशा करना होगा। कारण यह कि श्रीमती के पिछले व्रत-

दिवस का बदला अभी पूरा नही हुआ था।

फिर भी, रंग जमाने के लिए जाते-जाते श्रीमती को सुना कर मैंने कहा—"मेरे हिस्से का भोजन नही बनेगा। मेरे पेट में अब भी मीठा मीठा दर्द हो रहा है।"

बात कुछ झूठ भी नही थी। सचमुच, अब मेरे पेट मे कुछ-कुछ दर्द होने लगा था। मै सोच रहा था—दुनिया के तर्क-शास्त्र शायद स्त्रियों के लिए नही बने है। मेरा यह मत अनुभव-सिद्ध है। कोई माने या न माने, मै तो यही कहूँगा कि किसी नारी से कभी बहस न करो। यह केवल इसलिए नही कि बहस मे तुम उससे सदा हार जाओगे, बल्कि इसलिए भी कि मुझे डर है, तुम्हारी जीभ के अपराध का फल तुम्हारे पेट को भोगना पड़ेगा। यहाँ तक कि यदि कोई 'उच्चाटन-मंत्र' की खोज मे है तो उसे इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नही। उसके लिए स्त्री-पुरुष की बातचीत मे कोई विवाद-ग्रस्त विषय छेड़ देना ही पर्याप्त होगा।

चौक की दूकानों पर शुद्ध वनस्पति मे छनती हुई कचौड़ियों को देख कर मुझे यह सूझा कि सुन्दरी के मुख के लिए संसार मे पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी अधिक सार्थक और कलंक-हीन उपमा ये है। मुझे आश्चर्य हुआ कि नवीनता की खोज मे रहने वाले कवियों को उषा-काल के दृश्य मे आकाश की नीली कढ़ाई और उसमे छनती हुई लाल-लाल कचौड़ी क्यों नही दिखलाई पड़ी।

मुझे याद आया कि एक चिकित्सक के कथनानुसार वनस्पति के और शुद्ध घी के गुणों में केवल चार-पॉच का अन्तर 'है । पहले भले ही मैं इस बात को मानने के लिए कभी तैयार न होता, परन्तु आज मुझे यह बिलकुल सच बात लग रही थी।

फिर भी मै किसी दूकान के निकट नही गया । निराश प्रेमी की भॉति, अलग खड़ा, कचौड़ियों के प्रफुल्लित रूप का रस-पान दूर से ही करता रहा। इस प्रकार 'सौंदर्य सराहने के लिए है, छूने के लिए नही' की कहावत मे मै अपना विश्वास प्रकट कर रहा था।

एक ओर गरमा-गरम इमरतियॉ भी बनाई जा रही थी। उनके सम्बन्ध में भी मेरे विचार कम ऊँचे नही उठ रहे थे। यह किसी हद तक ठीक भी है कि जीवन मे कभी-कभी कुछ ऐसे अवसर भी आते है, जब प्रेमिका की अपेक्षा एक इमरती अधिक वाञ्छनीय होती है। इमरती तो इमरती है, मै इस समय सूखे चने और गुड़ को देवताओं का भोग कह सकता था।

और भी कई प्रकार के रसीले पदार्थ मेरे मार्ग मे प्रलोभन उपस्थित कर रहे थे, किन्तु मै किसी प्रबल तपस्वी की भॉति सब से लड़ता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था।

यह बात न थी कि श्रीमती ने मेरी जेब मे कुछ पूँजी नही रहने दी थी । नही, वास्तविक कारण यह था कि मुझे

घर मे भूखी-प्यासी और झुँझलाई बैठी हुई श्रीमती का ध्यान था। यही ध्यान मुझे किसी दूकान की ओर पैर नहीं बढ़ाने देता था। यह इसलिए नही कि वे भूखी-प्यासी थी, बल्कि इसलिए कि वे भूख-प्यास से झुँझलाई हुई थीं और, मेरे पल्ले जो रुपये-पैसे थे, उनकी जानकारी उन्हे थी। मै कुछ खर्च कर देता तो भय था कि चोरी से खा लेने का भेद उन पर खुल जाता। इससे मेरी दुर्बलता सिद्ध होती और सारी अकड़ मिट्टी मे मिल जाती। यह मुझे कदापि स्वीकार न था।

फिर मेरे मन मे एक दूसरा विचार उठा—"हो सकता है, मै इधर चप्पल चटकाता फिरता रहूँ, उधर मेरी अनुपस्थिति मे श्रीमती चटपट कुछ तैयार करके खा-पी ले और मै जान भी न पाऊँ। इस विचार ने मेरी क्षुधाग्नि मे घी का काम किया। किन्तु पास के पैसों का हिसाब टेढ़ा था।

मैं सोचने लगा, मेरे लिए भी एक मार्ग है। मै किसी मित्र के यहाँ भोजन कर सकता हूँ। उस दशा मे श्रीमती के देवता भी भेद नहीं पा सकते थे। पर, किस मित्र के यहाँ, यह एक विकट प्रश्न था। इस महँगी में ऐसा कौन था जो सत्कार करने मे पैसों का मुँह न देखता। फिर, खाद्य-नियंत्रण के इस युग मे, जब तोल-तोलकर खुराक मिलती है, अतिथि का स्वागत करना किञ्चित जटिल प्रश्न हो जाता है।

अच्छी याद आई। एक दक्षिणी सज्जन थे। वे और उनकी धर्मपत्नी दोनों खिलाने-पिलाने के मामले में दिल खोल

कर व्यय करने वाले थे। मै उनके यहाँ कई बार खा पी चुका था। आशा थी कि उनके यहाँ पहुँच जाने पर बिना मुँह जूठा किये न लौटना होगा।

मैंने उन्ही के घर की राह पकड़ी।

पेट मे मचलती हुई भूख के साथ ही हृदय मे एक शङ्का भी करवट ले रही थी। मुझे राजा भोज की कहानी याद आ गई। जब उन पर विपित्त पड़ी तो भुनी हुई मछली भी जल मे जा पड़ी थी। मै इस कथा पर भले ही विश्वास न करूँ कि भुनी मछली अपने आप उछलकर जल मे पहुँच गई, पर यह पूर्ण रूप से सम्भव था कि संयोग से मछली अचानक उनके हाथ से छूट पड़ी हो। डर था, कहीं मेरी भी राजा भोज की सी दशा न हो।

परन्तु, सौभाग्य से दक्षिणी सज्जन अपने घर पर उपस्थित मिल गये। मैंने अपने देवताओं को धन्यवाद दिया।

वे भले आदमी इस समय साहित्य का आनन्द ले रहे थे। मेरी मनस्थिति ऐसी न थी कि मैं उनका साथ देता। खाली पेट मुझे साहित्य-चर्चा करना ऐसा लग रहा था, जैसे कोई सुन्दरी जर्मनी के कारखानों से यह आशा करे कि वे बमों के स्थान पर उत्तम श्रेणी की लिपस्टिकों के अभाव को दूर करने की चिन्ता करेंगे।

वे बोले—"महाकवि टैगोर कह गये हैं—तू अर्द्ध नारी है, अर्द्ध चमत्कार।"

मैंने कहा—"मैं होता तो यह विभाजन इस प्रकार करता—नारी एक-तिहाई नारी है, एक तिहाई चमत्कार है और एक तिहाई क्रोध।"

मैं शीघ्र से शीघ्र मतलब की बात पर आना चाहता था। उन्होंने आखों पर से चश्मा उतार कर मेरी ओर ध्यान दिया।

"विचित्र बात है", वे बोले—"क्या आज घर मे कुछ खटपट हो गई है ?"

आदमी अनुभवी थे। मैंने उत्तर दिया—"नही तो, ऐसी कोई बात नही है।" पर मेरी मुख-मुद्रा इसके विरुद्ध बोल रही थी।

"सुनती हो ?" दक्षिणी सज्जन ने अपनी पत्नी को जोर से सम्बोधित कर कहा—"ये क्या कहते है ?"

उनकी धर्मपत्नी निकट आई। अपनी स्वाभाविक मुसकान के साथ मेरा अभिवादन करती हुई बोली—"उनको (उनका संकेत मेरी श्रीमती से था) क्यों नही लाये ?"

मैने कहा—"आज वे अधिक व्यस्त है।"

एकाएक दक्षिणी सज्जन ने हँसकर अपनी पत्नी से कहा—"आज इनका कहना है कि नारी एक तिहाई क्रोध की बनी हुई होती है।"

"अच्छा !" उनकी धर्मपत्नी ने हँसकर पूछा—'आज किसी बात पर मेरी सखी ने आपको कुछ फटकार दिया है क्या ?"

"नहीं", मैंने सिर झुका कर कहा।

उनके पतिदेव बोले—"कुछ दाल में काला अवश्य है।"

"नहीं", मैं बोला।

"मैं नहीं मान् सकती। ऐसी ही कोई बात ज़रूर है।"

मैंने फिर कहा—"जी नहीं।"

"मैं कहती हूँ, कुछ न कुछ बात जरूर है । आप भले ही न बतलायें !"

"आप से क्या कहूँ ?" मैने कहा—"औरतों से ज्यादा बाते करते डरता हूँ । आप लोग जरा से मे नाराज हो बैठती है और फिर मुश्किल हो जाती है ।"

"क्या हमीं नाराज होती है, मर्द नही ? इन्ही से पूछो, अभी उस दिन जरा-सी बात पर यह मुझ से कितना लड़े थे—जिस दिन हम आप के यहाँ गये थे, उस दिन ।"

"तुम्हारी ग़लती थी ?" दक्षिणी सज्जन ने भौहे सिकोड़ कर कहा ।

"मेरी कोई ग़लती न थी ।" उन की धर्मपत्नी ने कहा ।

"थी कैसे नही ?" पतिदेव ने कड़े स्वर मे कहा ।

मै डरा, यहाँ एक और झगड़ा न खड़ा हो जाय । किसी प्रकार मैने पतिदेव को बात बढ़ाने से रोका ।

वे अकेले होते तो मै उन्हे आज के अपने अनुभव सुनाता । बतलाता कि बहस से जीत कचहरी मे होती है, घर मे नही । स्त्री के आगे वकील और दलील की एक नही चलती । कहता कि एक पत्थर के टुकड़े पर भले ही तुम्हारी बहस का असर हो जाय, किन्तु पत्नी से ऐसी आशा करना व्यर्थ है । कुशल इसी मे है कि दूरदर्शी पति वाद-विवाद से सदैव बचे रहे । पति-पत्नी के बीच वाद-विवाद सबसे टेढ़ा और खतरनाक विषय सिद्ध होता है । इसका प्रभाव बुद्धि पर नही, पेट पर

पड़ता है।

अच्छा हुआ, बात जहाँ की तहाँ रह गई।

अन्ततः मुझे उनका निमन्त्रण स्वीकार करके भोजन ग्रहण करने के लिए साथ बैठना ही पड़ा। मैंने लाख इनकार किया, पर उन्होंने एक न सुनी।

उनकी धर्मपत्नी बैठी हुई हम दोनों को आवश्यकतानुसार वस्तुएँ दे रही थी। इतने में बाहर से जञ्जीर खटखटाने की आवाज़ आई।

कोई मर्द थाली छोड़कर उठ नहीं सकता था। उनकी धर्मपत्नी को ही जाना पड़ा। द्वार खुलने की आवाज़ आई और साथ ही आई यह आवाज़—"दरवाजा खोलने में तुमने इतनी देर क्यों लगा दी? क्या अभी से सो गई थीं?"

मै सन्न रह गया। यह मेरी अपनी श्रीमती की आवाज़ थी।

मुझे खाना-पीना सब भूल गया। मित्र की दृष्टि में अपनी मर्यादा को बनाये रहना चाहिये, यह भी भूल गया। मैंने गिड़गिड़ाकर धीरे से कहा—"कृपया जल्दी से कोई ऐसी जगह बतलाइए, जहाँ मैं छिप सकूँ।"

मैं हाथ धोने का उपक्रम करने लगा! दक्षिणी सज्जन के आश्चर्य का ठिकाना न था। मैंने फिर कहा—"जल्दी बतलाइए।"

"आपको यहाँ छिपने की क्या आवश्यकता है। अभी तो आपने पूरा खाना भी नहीं खाया।"

मुझे उनकी बुद्धि पर तरस आ रहा था । किन्तु कुशल यह थी कि उनकी धर्मपत्नी उनसे अधिक समझदार थी। उन्होंने मेरी श्रीमती को सीधे रसोई घर मे न लाकर, दूसरे कमरे मे ले जाकर बिठा दिया।

दक्षिणी सज्जन ने मुझे गुमसुम पाकर कहा—"आप खाते क्यों नही ? परसी हुई थाली छोड़कर उठना ठीक नही।"

गोया मै तकल्लुफ की वजह से खाना छोड़ रहा था और मैने उनसे छिपने की जगह मानो अकारण ही पूछी थी, अथवा वह मेरी कोई क्षणिक सनक थी और अब गोया उस सनक का दौरा खत्म हो चुका था।

मैने उनसे प्रार्थना की—"कृपया चलकर पीछेवाला दरवाज़ा खोल दीजिए। मै निकल जाऊँ।"

उन्होंने पूछा—"क्यों, बात क्या है ?"

मैने कहा—"ज़रा धीरे-धीरे बोलिए।"

उन्होंने कहा—"डर किसका है ? क्या आप समझ रहे है कि कोई और आया है ? नही, आपकी श्रीमती जी ही है, दूसरा कोई नही । आप घबराइए नही। इतमीनान से खा लीजिए।"

"नही, मुझे जाने दीजिए।" मैं बोला।

किन्तु वे मुझे यों छोड़ने वाले न थे। अन्त मे मैने खीजकर कहा—"बात यह है कि आज मैने अनशन कर रखा है। मै नही चाहता कि श्रीमती मुझे खाते हुए पकड़ ले।"

उधर मेरी श्रीमती अपनी सहेली से कह रही थी—"हज़रत रूठकर चले गये है। कह गये है, खायेगे नही। पर मर्दों की वात का क्या भरोसा। मैं जानती हूँ, वे वाजार मे जाकर अपनी उदरपूर्त्ति अवश्य कर लेंगे। रह जाऊँगी मैं। यदि मैं घर मे चूल्हा जलाती तो समझते कि हार गई। पर मैं क्यों हार मानने लगी। वे समझते है कि वही चप्ट है। पर मै इतनी मूर्ख नही हूँ कि दिन-रात भूखी रहूँ और आप मौज करके डकार लेते हुए घर लौटे।

उनकी सहेली क्या कह सकती थी। वे मेरी उपस्थिति से अनभिज्ञ न थीं।

फिर मेरी श्रीमती ने निहायत वेतकल्लुफी के साथ कहा—"तुम दो पूड़ियॉ खिला दोगी न ?"

यह सुनकर मैंने एक लम्बी सॉस ली।

दक्षिणी सज्जन की पत्नी ने कहा—"क्यों नहीं। लड़ाई-झगड़े किसके घर में नही होते। अभी उसी दिन की तो वात है, जब तुम्हारे घर गये थे, यहॉ हम लोगों मे भी तू-तू मैं-मैं हो गई थी। परसों ही तो . ।"

"क्यों क्या हुआ ?"

"कुछ न पूछो। ये मर्द ज़रा-ज़रा-सी वात पर नाराज़ हो वैठते है। क्रोध तो मुझे भी वहुत आया था, पर मै पी गई थी।"

मेरी श्रीमती वोली—"मुझसे तो नही सहन किया जाता।"

उनकी सहेली ने कहा—"भला तुम्हीं वतलाओ, वहन, ज़रा

सी चीज़ के लिए बेहद बिगड़ना कहाँ तक उचित है। मेरे एक कान का इयररिंग न जाने कहाँ गिर गया। इसी पर आपने आकाश सिर पर उठा लिया। मैंने उसे जान-बूझकर तो खोया नही था। पर वे इसमें मेरी हद दर्जे की लापरवाही बतलाते है।"

नरक के देवता

(केदारनाथ अग्रवाल)

रूपा को लेकर आज जादो भीख माँगने चला। उसकी सफलता की यही गारण्टी थी कि उसकी स्त्री के बजाय आज उसके साथ उसकी जवान बेटी थी। वह बारम्बार उसकी ओर देखता और उसकी चाल-ढाल की, मन ही मन, ठीक उसी तरह सराहना करता जैसे देखने-सुनने वाले बाज़ार के अन्य लोग करते। वह यह भूल जाता कि वह उसका बाप भी है। रूपा के यौवन से उसे प्रसन्नता होती। उसके मुसकुराने, हिलने-डुलने से उसको एक तृप्ति होती। अपनी स्त्री के चुसे हुए अंगों को सामने रख कर रूपा के उभरे-भरे अंगों की उत्कृष्टता सिद्ध करता। रूपा परी है, वह खबीसिन है। रूपा शराब है, वह काला ज़हर है।

इसी प्रकार की कल्पना करता और गर्व मे डूबा जादो रूपा के पास, अति पास, सड़क पर चल रहा था। उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि आज वह भीख में सबसे अधिक कमा

सकेगा। उसकी बंडी की जेब कुलबुला उठेगी। पैसे मिलेंगे नही—बरसेंगे। वह अड्डे पर कंगले की तरह नहीं, शाहंशाह की तरह पहुँचेगा और स्त्री को ढेर से पैसे दिखा कर अपनी सेवा करायेगा।

जादो चल तो रहा था, पर उसे अपने तन-बदन की कुछ भी सुध न थी। वह यह ही भूल गया था कि वह भीख माँगने निकला है, रास्ते मे ख्वाब देखने नही। जब रूपा ने देखा कि कोई दूकान खुली नही है, सब बन्द है, तब उसने बाप का हाथ हिला कर कहा—'देखते भी हो कि नही, दूकानों पर तो ताले पड़े है। भीख कौन देगा—भूत ?"

रूपा की झिड़की सुन कर और हाथ मे धक्का लगने से जादो की गफलत दूर हुई। उसने आँखें फाड़ कर एक बार पीछे की ओर छूट गई दूकानों की तरफ देखा और फिर सामने की ओर, दूर तक, निगाह डाली। ताले झूल रहे थे। सन्नाटा था। दूकानदारों का पता न था। माजरा क्या है, उसकी समझ में कुछ न आया। वह हैरानी अनुभव करने लगा। उसके चेहरे पर झुँझलाहट के चिह्न प्रकट हो गए।

खीझ कर उसने कहा—"रूपा, तू बड़ी बदनसीब है। तेरे आते ही ताले पड़ गए। तुझ से अच्छी तो तेरी माँ है। ऐसा नही हुआ कि कभी बेपैसे अड्डे पर लौटे हों। आज रङ्ग-बदरङ्ग है। मालूम होता है, पेट बजाते लौटना पड़ेगा।"

बाप की बात सुनकर रूपा का उभरा हुआ यौवन एकदम

एक क्षण के लिए बदनसीबी के भार से दब गया। वह बोली—"कँगले है हम। बदनसीब तो पैदाइशी है। कोई नई बात थोड़े ही कही है, बापू, तुमने !"

जादो ने एक आते हुए आदमी से पूछा। पता चला कि शहर मे हड़ताल है। कोई नेता मर गया है। इसी से दुकानें बन्द है।

रूपा की समझ मे कुछ न आया। नेता के मरने और बाजार के बन्द होने मे क्या सम्बन्ध है, वह यह न जान सकी। वह बोली—"बापू, मरने से और इस हड़ताल से क्या मतलब ?"

जादो ने व्यङ्ग से मुँह फैला कर बताया—"यही मतलब है कि साले भूखे मरे। नेता जब मरा है तो वह क्यों जिएँ ?"

आश्चर्य से रूपा ने पूछा—"तो क्या नेता नहीं चाहता कि हम लोग जियें। बड़ा खराब होता है नेता। छिः ..छिः.. !"

"खराब न होता तो क्या आज ही मरना था। कल, परसों नरसों, किसी दिन पहले ही मर गया होता। और अगर अभी तक नहीं मरा था तो एक महीने बाद ही मरता तो क्या हो जाता ? अरे वह तो जानबूझ कर इसी दिन मरा है !" जादो ने उबल कर कहा।

"बापू, तुम यह क्या कहते हो। कोई दिन देखकर थोड़े ही मरता है। बेचारे की मौत आई, चल बसा। दोप क्यों देते हो ?" रूपा ने कहा।

"दोष नही देता। हमारे पैसे हर गए है, इसी से कहता

हूँ। हमें पैसे से काम। कोई दे दे। हमारे लिए नेता अच्छा है।" उसने कहा।

"तो क्या तुम समझते हो कि इसी तरह चलते रहने से दुकानें खुल जायेंगी। चलो, फिर अड्डे ही लौट चलें। कल देखी जायगी।" धीरे से रूपा ने सुनाया।

"वह तो होगा ही। मर गया, हमारी रोटी हर ले गया। कल ही क्या ठीक। कल फिर न कोई दूसरा मर जाये!" माथे पर हाथ रखकर जादो बोला।

"बाजार में न सही, चलो किसी मुहल्ले में घुस कर हाथ पसारें। कुछ न कुछ मिल ही जायगा। यहाँ न सही, वहाँ सही!" रूपा ने सलाह दी।

"ऊँहूँ .. पैसा तो बाजार में बरसता है। घरों मे तो सड़ा-गला अन्न भीख मे मिलता है। जो नही खाया जाता, वह कॅंगलों को दे दिया जाता है। न-न, मै वहाँ नही चलूँगा।" हठ के स्वर से जादो बोला।

"तो क्या आज भूखे ही रहना होगा?" रूपा ने पूछा।

"इसमे क्या शक है। खुले मैदान मे जैसे जी में आवे लेटना—बैठना और मनमानी हवा-धूप का सेवन करना। आज यही होगा। नेता स्वर्ग गया है, हमे भूखे रहकर रोना चाहिए।" तीव्र स्वर से जादो ने कहा।

एक लाल पगड़ी वाले को पास से आते हुए देखकर रूपा ने भीख के लिए अपने गोरे-गोरे हाथ पसार दिए और

दोनों आंखों से जेब की तरफ इशारा किया। सिपाही रूपा की जवानी पर निगाहों से छापा मार कर मुस्कराता हुआ आगे बढ़ गया। उसने कुछ दिया नहीं। रूपा ठिठक कर उसकी तरफ देखती रह गई।

जादो ने पुकार कर कहा—"चल भी। इन से कभी मिला भी है कि आज ही मिलेगा। ये खुद लूट-खसोट करते है, देंगे क्या। इन से नहीं माँगा जाता। इन से तो इज्ज़त बचाने के लिए इज्ज़त वाले सलाम करते हैं। हम कँगलों की इन को क्या फिकिर!"

रूपा दौड़ कर चट से बाप के पास आगई। ठेके की दूकान भी वही थी। जादो ने कहा—"चिलम पी लूँ। बैठ जा जरा!"

यह कहकर वह दूकान के पास जाकर चरस की पुड़िया माँगने लगा। ठेकेदार ने दे दी। दाम माँगने पर उसने कल देने का वादा किया। हड़ताल का बहाना बताया।

ठेकेदार दूकान से कूद कर बाहर फुटपाथ पर आगया और बोला—"वाह, जादो, वाह। कहीं चरस उधार मिलती है! लाओ मेरी पुड़िया।"

'कल दे देंगे दाम। बापू को पी लेने दो। इतना तो विश्वास करो।" यह कहती-कहती रूपा उसके अति समीप पहुँच गई। अपनी नादान हँसी से उसने ठेकेदार को मुग्ध कर दिया। वह रूप देखकर दुबारा पैसे की बात करना भूल गया। उसकी

ज़बान बन्द हो गई । जादो ने चिलम सुलगाई और कसकर पीने लगा। हड़ताल के अँधेरे को वह धुएँ के अन्धेरे से दूर करने लगा।

पी चुकने पर बाप-बेटी दोनों ने ठेकेदार की सराहना की और सलाम बोल कर चल दिए।

जादो को रोककर ठेकेदार ने पूछा—"यह कौन है तेरे साथ?"

"बदकिस्मत है!" जादो ने फौरन ही कह दिया!

"ठीक-ठीक बता बे!" ठेकेदार ने पूछा।

"मेरी रूपा है!" यह कहकर न जाने क्यों जादो हँस पड़ा।

वह चलने को हुआ कि ठेकेदार ने फिर हाथ पकड़ कर कहा—"साले, मुझसे छिपाता है। नए माल में हमारा भी हिस्सा है! चरस जितनी चाहे पी लेना, पर इसे हमे भी ...!"

"ज़रूर ज़रूर. .भला तुम्हे भूल सकता हूँ। अपना ही माल समझो!" जादो ने बड़ी आसानी से कह दिया।

"तो फिर पक्की रही, बदलोगे तो नही?" ठेकेदार ने पूछा और कनखियों से रूपा की ओर एक गहरा इशारा भी किया।

रूपा अधिक सुनना नही चाहती थी। वह अपमान अनुभव कर रही थी। वह दो क़दम लौट आई और अपने बापू का हाथ पकड़ कर आगे बढ़ने को घसीटने लगी।

जब ठेकेदार ने यह देखा तो उसने एक दॉव खेला। उसने कहा—"दोस्त, एक पुड़िया मेरी तरफ से लेते जाओ। अड्डे पर पीना और मुझे याद रखना।"

जादो ने इसे बुरा न समझा। उसने अपना हाथ छुड़ा कर ठेकेदार से चरस की एक पुड़िया ली और फिर सलाम करता हुआ खिसक गया।

रूपा को सबसे अधिक क्रोध अपने बापू पर आ रहा था। ठेकेदार तो बदमाश था ही।

"बापू, तुम्हे तमाचा मारना था बदमाश को।" आवेश मे रूपा ने कहा।

"चाहिये था, नही मारा। जाने भी दो। हुआ ही क्या?" बहुत मामूली तरीके से जादो ने कहा।

"मेरी तरफ घूरता था। तुम से कहता था . . . बेईमान कही का। तुमने उसकी जबान क्यों न खीच ली, बापू। तुम तो चरस की पुड़िया पा कर खुश थे, बोलते कैसे?" घृणा के भाव से वह बोली।

"चल चल आगे बढ़...कँगले इसी तरह कमाते खाते है। कॅगले लड़े तो उल्टा जेल जाएँ। बात ही तो कही थी उसने। कौन तुझे चिपका लिया था। अपनी अम्मॉ से पूछना। बातें न बघार।" गुरुता के साथ जादो बोला।

एक हल्की चपत उसने रूपा के गाल पर लगा दी। फिर प्यार से बोला—"बिटिया, नाराज नही हुआ जाता। कॅगले

हँसी-खुशी की कमाई खाते हैं। गुस्से से उनका गुज़र नहीं होता। कँगले सबको माफ करते हैं। बड़े ग़मखोर होते हैं।"

रूपा गुस्से से चुप थी। बुरी निगाह से देखे जाने पर पीड़ित थी। वह पैर के नीचे ठेकेदार का सिर कुचलती चल रही थी। मन ही मन बुरी बुरी गालियाँ भी देती जाती थी। जादो चरस के नशे से और भी खामोश पड़ गया था।

× × × ×

पीपल के नीचे जादो का अड्डा था। एक छोटी-सी झोंपड़ी डाल रखी थी। शहर के इस लावारिस हिस्से मे बेहद गन्दगी थी। तमाम कूड़ा इधर ही फेका जाता था। हवा मे बदबू ही बदबू थी। कुत्ते, कौवे और गदहों का विकट जमाव लगता था। पर जादो और जादो का कुटुम्ब यहाँ रह कर इन सब बातों का पूरा पूरा आदी हो गया था। नरक के देवताओं को नाबदान बुरा नही लगता।

जब बाप-बेटी दोनों हड़ताल के दिन अड्डे पर वापस पहुँचे तब जादो की औरत एक फटी कथरी पर आधे उघारे अंग, झोंपड़ी से बाहर धूप में लेटी थी। सिर के मोटे-रूखे, बाल खुले पड़े थे। हाथ पाँव पर मनों मैल जम गया था। नाखून काफी बड़े थे। चेहरा आम की चुसी गोटी जैसा था। छातियाँ लौकी-सी लटक गई थी। नौ महीने का उसका बच्चा एक छाती पकड़े मुँह मे दबाये था। टट्टी से उस की दोनों टाँगे सनी थी। कुछ कथरी पर कुछ धरती पर भी लगी थी।

रूपा ने पहुँचते ही माँ को जगा दिया। एक साँस में ठेकेदार का, हड़ताल का, नेता की मौत और बापू के चरस पीने का सारा किस्सा उस ने कह डाला। माँ को पूरी तरह चेत नहीं हुआ था। इस से वह हूँ-हूँ करती जाती थी। कुछ समझी और कुछ न समझी।

दूसरे ही क्षण जब उस को होश आया तो उस ने पूछा—"जल्दी कैसे आ गए?"

जादो ने कहा—"हड़ताल थी, कुछ न मिला, लौट आये। क्या वहीं बैठे रहते?"

"खाओगे क्या? क्या मुझे या इस नन्हे से लौंडे को। इस से तो पेट भी न भरेगा।" कुछ गरम आवाज़ से वह बोली।

"तुम्हें तो पहले ही से, सोलह साल की उमर से, खाता चला आया हूँ। अब क्या खाऊँगा। तुम्हारे हाड़ों मे अब स्वाद ही क्या रहा। चमड़ी तो बिल्कुल उसेई खोल-सी हो रही है। और लौंडे को...वह है ही छटाँक भर का। उस से तो भूख भी न मिटेगी।" जादो बोला।

"अरे राम, कैसी आफत है। लौंडे ने टट्टी भी कर रक्खी है। तमाम कपड़ों मे लग गई है। रूपा, पानी तो ला।" वह बोली।

रूपा अनमने भाव से गई और एक बहुत पुरानी गागर उठा लाई। उस के पानी से जादो की स्त्री ने टट्टी साफ़

की। सौ गालियाँ लौंडे के बाप को और सौ अपने आप को और करीब तीन सौ रूपा को दीं।

इस के बाद अपनी पोटली खोल कर बासी-तिबासी रोटियाँ निकालीं। कुछ खुद खाना चाहती थी और उस से कम कुछ रूपा को देना चाहती थी। सहसा जादो ने झपट कर सब की सब छीन लीं। अलग बैठ कर गपागप खाने लगा। रूपा बाप से खफा थी, वरना उस के पास जा कर एकाध टुकड़ा जरूर माँग कर खाती। वह इस समय बापू को कुड़ कर देख रही थी।

उस की माँ ने झुँझला कर कहा—"कुत्तों की तरह निगले जा रहे हो। कुछ हमें भी दे दो। जनम-भर अपना ही पेट भरा तुम ने। मैं क्या खाऊँ?"

जादो को फुरसत कहाँ थी कि वह बोलता। उस के मुँह में रोटी, गले में रोटी और पेट में रोटी थी। सिर्फ बायाँ हाथ हिला कर उस ने इनकार का इशारा कर दिया।

रूपा की माँ बड़बड़ाती रही—"बड़े निखट्टू हो। कोई दूसरा मुझे ब्याहता तो पहले मुझे खिलाता और बाद को खुद खाता। एक तुम हो, डकारते चले जाते हो, पूछते तक नहीं। भगवान् ने न जाने कितना बड़ा पेट बना कर भेजा है! आग लग जाए उस में। बाजार में हड़ताल थी तुम्हारी, घर में मेरी तो नहीं थी!"

जादो पर झिड़कियों का रञ्च भी प्रभाव न पड़ा। वह

बेअसर बैठा रोटी चबाता रहा। खा चुकने पर उसी बूचे घड़े से चार चुल्लू पानी पीकर चुप्पी मार कर एक करवट से लेट रहा। धीमे-धीमे दादरा भी गाने लगा।

हार मान कर रूपा की माँ रूपा को साथ लेकर रोटियों की फिकर में पास के मुहल्ले की तरफ चल दी। छोटे बच्चे को, जादो के सर पर पटक गई।

"बोलती क्यों नही ? गुमसुम क्यो चल रही है ? मिजाज बिगड़ा क्यों है ?" माँ ने पूछा।

"मेरा नही, तुम लोगों का बिगड़ा है।" रूपा ने जवाब दिया।

"हमारा क्या बिगड़ा है ?"

"बापू चाहते है, मै ठेकेदार के पास जाऊँ। वह मुझे घूर घूर कर देखता है। बापू से इतना भी नही होता कि उसकी जीभ निकाल ले। तुम भी कुछ नही कहती। मुझे बहुत बुरा लगता है।"

"अच्छा, किसी राजमहल मे पैदा होती। रानियों के से नखरे न कर, कंगलों की एक इज्जत होती है। वह है रोटी। रोटी नही है तो इज्जत नही है। रोटी है तो इज्जत है। जो रोटी दे, वह भलामानस है। तेरे बाप सब समझते है। ठेकेदार ने क्या दिया, बता तो तनिक।"

रूपा फिर वही किस्सा दोहरा गई।

उस की माँ सुन कर बड़ी जोर से हँस पड़ी। बोली—

"बस, यह तो कुछ भी नहीं है। तेरे बाप ने ठेकेदार को अच्छा बेवकूफ बनाया। मैं कहती न थी, तेरा बाप बड़ा विसा है। उस जैसा आदमी और नहीं है। मेरी जवानी में मुझे मनचलों के पास बिठला-बिठला कर हँसने-बोलने को कहता था और बात-की-बात में रुपया कमा लेता था। तू भी क्या कहती है। कंगलों को भगवान जवानी न दे तो कोई उन्हें रोटी ही न दे। कोई धरम की भीख नहीं मिलती। सब मतलब से दान देते हैं।"

रूपा सब सुन रही थी, पर वह अभी ऐसी समझदार नहीं थी कि झट से समझ लेती। वह इसी से चुप थी। माँ के साथ-साथ चुपचाप चलती रही।

कई घरों में माँगने के बाद एक घर से एक रोटी मिली। रूपा की माँ उसे खा गई। एक टुकड़ा भी उसने रूपा को नहीं दिया। रूपा के जब आँसू भर आए, तब उसने कहा कि दूसरी में जरूर हिस्सा पायेगी। इसी आशा के सहारे रूपा घर घर भीख माँगती रही। फिर किसी ने रोटी दे दी। इस बार रूपा को चौथाई से भी कम रोटी उसकी माँ ने दे दी। शेष खुद खा गई। कहा, उसका पेट रूपा के पेट से बड़ा भी तो है।

रूपा इस तर्क का कुछ उत्तर न दे सकी। वह सोचती रही कि शायद बापू का पेट उसकी माँ के पेट से भी बड़ा है। तभी तो बापू ने माँ को या मुझ को एक टुकड़ा भी नहीं दिया था।

दोनों की भूख में कोई कमी नही हुई थी । दोनों इसी ताक मे थी कि कही से कुछ मिले तो खा ले । इतने मे "राम नाम सत्त है" की आवाज सुनाई दी । दोनों उसी ओर चली गईं । किसी धनी आदमी की लाश जा रही थी । शंख बज रहे थे । पैसे और बतासे लुटाये जा रहे थे । दोनों ने जब यह देखा तब बुरी तरह से झपट पड़ी । लंबी टाँगों के बीच मे घुस-घुस कर बतासे और पैसे बीने । बीनते बीनते वे मरघट तक चली गईं । जब वहाँ से लौटी, तब माँ के पास चौबीस पैसे थे और रूपा के पास दो ज्यादा । बतासे तो बीनते ही पेट मे समाते चले जाते थे ।

माँ ने पैसे माँगे । मगर रूपा ने नही दिये । दोनों मुंगौड़े वाले की दूकान पर गईं । ठन्ढे थे तो क्या हुआ । दोनों ने भर पेट खाये । पानी पी कर चल दी । कुछ पैसे अभी बच रहे थे । माँ के बहुत इसरार करने पर और पेट के भरे होने की वजह से रूपा ने वह पैसे माँ को दे दिए ।

माँ ने कहा—"रूपा, तू मेरी अच्छी लड़की है । मैं तुझे तेरे बापू से ज्यादा प्यार करती हूँ ।"

रूपा बोली—"बापू के लिए मुंगोड़े नही ले लिए ।"

माँ ने आँख चढ़ा कर कहा—"उन्हे वह तो ठूँस चुके है । तू उनकी फिकर न कर । भूल गई क्या जब उन्होंने खुद खा लिया था और तुझे नही दिया था ।"

रूपा ने कहा—"तुम भी तो यही करती हो !"

माँ बोली—"मैंने तुझे पैदा किया है। तू मेरी बिटिया है। मैं चाहे तुझे जैसे रक्खूँ। वह कौन होता है।"

रूपा ने दूसरी बात शुरू की—"माँ, मैं तो समझी थी कि आज हमारे पेट की भी हड़ताल ही रहेगी।"

माँ ने हँसते हुए कहा—"और क्या, नेता ने सोचा था कि हम भूखों मर जायेंगे। मगर भगवान तो भक्तों की खबर रखता ही है। धनी को मार कर उसने हमारा पूरा पेट भर दिया। राम करे, रोज ऐसे पैसे और बतासे बरसे।

"हाँ अम्मा, राम करे रोज बरसे!" रूपा ने दुहराया।

"जरूर बरसेंगे! हम तुम बदकिस्मत थोड़े ही है। कँगले है तो क्या, भगवान के बनाए हम भी हैं, जैसे सारी दुनिया है। जिसको मुँह दिया है, उसको खाना भी दिया है। .. पर देख तो सही अपने बापू से न कहना कि पैसे लूटे थे, खूब छक कर मुंगौड़े खाये हैं, और कुछ अभी तक पास है। तू जानती है न उसे। वह सब लेलेगा और चरस-भंग में उड़ा देगा या चाट खा डालेगा।" उसकी माँ ने हिदायत की।

"न कहूँगी माँ, नाम तक न लूँगी" सिर हिलाते हुए रूपा बोली।

"अगर कहा तो, याद है उस दिन की मार, वैसे ही मारूँगी। फिर कुछ न सुनूँगी। पैसे तेरे लिए ही तो जोड़ती हूँ। कुछ दिन में कपड़ा-लत्ता ले दूँगी।" समझाते हुए माँ ने कहा।

जादो ने उन दोनों को आते देखा, और कुछ आसरे से

उठ कर बैठ गया। रोते लौंडे को अपनी गोद से उतार कर और रोने को धरती पर लिटा दिया ताकि उसकी स्त्री कदम बढ़ा कर जल्दी, और जल्दी पहुँच जाय। यही हुआ। रूपा की माँ सरपट बढ़ आई। बोली—"दो मिनिट और लिए रहते। ऐसी भी क्या आफत थी कि मेरे पहुँचते-पहुँचते कथरी पर पटक दिया। जैसे तुम्हारा लड़का ही न हो। किसी ग़ैर का थोड़े ही है।"

जादो ने जब दोनों को खाली हाथ देख लिया, तो बेचैन हो गुर्रा कर बोला—"क्या मालूम कि मेरा है। जगह जगह तो फिरती है। मुझे मर्द समझती तो मेरे लिए भी कुछ ले न आती। ठूंस कर चली आई है। मै सब समझता हूँ।"

कनकना कर रूपा की माँ बोली—"बिना ठूंसे तो ऐसा कहते हो। ठूंस कर आती तो ज़िन्दा रहने देते। चैला खींच कर मारते। माँ-बेटी दोनों की हड्डी-पसली तोड़ डालते। साथ गए थे न, जो खाते देख आए हो!"

"साथ नहीं गया तो क्या कंगले घर बैठे सब जानते हैं। मैंने तेरा पेट देख कर जान लिया है कि खा कर आई है। झूठ बोलती है कि अब भी भूखी है। आज नहीं, तुझे बीस बरस से देख रहा हूँ।" आवेश में आकर जादो ने कहा।

"फिर बिल्कुल मुँह के पास अपनी नाक ले जाकर सूँघता हुआ बोला—"देख, तेरे मुँह से पियाज-ही-पियाज महक रही है।"

इतना कह कर अब एक लात पीठ पर मारी और रूपा की ओर बढ़ा। रूपा बापू को आते देख घबड़ा गई। चिल्ला पड़ी—"मैने नहीं खाया—मैने नही खाया अम्मा...अम्मा... ने ...।"

वह यह कहती जाती थी—और एक बार माँ की ओर, एक बार बाप की ओर देखती जाती थी। जब उसने देखा कि बाप से अब उसका बचना नामुमकिन है तो उसने कह दिया—"माँ की चुन्नी मे मेरे हिस्से के दाम बँधे है।"

यह सुन कर जादो अपनी पत्नी की ओर लौट पड़ा और जबरदस्ती उसने पैसे खोल कर निकाल लिए। बेचारी स्त्री मजबूर थी। दांत पीस कर रह गई।

जादो को रोटी खाये घंटों हो चुके थे। पैसे पाकर वह वहाँ से खिसक गया। माँ-बेटी में बात होने लगी।

माँ—"बड़ा दुष्ट है। खाया-पिया तक नहीं छिपता। अब सब पैसे खतम करके आवेगा।"

बेटी—"बाप क्या है, पूरा दैत्य है। बड़ा दुख देता है!"

माँ—"जी चाहता है कि सोते मे गला घोंट दूँ, पर सोचती हूँ कि अपना आदमी है। पैसा कमाया मैंने जनम-भर, खाया-उड़ाया इसने। ऊपर से लात-जूता भी सहो। देखा नही तूने चिलम उल्टी कर दी थी मेरी गदोती पर। अब तक जले का निशान बना है।"

बेटी—"यह आदमी थोड़े है। देख कर डर लगता है।

राम बचाये इस से तो। कौन दिन हूगा जब पीछा छूटेगा। अब ही हलाल कर डालता। वह तो न जाने कैसे बच गई।"

मॉ—"उसे कोई फ़िकर नही है। तेरा ब्याह करना है। तू सयानी हो गई है। कुछ ख्याल नही करता। जब कहती हूँ तो कहता है कंगलों की लड़कियॉ बिना ब्याहे कभी नही रहती। ब्याह तो हो ही जायगा। फिर चिन्ता क्या करना। कौन इज्जत का सवाल है ..।"

रूपा ब्याह की बात सुन कर चुप हो गई। किन्तु वह मन ही मन अपने ब्याह के हो जाने की कल्पना करने लगी। किस से होगा, यह उस को बिल्कुल पता न था। ठेकेदार की शकल सामने आ गई, पर उस ने उसे आँखों के सामने से हटा दिया, मुँह बिचका कर।

\+ \+ \+

दूसरे दिन रूपा को आगे किये, जादो बाजार मे भीख मांग रहा था। रूपा जब जैसा दूकानदार देखती, वैसा ही पार्ट अदा करती। वह एक ही दिन मे न जाने किस तरह सब सीख गई थी। कॅगलों के जीवन मे उस ने पैसों की महत्ता देख ली थी। मॉ-बाप, बेटे-बेटी, कुछ नही होते। सब पैसा होता है। इसी से वह हाथ पसार कर कभी धीरे से कभी जोर से हँस देती थी। कटाक्ष तो नही, पर कटाक्ष करने के ढङ्ग से ही अपनी आँख की पलक जरा नीची कर देती थी। जब राही को ज्यादा भूखा देखती तो अपने अधखुले कुचों को उस की तरफ

कर देती थी। वह लाज-शरम जानती ही न थी। मोहिनी डाल कर पैसा घसीट लेना जानती थी। वह पैसे की भूखी थी। इज्जत या आबरू का उसे कोई ख्याल न था। पैसे मिल रहे थे, इसी से वह प्रसन्न थी। जादो भी अपनी बेटी की कमाई देख देख कर खुश था।

जादो ने सब जगह रूपा को भीख के लिए घुमाया। उस तरफ भी ले गया जिधर वह ठेकेदार था। आज रूपा झिझकी नही। शरमाई भी नही, बेधड़क थी। उछल कर, मुसकरा कर, सीना उभार कर और गोरे-गोरे हाथ पसार कर उस ने ठेकेदार से भी भीख मांगी।

ठेकेदार ने चरस के दाम मांगें तो उस ने कहा—"वह तो कल की भीख थी। आज की दो ठेकेदार साहब।"

यह कह कर वह उस के पास तक अन्दर चली गई। जादो भी हँसता हुआ देखता रहा। ठेकेदार की मुराद पूरी हुई। वह मीठी आँखों से देखने लगा। बोला—"चलो, भीतर बैठो।"

रूपा और उसका बाप ठेकेदार के आंगन में पहुँचे। ठेकेदार ने खाट डाल दी। वे बैठ गए। चरस का इन्तजाम हुआ। जादो ने खूब पी। आँख बचा कर, रूपा के इशारे पर, ठेकेदार ने उस की ओर एक रुपये का नोट बढ़ा दिया। चट से रूपा ने दबा लिया। इस पर भी बोली—"मिले कुछ ठेकेदार साहब।"

चतुर ठेकेदार ने समझ लिया और दूकान से चवन्नी लाकर जादो के सामने दे दी।

वहाँ से चलते-चलते रूपा ने जानबूझ कर, ठेकेदार को अपना उठता हुआ सीना कुछ अधिक उभार कर दिखा दिया। ठेकेदार की आँखे फटक कर रह गई।

+ + +

अड्डे पर पहुँच कर रूपा के माँ-बाप मे रूपा की कमाई पर काफी जोरदार झगड़ा हुआ। बाप कहता था, वह किसी को एक हव्वा भी न देगा। माँ कहती थी, वह आधा बँटा लेगी। बाप कहता था, कमाई उसकी लड़की की है। माँ कहती थी, कमाई उस की लड़की की है। जो मिला है, रूपा की शादी के लिए, थोड़ा थोड़ा करके बचा कर, रखते जाना चाहिए। जादो आज की कमाई आज ही फूँकताप बराबर कर देना चाहता था। वह कल की सोचना ही नहीं चाहता था। राम खबरिया लेवै करि हैं—ऐसा उसका सिद्धांत था। जब दोनों में बातों से झगड़ा न निबटा तो माँ को छाती पर सवार होकर बाप ने मुक्कों से पर्याप्त प्रहार किया और अन्त मे अधमरी करके छोड़ा। वह बेचारी कराहती, कोसती, गालियाँ देती एक तरफ पड़ी रही। जादो मटरगस्ती के लिए निकल गया। किसी को एक पैसा भी न दे गया। रूपा को यह बहुत बुरा लगा। उसने सोचा कि वह बाप के साथ भीख को न जायगी। कभी न जायगी। माँ के साथ भी न जायगी, चाहे जो हो।

वह खुद अकेले माँगने जायेगी।

\+ + +

तीसरे दिन जादो ने तकलीफ करना मुनासिब नहीं समझा क्योंकि उसके पास, खर्च करने के बाद भी, काफी पैसा बच रहा था। रूपा की माँ के चोट काफी पहुँच चुकी थी, कल की मार की। पसलियों मे दर्द था। चलना-फिरना नहीं चाहती थी।

रूपा के खाने की माँ को परवाह थी न जादो को! रूपा अकेले ही निकली। उसके पास ठेकेदार का नोट था। पहले वह मिठाई वाले की दुकान के सामने जाकर तरह-तरह की मिठाइयाँ खाने लगी। दुकानदार ने नोट पहले ही धरा लिया था। जो रूपा माँगती, वह देता जाता। रूपा ने सोहनहलवा, बरफी, रसगुल्ले, पेड़े, सभी कुछ खाया। खा चुकने पर बोली—दाम पूरे हो गए!"

दूकानदार चालाक था। उसने कह दिया—"हाँ"

पास ही पटरी पर बैठा एक युवक कँगला, वह सब देख रहा था। उसकी निगाह रूपा के रूप पर पड़ चुकी थी। वह मन ही मन इरादा कर चुका था बहुत कुछ। रूपा को, एक न एक दिन, अपनाने का। वह हलवाई की बेईमानी देखकर उसे भला बुरा कहने लगा। काफी मजमा इकट्ठा हो गया। रूपा युवक कँगले को तरफ बार-बार देख रही थी। वह उसके इस साहस पर मुग्ध हो गई। ब्याह की बात अनायास उसके मन मे आ

गई। उसको एक बल प्राप्त हुआ। लाचार होकर हलवाई को शेष दाम देने पड़े।

रूपा आगे-आगे चलने लगी और वह युवक कँगला पीछे-पीछे। रूपा कुछ बोलना चाहती थी, पर हिम्मत नहीं पड़ती थी—कृतज्ञता के भाव से ऐसी भरी थी कि ज़बान खुलती ही न थी। किन्तु बार-बार मुड़ कर पीछे देख लेती थी और मुस-करा देती थी। कुछ दूर चलकर वह एक नुक्कड़ पर पहुँच कर बैठ गई। युवक कँगला भी बैठ गया। उसने पूछा—"कहाँ रहती है ?"

"कही नहीं।" रूपा ने कहा और फिर हँस पड़ी।

युवक—"मेरे दिल मे रहेगी ?"

रूपा—"तुम और ··मैं और···।"

युवक—"ब्याह कर लेंगे। एक हो जायेंगे।"

ब्याह का नाम सुन कर रूपा चुप रह गई।

युवक—"जोड़ी अच्छी है। कंगलों के ब्याह मे लगता ही क्या है। साथ निकल चलेंगे। बस ब्याह हो जायगा।"

रूपा—"मेरी माँ हैं—बापू हैं।"

"क्या तुझे मारते नहीं—तुझे भूखा नही रखते ?"

रूपा का चेहरा तमतमा उठा। उसे माँ-बाप का व्यवहार याद आ गया। कल-परसों की घटनायें सजीव हो उठी।

युवक बोला—"मुझे तो मेरे माँ-बाप मारते-पीटते थे। खाना नही देते थे। मैं कई साल से उन्हे छोड़ कर भाग आया

हूँ। मैने पैसे जमा कर लिए हैं। हम तुम दोनों जने खायेंगे। पिएँगे और भीख मांगेंगे। किसी का डर न रहेगा।"

रूपा—"बिल्कुल न रहेगा ?"

युवक—"न!

रूपा—"बापू और अम्मॉ न जाने देंगे।"

युवक—"उनसे पूछता कौन है। तू राजी है तो मै तुझे ले चलूँ। दिल्ली ले चलूँगा। एक बार मैं हो आया हूँ। बड़ा शहर है। खूब भीख मिलेगी। अमीरों की तरह रहेंगे। मैं तेरे लिए बढ़िया बढ़िया धोती कपड़ा लाऊँगा। चप्पल पहनाऊँगा। गहना भी कानों मे हो जायगा। प्यारी प्यारी चूड़ियाँ।"

यह कहता कहता युवक रूपा के अधिक निकट आगया। रूपा पर उसकी बातों का पूरा असर पड़ा। वह भूल गई कि उसके मॉ है, बाप है और एक छोटा भाई भी है।

रूपा ने कहा—"तो कब चलोगे ?"

युवक—"आज—अभी !"

"अच्छा चलो" कहकर रूपा उठ खड़ी हुई और दोनों चल दिए।

+ + +

जब शाम तक रूपा न पहुँची तब मॉ चिन्तित हुई और जादो को ठेल-ठाल कर उसने पता लगाने के लिए भेजा। जादो ठेकेदार की दूकान तक गया और पूछ कर वापस आ गया। बोला—"कही पता नही चलता।"

अपने पति को चुप लगाते देख कर कुछ देर तो वह उसे भला-बुरा कहती रही, किन्तु थोड़ी देर बाद वह भी विराग से भर कर चुप हो गई। जादो को यह भी चिन्ता न थी कि रूपा के चले जाने से आमदनी कम हो जाएगी। वह पक्का कँगला था। कँगलों को कोई फिकिर नहीं सताती। केवल भूख से वह पीड़ित होते हैं और उसको मिटाते मिटाते अपना सब कुछ मिटा देते हैं।

\+ + +

दिल्ली पहुँचते ही रूपा सज-बज गई। उसको संग लिए बाजार में युवक गाता फिरता था—

"कँगला यह देवी लाया, पैसा चढ़ाओ,—
पेट की भूख हमारी बुझाओ—बुझाओ ?"

छुकीना

[डा० रामविलास शर्मा]

हिन्दुस्तान के बीचोंबीच, ऊँचे पठार पर, एक छोटा सा नगर बसा है। हिन्दुस्तान के हृदय जैसा कठोर यह पठार लगता है। कहने को उस पर ब्रिटिश झण्डा नहीं फहराता। जिस छोटे से नगर का यह जिक्र है, वह एक देशी राज्य के अन्तर्गत है। चारों तरफ घना जङ्गल है। उसके बीच घाटी-सी एक गहरी नदी बहती चली गई है।

हम लोग सवेरे घूमते हुए पुलिस की चौकी के पास से निकल गये। मैदान में सवेरे भी कवायद हो रही थी। सिपाहियों के सिर पर यहाँ भी लाल पगड़ी थी। बीच मे हाथ के पंखे की तरह साफे का एक छोर फहरा रहा था। दूर पर खड़ा एक दारोगा उन्हे हुकुम दे रहा था। उसके हाथ आराम से कमर के पीछे बँधे हुए थे। एक लम्बी कतार मे सिपाही क्विक मार्च कर रहे थे। लेफ्ट या राइट टर्न कहने पर जब कुछ आदमी गलत घूम जाते तो उनके बगल के लोग हाथ मार कर बताते कि उन्हे दूसरी तरफ़ घूमना चाहिए। अगली पंक्ति मे तीसरे नम्बर पर एक सिपाही कवायद मे विशेष दिलचस्पी ले रहा था। या तो वह भाग पिये था या दम लगाए था। ज़मीन पर पैर पटक-पकट कर जब वह मार्क टाइम करता तो उसकी गर्दन झुक जाती और सारा शरीर आगे को झोंके खाने लगता। पैर एक विचित्र चुस्ती से यंत्रवत ज़मीन पर पटापट पड़ते ही रहते। दारोगा के हाल्ट कहने पर वह अपना बोझ न सम्हाल कर आगे के आदमी पर लुढ़क पड़ता।

ये स्वतन्त्र भारत के सैनिक थे।

नगर से कुछ दूर एक घने बाग मे दो मन्दिर है। एक मोर मुख्य द्वार पर और दूसरा मन्दिर की चोटी पर बैठा था। टोपी न होने के कारण सिर पर रुमाल रख कर हम लोग भीतर गये। गद्दों के ऊपर सफेद चादरे बिछी थीं। एक गायक विचित्र पगड़ी बाँधे तान-मुरकियों के साथ इमन की दुर्गति

कर रहा थ। हारमोनियम और तबले वाले संगत करने की कोशिश कर रहे थे। मूर्ति की जगह काली साड़ी ओढ़े एक स्त्री की अर्द्धनग्न प्रतिमा थी। उस गायक की कला परखने के लिये वहाँ और कोई न था। केवल प्रतिमा की बगल में तलवार बाधे एक दुबला सिपाही, कभी-कभी तबले वाले की तरफ देख कर सिर हिला देता था।

बाद में हमे मालूम हुआ कि प्रतिमा स्वर्गीया राजमाता की है। यह उन का मन्दिर है और संध्या के समय नित्य इसी प्रकार उन की वन्दना होती है। सप्ताह में एक बार वेश्या का नृत्य भी होता है। मन्दिर में खासी चहल-पहल हो जाती है। लोग राजमाता के दर्शन करते हैं और सङ्गीत का आनन्द भी लाभ करते हैं। सब से कठोर भाग्य उस गायक का होता है जो सांझ के झुटपुटे के बाद घण्टे डेढ़ घण्टे तक खड़े खड़े कंठ की कसरत करता हुआ अपने स्वर-वैचित्र्य से उस मूर्ति को या खड्गहस्त उस सिपाही को मुग्ध किया करता है।

दूसरा मन्दिर हैं स्वर्गीय राजा का। लेकिन वहाँ अभी तक उन की मूर्ति नही पधराई गई थी। एक दिन शाम को रथ पर उन की मूर्ति का जलूस निकला। इसी को छबीना कहते है। राज्य के उच्च कर्मचारी और स्वयम् राजा उस रथ को खीचते हैं। तोपों से सलामी दगती है और आगे आगे फौजी बाजा बजता है। बैंड मे एक बड़ी तोंद वाला सिपाही था। वह अपनी तोंद पर उतनी ही बड़ी ढोल रखे हुए बजा रहा था। सड़क के

दोनों ओर दर्शकों की भीड़ थी। कुछ दूर आगे पहले वाले मन्दिर की वही गायिका, मय साजिंदों के जलूस के साथ साथ चली जा रही थी।

युद्ध की सम्भावना के बहुत पहले ही राजा साहब घोषणा कर चुके थे कि अवसर पड़ने पर वह धन और बल से ब्रिटिश सम्राट और ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता करेंगे। मन्दिर में देवी के स्थान पर राज-महिषी की मूर्ति स्थापित है। दूसरे मन्दिर में देवता के स्थान पर स्वर्गीय माता की मूर्ति स्थापित की जायगी। उन की प्रतिमा को सजा कर बड़े समारोह से, जलूस निकाला जा रहा है। सेठ साहूकार विचित्र विचित्र पोशाके पहन कर इकट्ठे हो गये है। बच्चे खिलौनों के लिये मचल रहे हैं। बूढ़े जवान सभी शौक से तमाशा देख रहे है।

धूल उड़ाती राजा साहब की मोटर नगर छोड़ कर राजधानी चली गई। साँझ के झुटपुटे में भीड़ भी इधर उधर खो सी गई। उस ऊँचे जङ्गली प्रदेश पर अंधेरा घना होता गया। हम लोग सड़कों की तारीफ करते घर आए। सड़कों की सुघराई का एक कारण यह था कि उधर से बैलगाड़ियों के आने जाने की मनाही थी। इन सड़कों पर सरकार की मोटर या दुकानदारों के ताँगे ही चल सकते थे।

'छबीना' का आयोजन राजधानी मे न हो कर इस छोटे से नगर मे होता था। इस का भी एक कारण था। स्वर्गीय महाराजा की यह आखेट-भूमि या विलास-भूमि थी। राज्य के

अन्य नगरों की अपेक्षा यहाँ गर्मी भी कम पड़ती थी। अपने रहने के लिए उन्होंने यहाँ बहुत सी सुन्दर कोठियाँ बनवा रखी थीं। एक ऊँची पहाड़ी पर इङ्गलैंड की मध्यकालीन कैसिलों के अनुकरण पर एक सुंदर कोठी बनी थी। काफी परिश्रम कर के हम कोठी तक पहुँचे। दूर से वह दो-तीन सौ साल की पुरानी इमारत जान पड़ती थी। लेकिन भीतर से वह एकदम नई थी। यानी ऐसा लगता था कि इसे बने दो ही चार साल हुये होंगे। बाथरूम में शौच के लिये स्वच्छ कागज के टुकड़े अब भी रखे थे, यद्यपि नये राजा को इन सब से कोई विशेष स्नेह न था। कोठी से दूर दूर तक का दृश्य दिखाई देता था। चारों ओर घना जङ्गल, ऊंची नीची पहाड़ियाँ, बीच में नदी का निर्मल जल।

कोठी के रखवाले ने कहा—"उधर आसीमासू है। उन्हे भी देख आइये।"

एक फर्लाङ्ग पर घने पेड़ों की छाया मे दो मूर्तियाँ थी। एक स्त्री की और दूसरी पुरुष की। दोनों ही नग्न और अपना स्नेह प्रदर्शित करते हुए एक वीभत्स मुद्रा मे निश्चल खड़े थे। यही 'आसो-मासू' (आशिक-माशूक) थे।

'आसी-मासू' को देख कर हम वापिस लौटे। चौकीदार ने कहा—"बाबा जी, यहाँ गांधी महाराज कब आऐंगे?" हम ने जब कारण पूछा, तो उस ने बतलाया—"पास के एक गाँव से कुछ मुसलमान गुण्डे एक काछिन को भगा ले गये। कहीं कोई सुनवाई नही हुई। गाँधी महाराज आवें तो उन्ही से

फरियाद की जाय।"

डेरे पर लोग बातें कर रहे थे। नगर से दो-तीन मील पर कुछ घसियारे अपनी गाड़ियाँ लिए आ रहे थे। एक बाघ ने उन की राह रोक ली। घसियारों ने हल्ला मचाया, पर बाघ न हटा। तब उन्हों ने घास में आग लगा दी और अपनी जान बचाई।

जंगल मे बाघ बहुतायत से हैं। उन्हे मारने की मनाही है। निहत्थे किसानों का शिकार करने को वे स्वच्छन्द है दो-चार घायल आदमी सदा ही अस्पताल में पड़े रहते है। बाघ इतना परिचित बन्धु हो गया है कि केवल 'वह' कहने से ही उसका बोध हो जाता है।

सांझ का अँधियाला झाड़-झंखाड़ों के रंग से मिलने लगा है। इस समय यह पठार ऐसा निर्जन लगता है जैसे मनुष्य कभी यहाँ आया ही नही। दूर से भारी दहाड़ने की आवाज अक्सर सुनाई दे जाती है। इस वन्य एकान्त मे रह कर मनुष्य सहज ही स्वाधीनताप्रिय हो जाता है। दिन मे एक छोटी कुल्हाड़ी लिये, लंगोटी लगाये, काले-काले आकार हठात् किसी पगडंडी के मोड़ पर आते-जाते मिल जाते है। जहाँ शिकारी बन्दूक लेकर जाते डरते हैं और राजा साहब छोटे-छोटे शिकारगाहों मे बैठ कर छेद से झाँकते हुए, शेर की प्रतीक्षा करते है, वहाँ वे अपनी छोटी-सी कुल्हाड़ी लिये निर्भय घूमा करते हैं। बाघ को वे कुत्ता कहते हैं। जो लोग

उस का नाम लेते भी डरते है, वे केवल 'वह' कह कर उस की ओर इशारा करते है। नगर के छोटे-मोटे दूकानदार तथा नौकरी-पेशा मध्यवर्ग के लोग ही ऐसे है जिन्हे बाघ का नाम लेते कॅपकॅपी चढ़ती है।

हिन्दुस्तान के बीचों-बीच यह पथरीला प्रदेश उस के हृदय-सा अजेय लगता है। जब वृक्ष और छाया एक होने लगते है और दूर तक फैला हुआ वन एक विचित्र सॉय-सॉय से भर जाता है, तब शासन और शासकों की सत्ता एक कल्पित स्वप्न जैसी लगने लगती है। यही चारों ओर से हताश निराश हो कर तांत्या टोपी ने आश्रय खोजा था। यही किसी पेड़ की डाली से रस्सी बॉध कर उसे लटका दिया गया था।

थकान से उस दिन हम लोग जल्दी ही सो गये। रात मे कभी-कभी आदमियों के चिल्लाने जैसी विचित्र आवाजें सुनाई देती रही। नीद में मालूम न होता था कि ये आवाजे हम स्वप्न मे सुन रहे है या वे सच-मुच की है। सवेरे मालूम हुआ कि कुछ किसान वसूली के मामले मे आये थे। उन के हाथ पीछे बॉध दिये गये थे और उन के पैरों को, जहॉ तक वे फैल सकते थे, फैला दिया गया था। तभी वे सब से ज्यादा जोर से चिल्लाये थे। पैरों को इस तरह चीरने के बाद उनके बीच मे दो दो बड़े-बड़े पत्थर रख दिये गये थे जिस से वे एक दूसरे के नज़दीक न आ सकें। इसके बाद उन पर जूतों और बेलों की मार पड़ी थी। मारने वालों का कहना था, बिना मार

खाये ये रुपया कबूलते ही नही।

जमीदार या महाजन के महींदार बन कर वे रुपया अदा कर सकते थे। महींदार बनने का मतलब है, जमीदार या महाजन के यहाँ अपने आप को गिरों रख देना। महींदार को एक गुलाम की तरह अपने मालिक का सब काम करना पड़ता है। सेवा की अवधि उधार लिए हुए रुपयों के अनुसार होती है। अवधि पूरी होने पर वह फिर स्वतन्त्र (?) हो जाता है।

मार खाने वालों के पेट खाली थे। उन्होंने धरती में चाहे जो गाड़ रक्खा हो, उसे पेट मे न रखा था......!

× × ×

कल छबीना के साथ ये भी दौड़ रहे थे। राज्य की ओर से इन के लिए सदावर्त बाँटने का इन्तज़ाम किया गया था। राजा ईश्वर का अवतार होता है। वह एक दम दया-शून्य हो जाय, भला यह कैसे हो सकता है।

झुलनी

[निर्मला मित्रा]

भादों की भरी-पूरी नदी भीषण रूप धारण किये थी। उसकी पर्वताकार तरंगें एक के बाद एक तट से टकराकर प्रबल कोलाहल मचा रही थी। लग रहा था मानो शत सहस्र दानव आज पृथ्वी को निगल जाने की बाजी लगाकर एक साथ

ही अट्टहास करते हुये दौड़े आ रहे है। रक्त-रंजित उनकी लाल जिह्वा, अपने ज्वालामयी प्रदाह से, बार-बार पृथ्वी का स्पर्श कर, बिजली के रूप मे, रह-रहकर प्रकाशित हो रही थी।

आसन्न वर्षा-भरी संध्या! वृष्टि की कुछ न पूछो—चराचर को आच्छन्न कर, अविराम धारा से झर झर पानी बरस रहा था। उधर ईशान के कोण से उठी हवा अलग एक प्रलय उपस्थित किये थी। वायु इतने प्रबल वेग से बह रही थी कि झुलनी के सिर पर छप्पर बस टूटे, कि अब टूटे। किन्तु झुलनी को इसका आभास तक नही है। वह बाँसों उछलती नदी की तरफ आँखे टिकाये, संध्या होते न होते, किवाड़ से जो टिकी सो अभी तक चित्रवत् टिकी ही है।

जो भी हो, अभी तक दिन था। झुलनी का धैर्य भी अभी तक उसी के आश्रय मे था। परन्तु काली चुड़ैल-सी रात अब अग्रसर होती जा रही है। उस के प्रभाव से गाढ़ अधकार अब चारों ओर छा जावेगा। तब...तब इन उत्तुंग तरंग मालाओं से जूझता उस का पिता क्या कभी उपकूल पा सकेगा .नहीं-नही...!

अब झुलनी के आँसू भी मानो बरसते पानी से होड़ लगा, धार बाँध कर, बरसने लगे। रोते-रोते वह, सोचने लगी—"कटकर गिर जाय इन बाबू लोगों की जीभ। उन के स्वाद के लिए ही तो दादा भरी साँझ मे जाल लेकर मछली मारने गये। मर जायँ बंगाली बाबू ..उन की जात को दई खा जाय"'

हर निवाले के साथ अगर मछली न हो तो उनके प्राण निकल जायँ'' और हत्यारी नदी भी तो आज डाकिन-सी सायँ-सायँ दौड़ रही है। लग रहा है, आज मेरे दादा को निगल कर ही दम लेगी। दुबले-पतले हाथों से, इस राक्षसी नदी की प्रबल तरंगों को ठेल कर, क्या मेरे दादा से डोंगा खेते बनेगा। दादा दुबले न पड़ें तो पड़े कौन। जब से राशनिंग हुआ है, भरपेट दोनों जून तो एक भी दिन अन्न न मिला। राशनकार्ड के नपे-तुले अन्न से हम मेहनत-मजदूरी करने वालों का पेट थोड़े ही भर सकता है। हाँ, पेट भरता हो शायद उस बंगाली मास्टर का जो दीखने में दुबला-पतला है, खाता कम है, पहनता महीन है। इन बाबू लोगों का अन्न का खाना भी क्या, उसे फूल जैसा सूँघना ही समझो। तभी तो अपने राशन-कार्ड से पाँच-छः सेर अन्न बचा कर हमें मछली के दाम के बदले प्रतिमास देता है।

मास्टर फूल सूँघता है, अन्न नही खाता। किन्तु उसके दिये अन्न पर इस तरह से बँध जाना आज झुलनी को अखर गया। रोती-कलपती झुलनी का जी कहने लगा—"जाऊँ और उस मास्टर से ही उलझ पड़ूँ। उसी की चप्पलों से उस की मरम्मत कर आऊँ। उसकी मखमली किनारी की महीन धोती दाँतों से चीड़-फाड़ डालूँ। पढ़ने-लिखने की मेज में आग लगा दूँ। लाखों गालियाँ सुनाऊँ। फिर धक्का मार कर इसी नदी में ढकेल दूँ। कह दूँ—ले, अब जी भर कर खा ले

ताजी मछली !"

इतने में सड़क पर, भरे पानी में, पैरों की छप्-छप् आवाज़ ' '''झुलनी अति उत्साह से अँधेरे में आँखें गड़ा कर चिल्ला उठी—"कौन ·····दादा ···· ···?"

पर दादा होता तो वह प्राण पा जाती। दादा, नहीं, वह था झुमरू। झुमरू को भी बहुत-कुछ उद्वेग ने सताया। घर में दीया-बत्ती कुछ है नहीं, ऊपर से झुलनी के गले की आवाज़ भयातुर और रोने-सी लग रही है। अतएव, पड़ोसी के नाते कुछ पूछा जाय, यह सोच कर उस ने अपना गीला, भारी, कंधे पर रखा जाल झुलनी की देहरी पर धप् से पटका, फिर देहरी पर चढ़ उस के बराबर में खड़ा हो कर बोला—"क्या हुआ री झुलनी, तू रोती क्यों है ?"

झुलनी का जी हुआ, आवेग से उस का हाथ पकड़ आरज़ू करे, मिन्नत करे और कहे—''इस उन्मादिनी नदी के चक्कर से तुम मेरे दादा को बचा लाओ।"

लेकिन नहीं, झुलनी डरी। क्योंकि झुलनी का बाप महेश बड़ा हेकड़ माझी है, ज़िद्दी और बेहद अड़ियल। जैसे अड़ियल घोड़ा सवार को पीठ पर से पटक कर ही दम लेना चाहता है, वैसे ही वह महेश माझी भी जिस बात पर अड़ जाता है, उसे कर के ही दिखाता है। सिर्फ एक जगह उस का मन कुछ दुर्बल हो जाता है। वह जगह है झुलनी। उस की यह दुर्बलता भी विधाता की एक अपूर्व देन है।

पाँच-साल पहले झुमरू से झुलनी की शादी तय हो चुकी थी। अगहन की एक शीत-संध्या मे लग्न भी पक्का हो चुका था। किन्तु ऐन मौके पर झुमरू की माँ टेढ़ी पड़ी। बोली—"यह शादी तो मै प्राण रहते हरगिज न होने दूँगी।"

"क्यों भई, बात क्या है ?" जातिवालों ने पूछा।

झुमरू की माँ ने सामने के स्कूल की ओर संकेत किया। बोलीं—"उस स्कूल के बंगाली मास्टर से झुलनी की साँठ-गाँठ है। झुलनी रोज़ उसके पास पढ़ने जाती है।"

जातिवालों ने कनखियों से दस साल की झुलनी की तरफ देखा। फिर नीची गरदन कर, मुँह दाबे, एक-एक कर सब उठ गये। झुमरू की बहन गजरी ने झुलनी के मुँह के सामने अँगूठा मटकाया। बोली—"बहुत मास्टर जी, मास्टर जी, करती थी। अब ले, पढ़ ले ए-बी-सी-डी ..रोटी लगेगी अब रोटी...दारू-गोश्त, कढ़ी-फुलौरी .।"

फिर विजय-गर्व से वह हँस उठी—"ही-ही-ही-ही।"

महेश की हमेशा की नशाभरी आँखे और लाल हो उठीं—मानो अब आग की लपटे निकलना ही चाह रही हों। झुलनी दबी-दबाई, एक कोने मे बैठी, काँप रही थी। यद्यपि प्रहसन के रहस्य का सब कुछ वह न समझ सकी थी, फिर भी बाप की आँखों से इतना तो पक्का जान रही थी कि प्रलय होकर ही रहेगी। फिर जब महेश को गंडासे मे धार देते देखा तब एकदम फफककर रो उठी—"ओ दादा रे-.!"

महेश के हाथ रुक गये। फिर धीरे-धीरे आँखों मे करुणा छा गई। बेटी की तरफ एकटक देखते हुए भरे गले से उसने इतना ही कहा—"झुलनी . ।"

महेश ने बेटी का झुलनी नाम खुद रखा है.। छोटेपन मे माँ खोई लड़की को झूले में डाल महेश ने पाला है। महेश का धन्धा मछली पकड़ने का है, घर बैठने का नही ।। अतएव शाम को बेटी को झूले में डाल महेश रात को मछली के शिकार को चला जाता था। फिर सुबह घर लौट, उसे झूले से उठाकर पुचकारता, उसका चूमा लेता और फिर नहला-धुला कर कुरता बदल, पड़ोस की चाची के पास ले जाता। कहता—"चाची री, तेरे पास कजरौटी है। आँज दे जरा इसकी आँखन मे। बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखे है। खुलेगी खूब ।"

चाची हँसकर कहती—"बरे तोरी बिटिया की आँख। जरा-सा नोन घोलकर पिला दे। झूला मे टे बोलकर रह जायगी। हत्यारी ने आते ही माँ को खा लिया। ऐसी लड़की पर इतना प्यार...!"

महेश झुलनी को छाती से चिपटा कर अपने घर ले आता। फिर उसे झूले मे सुलाकर कहता—"राना नही रानी बिटिया, रात की मछली हाट में बेचकर मै अभी तेरा दूध लाया।"

वही इतनी साध-प्यार की लड़की, अब कोने में बैठी, सिसक-सिसक कर रो रही है। महेश ने सोचा—मेरी खूनी

सूरत और खूनी करतूत देख उसका नरम कलेजा कितना धड़क रहा होगा। चिन्ता मात्र से उसने हाथ का गँडासा दूर पटक दिया और दौड़कर उसने झुलनी को छाती से चिपटा लिया। फिर सिर पर थपकियाँ देता हुआ बोला—"बिट्टी, एक तू ही है जो मेरी कौल-कस्मों तक को डावाँडोल कर देती है। नही तो किस की मजाल थी जो आज झुमरू के माँ-बाप को मेरे हाथ से बचा लेता। सोचा था, रात को जब मछली खेलते हुए वे दोनों श्मशान घाट तक पहुँचेंगे, तब चुपके से दोनों का सिर उतार कर श्मशान माई को चढ़ा दूँगा।"

लड़की फिर फफक कर रो उठी—"न-न-न, ऐसी बातें न करो दादा, मुझे डर लगता है।"

"अच्छा तो जाने दे। लेकिन तू भी अब कभी पढ़ने न जाना। हम ग़रीबों का पढ़ना भी क्या . ।"

लड़की प्रसन्नता से बोली—"अच्छा।"

निश्चय ही झुलनी फिर कभी पढ़ने न गई। मास्टर ने भी कभी बुलौआ न भेजा।

तीन-एक साल के बाद अचानक एक शाम मास्टर सरसों के खेत की मेड़ पर दिखाई दिया। झुलनी कण्डा बीनती उधर से लौट रही थी। उसके मुँह से निकल गया—"इधर कैसे आये मास्टर जी?"

"अरे, मछली को आया था। यह देख, अभी की पकड़ी ताजी मछली। हम बंगालियों की यही तो बुरी आदत

है, मछली के बिना निवाला मुँह में नही जाता।"

"तो दाम कितना लगा मास्टर जी ?"

मास्टर हँसा। बोला—"राशनकार्ड से कुछ गल्ला बच जाता है। बस, वही बाकी का अन्न मास के अन्त में मछवाहा ले लेगा और बदले मे मुझे रोज़ शाम को ताज़ी मछली मिल जाया करेगी।"

झुलनी अब दस साल की नही, तेरह साल की है। राशनिंग-प्रथा से बाप-बेटी को अन्न पुरता नहीं, यह बखूबी समझती है। वह झट से कह बैठी—"रोज़ शाम को ताज़ी मछली मैं दिया करूँगी। तुम मुझे गल्ला दे दिया करना मास्टर साब।"

मास्टर राज़ी हो गया, लेकिन महेश बिगड़ा। एक रोज़ कह बैठा—"देखिये साब, हाट मे ढेर-सारी मछली मिलती है। आप वही से खरीद लिया करें।"

भौचका मास्टर कहने लगा—"मगर...?"

महेश ने सीधे-रास्ते की तरफ हाथ दिखा कर कहा—"अगर-मगर कुछ नहीं, मेरी लड़की काफी जवान हो गई है। यह आप नही समझते साब...?"

मास्टर जीभ दाँतों से काट कर दस हाथ पीछे हट गया। फिर धीरे से बोला— 'ओह.. अच्छा!"

राशन का रहस्य ढँका ही रह गया, लेकिन कितने दिन... महेश ने लक्ष्य किया, झुलनी दुबली होती जा रही है। बोला—

"दीखता है, अन्न पुरता नही। काहे रे झुलनी, तूने तो हॉडी का सारा भात मुझे ही उड़ेल दिया ?"

झुलनी बोली—"क्या करूँ, तुम बूढ़े हो गये हो। तुम्हें तो दो जून भर-पेट खुराक मिलनी ही चाहिये। इसीलिये मास्टर से मैने गल्ला ठहराया था, लेकिन तुम.........?"

महेश अपनी करनी पर जैसे कटकर रह गया। फिर शाम को मास्टर के पास जाकर बोला—"ग़लती हुई साब, माफ़ करिये। अब गल्ला मुझे ही मिलना चाहिये। रोज शाम को मछली मैं हाज़िर करूँगा।"

मास्टर वोला—"अच्छा।"

इसी मास्टर के लिए ताज़ी मछली की खोज में आज महेश, नदी की इतनी उत्ताल तरंगों में भी, भरी सॉझ को डोंगा बहाकर, जाल फेंकता हुआ, अदृश हो गया। इधर रात क्रमशः गहरी होती देख झुलनी उतावली हो रो उठी और उत्तर की आशा मे बहुत देर से देहरी पर खड़ा झुमरू भी ऊब उठा। झुलनी उससे बोलेगी नही, यह आभास जब पक्का हो गया, तब उसे भी प्रचण्ड क्रोध हो आया। अत्यन्त कटु आघात देता हुआ वह बोला—"इतनी जो फफक-फफक कर रो रही है, यह किसके लिये—उस मास्टर के लिए ही तो, लेकिन तुझे ख्याल करना था, इतने कीच-पानी में बाबू लोग घर से बाहर नहीं निकलते।"

गुरसी मे कण्डे की आग धधक रही थी। झुलनी को

लगा, उसी लहलहाती आग की लपटों में उसका सारा तन जल उठा है। बस, प्रचण्ड प्रदाह से ज्वालामयी झुलनी ने, जवाब के रूप में एक धधकता कण्डा उठाकर झुमरू पर प्रहार कर ही तो दिया।

"बाप रे, डाकिन है या बाघिन, चूल्हे में जा हत्यारी!" कह कर देहरी से कूद झुमरू अँधेरे मे अदृश्य हो गया। पीछे-पीछे जली-भुनी झुलनी भी निकल आई। अँगीठी मे आग धधकती रही। हाँडी मे चावल चुड़-चुड़ कर खाक बनता रहा। द्वार खुला पाकर एक मरियल कुत्ता, जो आश्रय के लिये अब तक देहरी के एक तरफ खड़ा काँप रहा था, अब सुविधा पाकर, अपने हड्डियों का ढाँचा शरीर को यथासम्भव सिकोड़ कर, अन्दर घुस पड़ा।

हवा—पानी—कीच—अंधकार को चीरती झुलनी, भूतनी-सी विकट बनकर, एकदम मास्टर के आँगन मे आकर रुकी। बन्द किवाड़ों की सेंध से रोशनी की तनिक-सी चिलक दीखी। मुँह पर के गीले रूखे हवा से विपर्यस्त बाल हटाकर चिल्ला उठी—"मास्टर, ओ मास्टर!"

हाथ मे लालटेन लिए मास्टर किवाड़ खोलकर निकल आया। फिर अत्यन्त भय-चकित नेत्रों से उसकी तरफ ताककर बोला—"तू...?"

"हाँ, तुम्हारी लपलपाती जीभ की शान्ति के लिये आज मेरा दादा इस तूफान मे·· ··· 'हाँ हाँ, उस का कोई चिह्न नहीं

है.........अब बताओ न, मैं क्या करूँ ?"

झुलनी का यह उलटा अभियोग, लेकिन उस से कहे कौन कि तेरा दादा ही 'परमिट' का हिस्सा बँटाने के लिये मछली देता रहा है।

मास्टर को नीरव देख कर झुलनी फिर फट पड़ी। निदारुण व्यङ्ग से बोली—"ऊँट से खड़े केवल मुँह ताक रहे हो, कोई उपाय नहीं सुझाते बनता।"

धैर्य की प्रतिमूर्त्ति मास्टर चमक कर केवल इतना ही बोला—"अच्छा, ठहर।"

उस ने लालटेन मन्द कर के खूँटी पर टाँग दी, फिर द्वार की जञ्जीर चढ़ाई और अरगनी के लिये जो बाँस आज तक कपड़े सुखाने के व्यवहार में आता था, उसे रस्सी के बँधन से खोल झुलनी के बराबर आ कर बोला—"अब चल।"

"कहाँ ?"

"घाट पर आज ढेर डोंगे बँधे होंगे। किसी न किसी का ले लूँगा।"

"मतलब ?"

'मतलब, तेरे दादा को ढूँढ़ना है।"

झुलनी साथ चलते-चलते पूछ बैठी—"किन्तु तुम्हें डोंगा खेना भी आता है ?"

"खूब-खूब, मैं गङ्गा जी के देश का रहने वाला हूँ, डोंगा खेना भी जानता हूँ और तैरना भी जानता हूँ।"

किन्तु घाट पर आ कर मास्टर को लगा, एवरेस्ट की चढ़ाई मे भी शायद इतनी जोखिम न होगी । पैर एक जगह से फिसले तो फिर रुकने का नाम ही न ले । जो भी हो, महा-अन्धकार में मास्टर बॉस टेकता हुआ नीचे उतरा। फिर चिल्ला-कर बोला—"झुलनी, मै डोंगे पर बैठ गया । तू ऊपर से रस्सा खोल दे ।"

झुलनी ने फुर्ती से खूॅटे से बॅधा रस्सा खोल दिया और चिल्ला कर बोली—"रस्सा खोल दिया, सॅभालो ।"

परन्तु नीचे से कोई आवाज नही आई। झुलनी के हाथ से रस्सा सरसराता नीचे उतर गया। झुलनी श्वास रोके खड़ी रह गई। एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट—न कोई कंठ स्वर, न डोंगा खेने की छप्-छप्। अब झुलनी कांप उठी। गला फाड़ कर कहना चाहा—"ओ मास्टर, तुम लौटो, तुम लौटो।"

लेकिन नदी की रुद्र जलोच्छ्वास उस की जाग्रत सत्ता को लुप्त कर केवल व्यङ्ग से कहने लगी—"छल-छल-छल ।"

+ + +

"बेटी झुलनी, अरी कहाॅ है तू ।" महेश ने उस की पीठ पर स्नेह-कोमल हाथ रखा ।

"भला तुझ सी भी कोई पागल होगी। चल, उठ। कैसी शीत मे ठिठुर रही है। दॉत किट-किट बोल रहे है। नही-नहीं, हाथ न छुड़ा, कॅपते कॅपते गिर पड़ेगी ।"

सुबह होते न होते झुमरू का सारा परिवार महेश पर

टूट पड़ा—"हाँ-हाँ, यह तेरा ही काम है, तूने ही हमारी रस्सी खोल कर डोंगा बहा दिया है। लेकिन क्या हमारी तकदीर भी बहा सकेगा। हमारी तकदीर मे होगा तो ढ़ाई मील दूर नर्मदा ब्रिज के सींकचों मे हमारा डोंगा, उलझा हुआ मिल ही जावेगा।"

छः सात रोज बाद डोंगा मिल भी गया, लेकिन दुर्योग-रजनी का वह साहसी यात्री……!

झुलनी का जी ठीक न था। उस ने आज दाल में दो बार नमक डाल दिया। वह एक दूसरे ही लोक मे पहुँच गई थी। महेश दूसरी ही चिन्ता में डूबा था। वह कह रहा था—"और देख न, बाबू कितना धोखेबाज निकला। रातों रात देश चला गया। मगर कभी न कभी तो लौटेगा ही। मै न रहूँ तो झुलनी, तू ही उस से दाम वसूल कर लेना। मेरी मछलियाँ क्या फोकट की थी।"

"हाँ वसूल… … लेकिन वसूल कौन किस से करेगा, यह क्या पता?" झुलनी दाँतों से ओंठ दबा, चूल्हे से चिपकी, पत्थर सी बैठी रही।

नदी उतर गई है। वर्षा का ताण्डव उस के वक्षस्थल से अपसृत हो गया है। झुलनी कण्डा बीनने रोज ब्रिज तक पहुँचती है। कही ब्रिज के सीकचों से उलझी महीन धोती की वह मखमली किनार, नीचे दलदली जमीन मे गड़ी कमीज का एक-आध बटन—या अँगूठी का वह नीला नग ही……!

"नही-नही," झुलनी सोचती घर आती और रात भर सोचती रहती। "गङ्गा जी के देश का आदमी—डोंगे का खेने वाला—अपूर्व तैराक ····।

रात का अँधेरा और भी घना हो उठता। स्थिर दृष्टि से, अँधेरे को भेद कर, वह कुछ आधार पाने का प्रयत्न करती, और अँधेरे मे खो कर रह जाती।"

—०—

मनुष्य और पशु

[राधाकृष्ण]

अभी हाल मे आदमी ने पशुओं के ऊपर एक भारी विजय प्राप्त की है। पहले इक्के, ताँगे और फिटिन की सवारी थी। उसे घोड़े खीचते थे। फिर रिक्शा का प्रचलन हुआ। इसे आदमी खीचते है। लगातार कई वर्षो तक आदमी और घोड़ों मे एक भीषण व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता चलती रही। उसके बाद आदमी ने घोड़ों को परास्त कर दिया। अब तमाम रिक्शा ही रिक्शा नजर आते है। घोड़े वाली गाड़िया बहुत विलुप्त हो चुकी है, कुछ जो बची हैं, सो शीघ्र ही विलुप्त होने को प्रस्तुत है।

घोड़े की अपेक्षा आदमी अच्छा होता है। दुलत्तियों का खौफ इनसे नहीं रहता। घोड़े तो कानून की जरा भी परवाह नही करते सड़क पर जहाँ-तहाँ लीद कर देते है, आदमी के द्वारा ऐसी हरकत नही होती। ये कानून की पावन्दी मानते हैं।

इसके अलावा जिस मुसाफिर को ये अपनी गाड़ी पर चढ़ाते है, उससे दुख-सुख की बाते भी किया करते है।

एक रिक्शा वाला मेरी फुलवारी के घर मे रहता है। रोज आधी रात को वह टिमटिमाती हुई लालटेन (जिससे मिट्टी के रंग की लाल-सी रोशनी निकलती रहती है) लेकर फुलवारी मे घुसता है। मेरे माली से उसकी रिश्तेदारी है। रोज रात को वह वही सोता है। उसे मैं जानता हूँ। नाम है उसका रामू। उसे मैने अक्सर फुलवारी मे आते देखा है; जाते किसी दिन भी नही देखा। तड़के उठकर कब वह चल देता है सो मुझे मालूम नही। तब से वह आधी रात तक रिक्शा मे जुता रहता है। किसान के बैलों को हल लेकर कभी-कभी ही काम करना पड़ता है, लेकिन रामू को सब दिन काम करना पड़ता है। बारहों मास, तीसों दिन। रामू है और उसका रिक्शा है।

सो रिक्शा भी उसका नही है। रिक्शा का वह भाड़ा देता है। रिक्शा किसी मध्यवर्गीय विधवा की है। वह कोई काम नही कर सकती। उसी ने पाँच-सात रिक्शे खरीद लिये है। आठ आने रोज के हिसाब से हर एक रिक्शा का भाड़ा मिल जाता है। रामू भी उसी विधवा का रिक्शा खीचता है।

मैने रामू के रिक्शे पर सवारी भी की है। भीड़ वाली सड़कों पर भी वह ऑका-बॉका होकर इस तरह तेजी से दौड़ता है कि देखकर आश्चर्य होता है। मोटर से, बस से, कभी-कभी ऐसा मालूम हुआ कि टक्कर लग जायगी—अब लगी, अब

लगी—पर रामू बाल-बाल बच कर निकल जाता है। पहले लोग इक्कागाड़ी के घोड़े के गले मे घुँघरू बाँधते थे। रामू भी घुँघरू रखता है। घुँघरू रखने का कानून है। लेकिन वह इतना करता है कि घुँघरू का हार बनाकर गले में नहीं बाँधता। सिर्फ एक ही घुँघरू वह अपने दाहिने हाथ मे रखता है और चलते समय अविराम गति से रिक्शा के बम्पर से घुँघरू टकराता रहता है। ठक-ठक, ठक-ठक, एक सधा हुआ गत-सा बराबर निकलता रहता है। रिक्शा पर सवारी करने वालों को यह गत कंठस्थ हो जाता है। खुद रामू को इस गत के अस्तित्व की याद नहीं रहती। ऐसा गत बजाते रहना उसके लिये अनिवार्य है—ठक-ठक, ठक-ठक—मधुर-सी एक आवाज़। तब राही जान लेते हैं कि पीछे से रिक्शा आ रहा है। वे हट जाते है, राह दे देते हैं, रिक्शा आगे निकल जाता है। रामू अच्छा आदमी है। जब मैने उसे भाड़े के पैसे दिये है, तब लेते समय उसे कुछ संकोच हुआ है और बरबस हँस कर उसने अपना संकोच हँसी मे ढाँक दिया है। वह मुझे पहचानता है। मुझ पर कुछ अहसान-सा भी करना चाहता है, मगर...खैर...

अब मेरे एक मित्र हैं सो लालपुर मे रहते है। उस दिन उनके यहाँ राम के रिक्शे पर ही पहुँचा। देखता हूँ कि दरवाजा बन्द है और वहाँ कुर्सी पर एक पुर्जे पर चंद पंक्तियाँ मेरे नाम लिखी है कि तुम आओ तो ज़रा बैठ जाओ, कुर्सी रखी है। काम ज़रूरी था। अगर कुर्सी नहीं भी रहती तब भी वहाँ रुकना

ही पड़ता। मैं कुर्सी पर बैठ गया और रामू भी वहीं दीवार से सटकर जमीन पर बैठ गया। वक्त काटने और रामू को जानने का यह अवसर मुफ्त मे ही मिल गया। परिचय को घनिष्ठ करने के अभिप्राय से मैंने पूछा—"आजकल कैसा कमाते हो, रामू ?"

'आजकल' शब्द से मेरा खास मतलब था। उस समय हाल-हाल लड़ाई शुरु हुई थी। लोभी लुटेरों ने हर एक चीज का दाम बढ़ाना शुरू किया था। प्रत्येक चीज पर कंट्रोल भी उसी समय लागू हुआ था। यह नवम्बर १६३६ की बात है।

रामू ने कहा—"कमा लेता हूँ, बाबू साहब, सवा-डेढ़ का रोजगार रोज हो जाता है।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"यहाँ से सात कोस पर एक गाँव है, नुड़िया।"

"बाल-बच्चे ?"

"दो लड़के हैं, एक लड़की है।"

"घर वाली ?"

"सो भी है। आजकल बीमार है, बाबू जी!"

उस ने एक लम्बी साँस ली।

घोड़े दौड़ते हैं, हाँफते हैं, लेकिन घरवाली के विरह से कातर हो कर ऐसी व्यथाभरी लम्बी साँस नहीं लिया करते। अपनी घरवाली की बीमारी की उन्हें सुध नहीं होती और वे ऐसे कातर नहीं होते।

मैंने रामू को सोचने दिया। उसकी घरवाली की स्मृति में कोई बाधा नही डाली। मैं खुद सोचने लगा कि रामू का घोड़ा होना ही ज्यादा अच्छा था। तब वह इन प्रपंचों में नहीं पड़ता। सिर्फ खाने और दौड़ने के पीछे मस्त रहता। आदमी होकर यह अपने बाल-बच्चों के बारे मे चिन्ता करता है, स्त्री बीमार पड़ती है तो सोचता है। इस रामू से तो घोड़े ही अच्छे। रामू के तन पर अगर मुसाफिरों का बोझ रहता है। तो मन पर स्त्री, बालक और घर-दरवाजे का भार रहता है। यह बोझ भी तो कम नहीं। यह तुलना कठिन है कि रामू और किसी घोड़े में कितना वैषम्य है। रामू ने व्यापारिक क्षेत्र मे घोड़े को परास्त कर दिया है, लेकिन खुद घोड़ा नही हो पाया।

\+ + +

फिर रामू को नही देखा। उसकी मुझे कोई याद भी नहीं थी, लेकिन जब बहुत दिनों के बाद उसे देखा तो याद आया कि बहुत दिनों से मैंने रामू को नही देखा है।

रिक्शास्टैंड पर पहुँचते ही रामू ने मुझे सलाम किया। आदमी यह सलाम नाम की चीज़ पसन्द करता है। रामू की जगह अगर कोई घोड़ा होता, बैल होता या बारहसिंघा ही होता, तो कदापि सलाम नही करता। कुत्तों मे कुछ-कुछ ऐसी आदत है। वे सलाम नहीं करते, दुम हिलाते है। रामू सलाम करता है।

लेकिन रामू को हो क्या गया है। शरीर मे हड्डियाँ छोड़

कर स्वास्थ्य निकल गया है। आँखें गड्ढे में धँस गई हैं। चेहरा कितना करुण मालूम होता है। अगर कोई बीमार बैल को गाड़ी मे जोते तो हम उसे बुरा-भला कहेंगे। उसे हृदयहीन पशु साबित करने मे जरा भी सकोच नही करेंगे। लेकिन रामू बीमार बैल नही जोतता। वह बीमार रहकर खुद अपने को गाड़ी मे जोत लेता है। इसलिए हम नैतिक या कानूनी आपत्ति नही करते।

मैं रिक्शा पर बैठ गया।

"कहाँ चलूँ, बाबूजी ?"

"घर !"

और रामू घर की ओर दौड़ पड़ा। लेकिन उससे दौड़ा नही जाता। धीरे-धीरे दौड़ता है और प्यासे कुत्ते की तरह हाँफता है। रामू बहुत बीमार रहा होगा। उसके बाद उसकी आवश्यकताओं ने उसे रिक्शा मे जोत दिया। कोई घोड़ा या बैल ऐसी अवस्था मे स्वेच्छापूर्वक गाड़ी से जुतना मंजूर नहीं करता। मगर रामू घोड़े की अपेक्षा ज्यादा समझदार है। कैसा हाँफ रहा है। छाती की हड्डियाँ स्प्रिंग की तरह हिल रही है।

जहाँ कोई बाधा न हो, वहाँ हम मध्यवर्गीय की सहानुभूति बड़े जोर से उमड़ पड़ती है। मुझे भी जल्दी पहुँचने की कोई जल्दी नही थी। मैंने रोक कर कहा—"तेज चलने की जरूरत नही है, रामू।"

रामू धीरे-धीरे चलने लगा। तब भी उसे रिक्शा को

खीचने मे जोर लगाना पड़ता था, तब भी वह हाँफ रहा था।

मैंने पूछा—"बीमार थे क्या ?"

"हाँ सरकार !" उसने हाँफते-हाँफते जवाब दिया—"बहुत बीमार था। बचने की उम्मीद नहीं थी। छः महीने की बीमारी भोगकर अभी-अभी तो उठा हूँ।"

और अभी ही रिक्शा में जुत गया। जरा अपने को स्वस्थ तो हो लेने देता। यह तो ऐसा मरियल हो गया है कि कोई भी इसके रिक्शा पर बैठना मंजूर नहीं करेगा। रिक्शा पर चढ़ते समय आदमी रिक्शावाले के स्वास्थ्य को भी देखता है। लोग इसकी सूरत देखते ही मुँह सिकोड़ लेते होंगे।

पूछा—"आज कल कैसा कमाते हो ?"

"क्या कमाऊँगा, सरकार ! लोग मेरे रिक्शा पर चढ़ते ही नहीं। कहते हैं आराम करो !'

मैंने पूछा—"आजकल कितने दिनों से रिक्शा खीच रहे हो ?"

"पंद्रह-बीस दिनों से !"

सो रामू कष्ट मे है। शरीर और मन कुछ भी ठीक नही और हमारा पौने दो मन का शरीर टाँगे जा रहा है। अगर मै तीन और चार मन का भी होता तब भी रामू उज्र नहीं कर सकता था। उसे ले जाना पड़ता ही।

घर पहुँच कर मैंने उसे पैसे दिये और कहा—"देखो कोई जरूरत आ जाय तो मुझे खबर देना। शायद तुम्हारी कुछ

सहायता कर सकूँगा !"

राम् ने कृतज्ञता से हँस दिया।

और उसी रात को उसने खबर भी भेज दी।

ग्यारह बजे होंगे। दिन भर का थका माँदा, एक उपन्यास पढ़ कर तबीयत बहला रहा था। एक बुड्ढी विलासिनी किस प्रकार उठते हुए नौजवानों को फँसाती थी। लेखक बार-बार हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहा था। ऐसा स्वाभाविक है, ऐसा मनोविज्ञान से सम्मत है। बुढ़िया का दोष नहीं...

तभी माली ने आकर समाचार दिया—"रिक्शावाला रामू मेरे यहाँ पड़ा है। उसे खून के कै हो रहे हैं। तीन कै हो चुके।"

सुनकर मैं सर्द हो उठा।

हमारे एक मित्र डाक्टर हैं। उन्हे बुलाया। रामू को भली भाँति परीक्षा करने के बाद बोले—"सेकेंड स्टेज मे है!"

पूछा—"अब क्या उपाय हो सकता है?"

"सेनिटोरियम! कम्प्लीट रेस्ट! और कोई उपाय नही है।"

मगर घोड़ा का काम करने वाला यह रामू किसी सेनिटोरियम में कैसे प्रवेश पा सकता है। इस ने घोड़े को परास्त किया था और उसकी कमाई खाता था। इसने पूँजीपतियों को परास्त नहीं किया था कि उन लोगों के समान ही सेनिटोरियम मे प्रवेश पा सकता, वहाँ का खर्च उठा सकता।

डाक्टर ने उसे सलाह दी—"तुम घर चले आओ !"

दूसरे दिन सवेरे उठ कर उसने अपने घर की राह ली। यहाँ से सात कोस पर उसका घर था। जो सबको गाड़ी पर बिठाता था, आज उसके लिये कोई गाड़ी नही थी।

शीराजी

[श्री नरेन्द्र शर्मा]

शीराजी ने बलिष्ठ शरीर को झोला देकर अपने को सीधा किया और फिर मुड़ कर उस ओर देखा। बड़े ताज्जुब से उस ने जवाब दिया—"ओ हो, तुम हो मसीता काका।"

मसीता काका का पोला मुँह आधा खुला और उनके ओठों पर सकोच की एक हल्की-सी मुस्कराहट खेल गई। किस ने सोचा था कि वह और शीराजी, यों बन्दरगाह के मुसाफिर, खाने मे बरसों बाद मिलेंगे। लम्बा-तगड़ा शीराजी वही जो उनके गाँव मे छुटपन से जवानी तक पला था, वही आवारा शीराजी, शराबी शीराजी, राजा साहब की ईरानी रखैल का लड़का शीराजी।

ईरान की भूमि मे पैदा हुआ गोरा-चिट्टा शीराजी मसीता काका के गाँव मे बिखरी धूल-मिट्टी, कीचकादों और धूप-ताप से बिलकुल भी तो मैला नही हुआ। हम्माल की इस फटी-पुरानी नीली पोशाक ने तो उसके गोरे रंग को और भी निखार

दिया है। गालों पर आज भी वही लाली है।

शीराजी ने फिर अपने अगल-बगल देखा। पुकारा—"भुनक्कू शेख, तुम भी हो...और...और.. शेर खॉ, तुम कहाँ छिपे खड़े थे?"

बाड़े से जैसे भेड़-बकरियॉ निकलती है, हज करके लौटे हुए यात्री भी जहाज़ के मुसाफिर खाने से निकल पड़े। कही किसी की खुली गठरी से—उन के अव्यवस्थित जीवन की तरह—चीज़-बस्त बिखरी पड़ी थी जैसे पुराने-धुराने पिंजड़ों से अधमरे पंछी ढुलक पड़े हों। कहीं किसी के पिचके हुए—गरीब के गालों की तरह—टीन के बक्स से भानमती के पिटारे की झॉकी मिल रही थी। वही अपने बिखरे सामान की तरह खोये-खोये से मुसाफिर अस्त-व्यस्त चीज़-बस्त की पातों मे फॅसे पड़े थे।

हम्मालों की पॉति से वह भी एक हम्माल हाजियों के एक छोटे झुॅड की ओर लपका था। नही, किसी विशेष उत्सुकता से नहीं, यों ही जैसे रोज़ की आदत से। ऑधी के बाद जैसे आम तरकारी-बाजार मे आते है या जैसे बरसात की उमस के साथ मच्छर या जैसे चैत के महीने मे मक्खियॉ, हर जहाज़ के साथ वैसे ही ये डेक के मुसाफिर आते थे। शीराजी को उन्हे यों आते-जाते देखनेकी आदत-सी पड़ गई थी।

शीराजी किसी मुसाफिर की पेटी उठाने के खयाल से झुका ही था कि उसकी दाहिनी बगल से किसी ने उसे नाम

लेकर पुकारा। ना, यह उसके किसी साथी का स्वर नही था—वह चुस्त-दुरुस्त करारा स्वर नही, जो वह अपने साथी हम्मालों से सुनने का आदी था। आवाज़ थी पोपले मुँह वाले मसीता काका की।

पास-पड़ोस के गाँवों के और दूसरे हाजी लोग उसी दिन रेलगाड़ी पर सवार हो जाना चाहते थे, लेकिन मसीता काका, झुनक्कू शेख और शेर खाँ को शीराजी ने दो-एक दिन के लिए रोक लिया। वे तीनों भी अपने साथी हाजियों के साथ जाने के लिए बहुत लालायित नही थे। कारण, इन तीनों को छोड़ कर बाकी सब ही खाते-पीते आसूदा आदमी थे। परदेस मे जब वह दुर्भात करते न चूके तो अब देश मे भी वह इन्ही तीनोंसे गाड़ी मे सामान रखवायेंगे, स्टेशनोंपर खाना-पानी मॅगवायेंगे और न जाने कैसी-कैसी गुलामी करवायेंगे।

और शीराजी . वह कैसा ही आवारा क्यों न हो, है तो एक ग़रीब मेहनतकश, दया-धर्म तो उसके मन में है। शीराजी से उनकी उन्सियत की एक और भी वजह थी। शीराजी का वतन ईरान भी अब उनकी आँखों देखा है। वह भी एक अजीब मुल्क है। लोग वहाँ सचमुच मलूक होते है, खास कर औरतें। वह औरतें होती भी कैसी हँसमुख और मनचली है। तीनों सोच रहे थे, सरे-आम उनका हाथ पकड़कर वह मसखरी। ईरानी औरते न जाने क्या-क्या कहती थी—

"आगा, खुशामदीद!"

"अज कुजामी आयद ?"

"आगा, शुमा हिन्दी अस्त ?"

"आगा, शुमा खानम मी खाई ?"

"आगा, शुमा खानम नमी खाई ?"

और इन तीनों सीधे-सादे देहातियों के बुद्धूपन पर वह खिलखिला कर हँसती थी। तब इनके मन में भी खुशी के फव्वारे उछलने लगे थे। पोपले मुँह वाले मसीता काका के दिल में भी आइस-क्रीम गलने लगती थी।

इस शीराजी की माँ भी तो उन्हीं जैसी रही होगी उसके बारे में यह कहावत कि गले से उतरती पान की पीक दीख पड़ती थी, ज़रूर-ज़रूर सच रही होगी। मसीता काका की आँखों ने शीराजी की माँ को कभी देखा नहीं था, लेकिन आज वह मन-ही-मन खुश थे, आँखों में उसकी मनोहर मूर्त्ति ढाल कर।

अवध के मशहूर शहर लखनऊ में चिड़ियों और दूसरे प्राणियों का सुन्दर रनवास, बनारसी बाग जैसा है, वैसा ही था अवध के मशहूर ताल्लुकदार राजा का रनिवास। कहते हैं, वहाँ हिन्दुस्तान के सब सूबों की ही सुन्दरियाँ नहीं, वरन् विदेश के देशों की भी कई सुन्दर स्त्रियाँ उन्होंने रक्खी थीं। हिन्दुस्तानी स्त्रियों में विशेष प्रिय थीं उन्हें—सुदूर सरहदी सूबे की छरहरी लाँबी नाजनी जिस की भाषा जीवन-पर्यंत न राजा साहब ही समझ पाये, न जो राजा साहब की ही भाषा को

सीख सकी पर प्रेम की भाषा दोनों समझते थे, समझते रहे और कभी न भूले। वह कर्नाटकी जिस की अटपटी बोली में वही चटपटापन था जो दक्षिण की भूमि में उगनेवाले मिरच मसालों में होता है। कुमायूँ गौराङ्गना नायक कन्या जो अपने लिए हमेशा पुलिङ्ग वाचक शब्दों से कभी मोह न छोड़ सकी थी। बुन्देलखण्ड की वह कुमारी जिस की माँस-पेशियाँ उस देश की चट्टानों की तरह दृढ़ और वहाँ की रातों की तरह ही कोमल थीं। बुन्देलखण्ड की तारों भरी रात के समान उस का साँवला-सलोनापन आँखों को चमत्कृत कर देता था। मालवा की कोमलाङ्गी मालती जिस के श्वासों में मादक सौरभ था। अहिफेन के लाल फूलों को चूम कर बहने वाली वासन्ती समीर का और जिस की भावनाओं को भरा पूरा बनाया था वहाँ के पावस ने और जिस की मन्थर गति, मधुरवाणी और इङ्गित में साकार हो उठा था सम्पूर्ण मालवा प्रान्त, इतिहास जिस की मादक सुन्दरता का साक्षी है। स्थूलकाय अधेड़ पञ्जाबिन जिस से उन का परिचय जीवन के उषाकाल में ही हो चुका था, वह आज भी रनिवास गुञ्जाती रहती। रसगुल्ले से मीठे और गोल गोल बोल बोलने वाली बनारसी बङ्गालिन भी उन के प्रारम्भिक पराक्रमों द्वारा ही जीती हुई थी—मौनिका नाम की इस गणिका के प्रति राजा साहब आज भी श्रद्धालु थे। किन्तु सर्वोपरि स्थान इन अवकाश-प्राप्त नायिकाओं में बड़े बाप की बेटी, कुल-लक्ष्मी और गृह-स्वामिनी रानी साहिबा व्रजकुँवर को

ही मिलता रहा। अधेड़ पञ्जाविन तथा बनारस की मौनिका बाई और स्वयं रानी साहिबा भी उस श्रेणी में थी, जिस श्रेणी मे उन स्त्रियों की गिनती होती जिन के साथ राजा साहब प्रीति की रीति भर निबाहते। इस श्रेणी को वह श्रेय के अन्तर्गत रखते थे। प्रेय के अन्तर्गत आती थी देश-विदेश की वह सुन्दरियाँ, जिन मे से कुछ का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं।

देशी सुन्दरियों में एङ्गलो-इण्डियन वाराङ्गना मिसेस कटलेट का उल्लेख करते हुए हम हिचके थे। कारण यह कि यद्यपि मिसेस कटलेट का जन्म इसी भारत-भूमि मे हुआ था, किन्तु उन्हें भारतीय कहलाने से सख्त एतराज था। यह भी सच है कि राजकुमार की अँग्रेज़ गवर्नेस मिस स्मिथ मिसेस कटलेट को हिकारत की नज़र से देखती और अपनी बिरादरी मे न लेतीं, लेकिन फिर भी मिसेस कटलेट भारत-भूमि को अपनी जन्म-भूमि कह कर कभी गौरवान्वित न करती। हमारे लिए मिसेस कटलेट उस इन्द्र-धनुषी पुल के समान चिरस्मरणीय रहेगी जो भारत-भूमि को स्वर्गादपि विलायत-भूमि से जोड़ता था। इस पार की भारतीय सुन्दरियों का उल्लेख हम कर चुके हैं। उस पार के स्वर्ग की एक अप्सरा मिस स्मिथ का परिचय भी आप प्राप्त कर चुके है। इन के अतिरिक्त रनिवासों मे प्रमुख, शस्य-श्यामला गोरी पिंडलियों वाली मदालसा यहूदी कन्या थी जो इटैलियन गायिका सिनौरिटा बौटिचैज़ी से तो सदैव प्यार-मोहब्बत का बर्ताव करती और रस से अधिक

पैसे की लोभिन फ्रांसीसी मैदेम के बाल नोचने पर हर घड़ी उतारू रहती। मोटी-ताज़ी जर्मन वीराङ्गना का ज़िक्र हम नही करेंगे, क्योंकि वह एक वर्ष भी रनिवास में जीवित न रह सकी। उस के कमरे मे तुर्की महिला ने बसेरा किया था। तुर्की महिला की बगल में पेवड़ी से पीली और मोम से चिकनी त्वचा वाली चीनी तरुणी रहती और उस के पास रनिवास का वह हिस्सा था जहाँ सोने के तार सी लचकीली देहवाली वह ईरानी युवती थी, जिसे राजा साहब अपनी पिछली विदेश-यात्रा के स्मृति के चिह्न के रूप में ले आये थे। उसे देख कर कौन कह सकता था कि वह दो बच्चों की माँ है। निरी सोलह बरस की सी दुबली-पतली इस हँसमुख काञ्चना ने सभी की आँखे चौंधिया दी। काली-काली बड़ी पुतलियाँ दिन की उज्ज्वल ज्योति का पान कर सदा यौवन की मस्ती मे हँसती रहती। पुतलियों से भी काले केश, घने लहराते काले केश, आम की एक डाल से दूसरी डाल पर फुदकते हुए मदमत्त मोर के बर्ह-भार से लगते। राजा साहब के हाथ और उन की आँखे, दिन-दिन भर, रात-रात भर, उन केशों को दुलराने में ही लगे रहते। राजा साहिब को यह ईरानी सुन्दरी सब से अधिक प्रिय थी, किन्तु वह रनिवास मे सर्व-प्रिय नही थी। रनिवास की सुन्दरियाँ उस के अत्यधिक दुबलेपन की ओर कटाक्ष करते हुए उसे खपञ्च कहा करती। राजा साहब उस की तरफदारी लेते और जवाब देते कि हाँ, वह खपञ्च सी लचकीली है ज़रूर,

लेकिन वह खपञ्च है दूज के चाँद की।

राजा साहब के बारे में अवध के लोगों ने बहुत कुछ सुना था। मसीता काका ने और झुनकू शेख ने तो बहुत कुछ देखा भी था। शीराजी हम्माल अपने दोनों बलिष्ट कंधों पर सामान लादे आगे-आगे चल रहा था। शेर खाँ उसी का हम-उम्र, शीराजी से सट कर वक्ते मिलाता, साथ-साथ जा रहा था और दोनों बूढ़े पीछे-पीछे लुढ़कते चल रहे थे। अपने जीवन में उन्होंने जो कुछ देखा था, वह ख्वाब बनकर आँखों मे धुन्ध सा छा रहा था और उन्होंने जो सुना था, वह सब एक अन-जाना अफसाना बन कर हाँफते हुए उन दोनों बूढों के अध-खुले ओंठों से आह बन कर निकल रहा था।

बिजली की रफ्तार से दौड़ती हुई मोटरों, चिंघाड़-चिंघाड़कर भागने और भागते-भागते रुक जाने वाली ट्रामों, ऊपर बिजली के तारों की छूमछननननन, बाजार की चहल-पहल, मर्दों के साथ कन्धा भिड़ाकर चलने वाली अँग्रेज और हिन्दु-स्तानी मे, सूट-बूटधारी काले-गोरे साहब—इन सब ने मिलकर एक ऐसा जोर का रेला मारा कि मसीता काका और मुनकू शेख के पिछले ख्वाब और अफसाने न जाने कहाँ गुम हो गये।

दोनों ने देखा, हृष्ट-पुष्ट उस अलमस्त शीराजी को जो बैल के-से अपने मजबूत कन्धों पर सामान लादे साबुत-कदमी से बढ़ा चला जा रहा था। शीराजी के मुकाबले, साथ चलने वाले शेरखाँ के पाँव, कैसे खोखले-खोखले पड़ रहे थे। बड़ी

सड़क से हट कर अब वह एक गरीब गली में घुस पड़े थे, जहाँ न मोटरों की आवाज़ थी, न ट्रामों की। पत्थर की ऊबड़-खाबड़ सड़क पर अब शीराजी के भारी बूटों से ठप-ठप-की आवाज़ निकलने लगी थी।

शीराजी के पाँव ज़रा भी तो नहीं हिचकिचाते। क्या यह वही लड़का है जो शराब में धुत नालियों मे पड़ा रहता था। पोपले मसीता काका को याद आई बीस बरस पहले की वह बात, जब कुँवर साहब की नई हवेली की नीव खुद रही थी और शीराजी नीव की उन खाइयों मे दिन-दिन भर नशे मे डूबा पड़ा रहता था। पन्द्रह साल के इस बिगड़े हुए लड़के के प्रति किसी के भी मन में सहानुभूति नहीं थी। लड़के उसे ढेलों से मारते, नींव से खुदी मिट्टी उस पर डालते। शराब के नशे मे चूर शीराजी को लड़के नीव मे जिन्दा ही दफना देते अगर उन्हे कुँवर साहब की इस नाराजी का डर न होता कि खुदी हुई नीव को फिर से अटा देने पर वह शरारती लड़कों की खाल ही खिँचवा लेंगे।

फिर एक दिन कुँवर साहब ने शीराजी की इस कदर पिटाई कराई कि प्रहारों की धू-धू आवाज़ सुनकर पास के हाते में बँधी हुई भैंस भी रस्सा तुड़ा कर और खूँटा उखाड़ कर भाग निकली, कुत्ते भौंकने लगे। शीराजी सब कुछ सह गया। इतना ज़रूर हुआ कि उसका नशा काफूर हो गया था। उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से कुँवर साहब को एक बार घूर कर

देखा, उनके मोटे-मोटे लाल कान की ओर सहसा उसका एक हाथ बढ़ा और दूसरे हाथ का थप्पड़ पड़ा कुँवर साहब की थूथड़ी पर, इसके बाद बिजली की तरह शीराजी नौ-दो-ग्यारह हो गया।

हम सचमुच नही जानते, इन पन्द्रह-बीस वर्षों मे शीराजी ने क्या किया और उस पर कैसी बीती। इतना जरूर जानते है कि वह लुकछिपकर, बीच-बीच मे अवध के उस ताल्लुके की झाँकी लेता रहा, शायद इसी वजह से मसीता काका जैसे भुलक्कड़ देहाती ने भी शीराजी को एक आन मे पहचान लिया। राजा साहब तब तक मर चुके थे। रनिवास—चिड़िया-घर का वह बड़ा पींजड़ा—खुलवा दिया गया था और उसकी सब चिड़ियाँ तितर-बितर हो चुकी थी।

वह पाँचों शहर की गन्दी अँतड़ियों जैसी गलियो से गुजरते जाते थे और शीराजी हम्माम के ठिकाने तक पहुँचते जा रहे थे। सामने ताड़ी और देशी शराब की एक छोटी-सी दूकान थी। उस की ओर शीराजी ने बस मुड़कर एक बार देख भर लिया लिया और बनिये की दूकान पर सामान उतार कर रख दिया। दूकान के ऊपर जो छोटा-सा एक अट्टा है, वही शीराजी के महमानों ने डेरा डाला। यह शीराजी का निवास-स्थान नही, वह तो और दूसरे हम्मालों के साथ कही भी पड़ रहता है—सड़क के फुटपाथ पर, जहाज के मुसाफिर-खाने मे या फिर जहाँ-कही भी उसके सीग समाये।

शीराजी ने हफ्ता-भर मेहमानों की खूब खातिर-तवाजह की, खिलाया-पिलाया और खूब घुमाया। तीनों देहातियों का शहर मे मन भी खूब रम गया। रात को वह मजदूरों की गाती-बजाती टोलियों मे जा मिलते और दिन मे सैर को निकल जाते या मजदूरों के लड़ाई-झगड़ों और फोश हँसी-ठट्ठों को देख-सुनकर मन बहला लेते।

शायद अभी वह यहाँ से चल देने का नाम भी न लेते, अगर ममीता काका अपने अधमुखे पोपले मुँह से सहसा एक दिन यह न कह उठते—"झुनक्कू दादा, ठंडक.. !"

झुनक्कू शेख के घबराकर पूछने पर मसीता काका ने अपनी खोजबीन का नतीजा कह सुनाया कि हाजियों को प्राणों से प्यारे, आवेजमजम से पाक किये हूए थानों मे से दो थान गुम हो गये है। तब तो तीनों को थानों की चोरी का और हफ्ते भर तक शीराजी की उस भरी-पूरी खातिरदारी का रहस्य समझते देर न लगी। थोड़ी ही देर मे झुकक्कू शेख और शेर खाँ को यह भी पता चल गया कि तीन मे से जो एक थान बच गया है, उस पोपले मुँह के मसीता काका ने हथिया रक्खा है।

बचा हुआ थान किसकी मिल्कियत है, इसका फैसला करने के लिए कशमकश शुरू हुई। तीन अभिन्न साथियों मे हाथापाई की नौबत आ गई। तीनों ही चाहते थे कि मरने के बाद कफन बने 'आवेजमजम' मे पाक किया हुआ वह एक बचाखुचा थान, वह थान जिसमे हाजी का सम्पूर्ण संचित

पुण्य बसा होता है। जान भले ही चली जाये, पर आबेजमजम मे डूबा हुआ वह थान हाथ से न निकल जाये।

सहसा इन तीनों की चीख-पुकार बाहर के गुल-गपाड़े मे डूब गई। जहाँ बोतलें तड़क रही हों, शीशे की अलमारियाँ टूट रही हों, जहाँ शराबियों का शोरो-गुल हो; दसियों के सिर फट रहे हों—जहाँ दो शराबियों के आपसी झगड़े ने हिन्दू-मुसलिम दंगे का भयंकर रूप धारण कर लिया हो, वहाँ इन तीन देहातियों की तू-तू मैं-मैं कौन सुनता। नक्कारखाने में तूती की आवाज़ बंद हो गई। तीनों ने अट्टे के दरवाज़े से मुँह निकालकर देखा, सड़क पर खून की होली खेली जा रही है और भड़की हुई आग उनके नज़दीक, बहुत नज़दीक, आ रही है। नीचे किसी दंगाई ने दूकान मे बैठे हुए मोटे-झोटे लालाजी का टखना पकड़कर बाहर खींच लिया। पीठ के बल धरती पर पड़े लालाजी के पेट पर वह मचक-मचक कर कूदने लगा जैसे वह कोशिश कर रहा हो कि वर्षों से लाला जी उससे जो नफ़ा ले रहे हैं, वह उसे यहीं का यहीं उगलवा लेगा।

सामने की शराब की दूकान के सब अंजर-पंजर ढीले हो चुके थे। शराब की बोतलों मे दमकने वाला पियक्कड़ों का रंगीन स्वप्न टूट कर कीचड़ बन चुका था। ग़रीब पारसी दुकानदार माथे पर पड़े भारी गूमड़े को सहला रहा था और पास खड़ा नौजवान साकी लतीफ, अपने जबड़ों को पकड़े, नीचे बैठा था। सर की चोट का उसे ख़याल भी न था जिससे

खून की एक पतली धार निकल कर सूख चुकी थी।

बनिये की दूकान लुट गई और आग लगा दी गई सब बचे-खुचे माल में। शीराजी हड़बड़ाता हुआ आ निकला। 'मसीता काका, झुनक्कू शेख, उतरो, उतरो भाई। वरना तीतर से भुन जाओगे,—वह चिल्लाकर लगा जीने के किवाड़ पीटने। न जाने कब तक यह तमाशा होता रहता, अगर नीचे का धुँआ ऊपर तीनों देहातियों को अपना विषैला सन्देश न सुनाने लगता। मय अपने-साजों-सामान के वे सब निकले और उजड़ी हुई गलियों में मौत के व्यापारियों की तरह, शीराजी के पीछे-पीछे फेरी लगाने लगे।

मुसलमानी बस्ती के नुक्कड़ पर पहुँचते ही मराठा हिन्दुओं के एक दल से उनकी मुड़भेड़ हो गई। भेड़-से बेवक़ूफ़ इन तीन दहकानियों की बचत का जब कोई और दूसरा रास्ता शीराजी को न सूझा तो उन्हें गली मे ठेलकर वह खुद दंगा-इयों के दल से आ भिड़ा, ताकि वह इन्हे रोके रहे और उसके तीनों मेहमान मुसलमानी बस्ती मे पहुँच जाये।

घर-फूँक तमाशा देखने वाली पुलीस को आखिर जब तवज्जह इधर देनी ही पड़ी तो फिर दंगे के शांत होते, आग के बुझते, देर न लगी।

मुसलमानी बस्ती के नुक्कड़ पर नाली मे पड़ी शीराजी की भी लाश मिली। मसीता काका, झुनखू शेख और शेर खाँ ने शीराजी को पहचान लिया। आवेजमजम मे पाक, उस बच्चे

हुए एक थान ने गुनहगार आवारा शीराजी के सब गुनाहों को ढँक लिया। मसीता काका ने अपने हिस्से का संचित पुण्य शीराजी को दिया, पोपले मुँह से उस आवारे के गुनाहों की माफी के लिए इबादत की और अपनी चुन्धी-चुन्धी धुँधली आँखों से मरे हुए को अंजलि दी।

हिरन की आँखें

[पहाड़ी]

रियासत की छोटी रानी साहिबा शादी के बाद महल में पहुँच भी न पायी थी कि रास्ते में ही उन को हिस्टीरिया का दौरा आ गया। आखिर वह रङ्गमहल में पहुँचाई गई, बाँदियों ने उन को फूलों की सेज पर सुला दिया। राजा साहब ने हनी-मून का प्रोग्राम हटा दिया और हाउस की लेडी-सार्जन फोन से बुलवाई गयी। उस ने आकर देखा, इञ्जेक्शन दिया और राजा साहब से बातें होने लगीं।'

"रास्ते में एकाएक क्या हो गया ?"

"कुछ भी नहीं," राजा साहब बोले—"हमारी कार" के जङ्गल से निकलते ही सामने खेतों में काले हिरनों का एक झुण्ड दीख पड़ा। रानी उन को देखने के लिये उतर पड़ीं। इस के बाद ही वह बेहोश हो गईं।"

"कैसे हिरन थे ?"

"सब नर थे। उन के सींगों को देख कर रानी बोली—"कितने सुन्दर है ये !" रानी का सारा चेहरा गुलाबी पड़ गया। वह न-जाने क्या गुनगुनाती, बड़ी देर तक हिरनों को देखती रह गई। तब मै बोला—देरी हो रही है । बड़ी कातरता से रानी ने मेरी ओर देखा और कार पर ठीक तरह बैठ भी नहीं पाई थी कि छटपटाने लगी, परदे फाड़ने की कोशिश की, दाँत कटकटाये और बेहोश हो गई।"

लेडी डाक्टर ने अपने मे ही सिर हिलाया। मानो वह कोई गम्भीर बात सोच रही हो । खुद उस ने भी देखा था कि उस के मरीज़ के चेहरे पर एक पीली पपड़ी-सी पड़ गई है। फिर भी समझ मे नहीं आता कि एकाएक यह रोग हो क्यों गया। इस के इलाज के जरियों से क्या यह बरी रखी गई, अथवा दाब-दूब कर रखने की कोशिशों के पीछे इस के 'सेक्स' को उपेक्षित ही गिना गया। यह भी ग़ैर मुमकिन लगा। उस का अन्दाज था कि रानी का भीतरी कुमारीत्व चूक और निपट गया है। कोई ऐसा लक्षण उस मे नही था, सेक्स की भूख जिस से ज़ाहिर हो। रानी के शरीर का निष्क्रिय सन्तोष देख वह मन ही मन हँस पड़ी। फिर राजा साहब से बोली—"महारानी भीतर बहुत डर गई है। अवस्था बहुत नाज़ुक है। कम से कम तीन-चार महीने भिन्न भिन्न प्रयोग करने के बाद रोग की ठीक व्यवस्था हो सकेगी।"

राजा साहब ने रानी को देखा। वह चुपचाप खड़े रह

गये। लेडी डाक्टर मुस्कराते बोली—"कोई चिन्ता नही है।"

राजा साहब स्तम्भित रह गये। इतना ही नहीं, उस हँसी के भीतरी मजाक को खूबी पहचान बाहर चले गये। लेडी डॉक्टर ने कमरे के सारे दरवाजे बन्द कर दिये, परदे खोले और छोटी महारानी के पलङ्ग के पास बैठ गई। कुछ देर तक उसे देखा। उस के शरीर के अङ्ग-अङ्ग की सावधानी से परीक्षा की। हृदय की गति भाँपी। एकाएक महारानी के शरीर पर कँपकँपी फैली और वह होश में आने लगी। रानी ने आँखे खोलीं। हड़बड़ी मे उठी, अवाक् अपने चारों ओर देख बोली—"मै कहाँ हूँ?"

"महल मे।"

"और वे काले हिरन?"

"काले हिरन!"

"वह आगे वाला क्यों अपनी आँखों से मुझे घूर रहा था?"

"आप क्या कह रही है?"

"तुम कौन हो?"

"महल की लेडी डाक्टर।"

"राजा साहब कहाँ है?"

"अभी-अभी चले गये।"

"क्या मै बीमार हूँ?"

"नही, सफर की वजह से कुछ कमजोरी आ गयी थी।

अब आप ठीक हो गई है।"

"यह झूठ है। मै बहुत बीमार हूँ। यह देखो—यहाँ सूजन आ गई है। मेरा दिल जरूरत से ज्यादह धड़कता है। अभी भी, लगता है जैसे कोई उसे अपनी भारी हथेली से ढके हो। उस पर दबाव महसूस होता है। और यह देखो, इस मे जीवन नही रह गया है। अभी मेरी उम्र सिर्फ बीस साल की है। कई बार मै ने अपनी सामर्थ्य को परख लेना चाहा, हमेशा असफल रही। चारों ओर बड़ी-बड़ी रुकावट रही है। बावली बन कर, बाथ रूम में, घण्टों अपने शरीर के भिन्न अङ्गों को देखा करती और जानना चाहती, उन का अस्तित्व किस लिए है। मेरा सारा शरीर फू उठता, भारी-भारी साँसे आने लगती, पानी का फुआरा खोल उस के नीचे लेट जाती। पानी की वे गुनगुनी बूँदे मेरे सारे शरीर को ढक लेती। अपने उस असन्तोष को अपने तक ही मैने रखा। किसी से कुछ नही कहा। और आज··· ···"

"आज··· क्या हुआ, महारानी, मै आप की नौकर हूँ—आप का हर तरह से खयाल मुझे रखना है। फिर उम्र के लिहाज से भी मै आप से बड़ी हूँ।"

"जब हम जङ्गल मे खड़े थे, उन काले हिरनों को देख कर मै सिहर उठी। सब से आगे वाले की आँखों मे न-जाने क्या बात थी कि मै उस की आँखों की ओर देखती रह गई। उस की आँखे खाली और भूखीं थी, जैसे मुझे अपने मे समा

लेना चाहती हो । तभी राजा साहब ने मुझे चूम लिया और मै .. . ."

"इस के बाद ही आप बेहोश हो गई थी ?"

"लेकिन वह आगे वाला हिरन मुझे क्यों घूर रहा था ?"

"कोई भ्रम होगा।"

"उस की आँखे जैसे सब कुछ सीख लेना चाहती थी। मै कॉप उठी। इतने मे ही राजा साहब .. ...."

"फिर तुम छटपटाई और कार मे बेहोश हो गयी।"

"छटपटाई थी, यह किसने कहा ?"

"राजा साहब ने।"

"ठीक बात है। उस के बाद मुझे कुछ ठीक-सा होश नही रहा। मेरी आँखों के आगे काला परदा-सा छा गया। मैने देखा, दो आँखे जैसे मेरा पीछा कर रही है। मै भयभीत हो उठी। चिल्लाना चाहती थी, किन्तु राजा साहब ने अपने होठों से मेरा मुँह बन्द कर दिया। वे दो आँखे मेरे शरीर के चारों ओर चक्कर लगा कर जैसे भीतर बैठ गयी है .!"

"क्या ?"

"इस वक्त भी वे वहीं है। क्या तुम उनको बाहर नहीं निकाल सकती। छी-छी, अभी तक अजीब कुलबुलाहट मै महसूस कर रही हूँ। और हिरन की गन्ध—तुम कुछ नही सूँघ रही हो डाक्टर ?"

"गन्ध भी महसूस हो रही है! सब एक खयाल है। इस तरह मन कभी-कभी डॉवाडोल हो जाया करता है। आप को काफी आराम चाहिए।"

"लेकिन डॉक्टर, क्या तुम उन दोनों आँखों को ऑपरेशन कर निकाल नही सकती हो? बड़ी बेचैनी फैल रही है। शरीर की भीतरी कम्पन अजब अकुलाहट पैदा करती है।"

"फिलहाल आराम करें। मै इस पर विचार करूँगी—ये बाते व्यर्थ किसी से नही कहनी चाहिएँ—राजा साहब से भी नही।"

महारानी चुप रही। लेडी डॉक्टर चली गई। वह पलङ्ग पर लेटी-की-लेटी ही रही। कई बार भौंचकी-सी उठ, कमरे के चारों ओर की सजावट को, देखती रह जाती। फिर उलझन मे हट, पलङ्ग के तकिये के बीच मुँह रख, पड़ रहती।

महारानी का लड़कपन कुछ वैसा महत्वपूर्ण नहीं था। बचपन मे उसकी दादी उसके छोटे-छोटे हाथ-पॉवों को अपने मुँह मे रख कर काटा करती थी। धीरे-धीरे खुद उसे भी अपने हाथ को काटने की आदत पड़ गई। एक बड़ा भाई था, राजकुमार। वह कही पढ़ता था। जब कभी आता, कुछ खास उत्साह उसकी बातों से नही मिलता। रूपा, ठीक-ठीक बात नहीं करता। उसकी बातों का जवाब तक नही देता। न उसकी शङ्काओं का समाधान ही कर पाता।

तब वह बारह की हो गई थी। पूछती—"कबूतरी के

अण्डे कैसे होते है ?"

राजकुमार अपनी इन्साइक्लोपीडिया की मोटी किताब के पन्ने पलट कर कहता—"यह उसमे नहीं लिखा है।"

वह फिर पूछती—"क्या पेड़ों की शादी होती है ?"

"नहीं।"

"तब वह पीपल के पेड़ पर बेले की लता क्यों लिपट गई है।"

वह जानती थी कि जरूर उनकी शादी हो गई है। यदि न होती, तो भला उसकी बांदी क्यों यह कहती। उसका भाई है कि कुछ नहीं जानता। उसे सारी बातें मालूम होनी चाहिएँ। कॉलेज में सब पढ़ायी जाती होंगी। बाँदी तो यह भी कहती थी कि गाय के जब बच्चा होता है, औरते ही वहाँ जा सकती हैं। यदि आदमी वहाँ पर होगा तो बच्चा नहीं होगा। गाय को शरम लगती है। आदमी की गाय को शरम क्यों लगती है, उसके भाई के पास इस का भी जवाब नहीं था। अपनी बुद्धि से भी वह ज्यादा नहीं सोच पाती थी। बाँदी को तो इतना ही कहना था। वह भी दिल-बहलाने के किस्से के रूप में।

जब उसकी दूसरी बाँदी के लड़का हुआ और दो महीने के बच्चे को लेकर वह महल मे आई तो वह भी अपनी माँ के पास खड़ी थी। वह बच्चा कहाँ से आ गया, उसकी कुछ भी समझ मे नहीं आया। इतना ही वह सोच सकी, गाय की बाछी की तरह वह पैदा हुआ होगा। वहाँ भी किसी आदमी को

जाने की इजाजत नहीं मिली होगी।

उस दिन साँझ को वह राजकुमार से बोली—"तुमने बेबी देखा ?"

"नहीं तो।"

"अच्छा तो बतलाओ, वह कैसे पैदा हो गया है ?"

राजकुमार चुप रह गया।

"मैं जानती हूँ"

"क्या !"

"पहले शादी होती है, फिर बच्चा !"

राजकुमार आश्चर्य में डूबा रहा।

"तुमने नहीं देखा, वह कुत्ते का जोड़ा। पहले उनकी शादी हुई, फिर कुछ महीने के बाद बच्चे हो गये।"

"छै हुए थे।"

"हाँ, कुत्तों की शादी हर छठे महीने होती है, आदमी की नहीं।"

अपनी बहिन की बातों को सोच राजकुमार चुप रह गया। अधिक भला वह क्या कहे। वह तो जैसे सारी बातों का अन्वेषण करना जान गई थी। कभी-कभी सोचती उसके भी बच्चा होगा। पहले शादी होगी। वह अपने पति के साथ रहेगी। किसी को वहाँ आने की इजाजत नहीं होगी। लेकिन कुत्ते की शादी में तो एक बड़ा तमाशा हुआ था। सब लोग वहाँ खड़े थे। बाँदियाँ थीं, नौकर थे। पर नहीं, वह रानी

बनेगी। उसको परदा करना होगा। वहाँ कोई नहीं आवेगा।

भीतर-ही-भीरत उसके दिल मे हजारों सवाल उठा करते। वह उनको खूब जान लेना चाहती। धीरे-धीरे वक्त कटता गया। वह अपने भीतरी खिलौनों की शादी करती। लेकिन उसे बड़ी निराशा होती कि वे साथ-साथ सोये रहते है, फिर भी उनके बच्चे नहीं होते। उनके बच्चे क्यों नहीं होते। यदि होते है, तो कहाँ होते है। महल मे उनको क्या शर्म है। वह तो परदे के भीतर उनको रखती है। कोई भी उन्हे देख नहीं सकता। कोई भी उन के पास नहीं जाता। उसके भाई तक को उनके पास जाने की छूट नही है। फिर भी बच्चे नहीं होते।

वह चाहती कि वह जो सिपाही गुड्डा है, उसकी अङ्गरेजी-मेम से बच्चा हो। उसके छोटे बेबी के लिये वह झुलना मँगा-वेगी। उसके लिये छोटी-सी गाड़ी भी आवेगी। वह अपने भाई को यह सब दिखलाना चाहती थीं। यह भेद किसी से भी उसने नहीं कहा।

दिन कटते जा रहे थे। जीवन के पंदरहवे साल में वह चल रही थी। तभी एक दिन दूर के रिश्ते का एक चचेरा भाई, आठ-साल बाद, बड़े-बड़े इम्तहान इङ्गलेण्ड, अमरीका युरोप-आदि देशों के पास कर, लौट आया। उसकी बाते बड़ी दिलचस्प होती। वह न जाने कैसे समझ गयी कि वह सब और सारे सवालों के उत्तर देने का सामर्थ रखता है।

एक दिन साँझ को वह बाग मे फुहारे के पास खड़ी थी।

देख रही थी कि तितली का जोड़ा उड़ रहा है। तभी उसने आकर पूछा—"क्या सोच रही हो, कौशल्या ?"

"कुछ भी नहीं।"

"झूठ बात है। तू तितली की ओर देख रही थी न ?"

"तुमने कैसे जान लिया ?"

उसकी भीतरी बात भी वह मालूम कर लेता है, यह देखकर वह आश्चर्य में रह गई।

"तितलियों में एक विचित्र बात होती है। नर पर एक ऐसी महक होती है कि मादा उससे उन्मत्त हो उसके पास खिंची चली जाती है। अभी-अभी वह जो बड़ा नर है, गुलाब के फूल पर बैठा था। तभी मादा चक्कर लगाती-लगाती उस फूल के नीचे गिर पड़ी। नर ने उसे देखा और उसकी हिफाज़त की। वह होश में आयी और फिर दोनों साथ-साथ उड़ कर चले गये . ।"

उसने मन-ही-मन सोचा, यह बिलकुल नई बात है। अब उनके बच्चे होंगे और फिर . लेकिन उलझन बढ़ती जा रही थी—"अब ये कहाँ जायेंगे ?"

"कुछ दिन इसी बाग़ में रहेंगे। इसके बाद एक दिन मादा माँ बन जावेगी। नर चला जावेगा।"

"वह कहाँ चला जावेगा ?" आश्चर्य से उसने पूछा।

"किसी दूसरे बाग़ में..."

कुछ ठीक-सा न समझ कर भी उसने कहा—"अच्छा !"

"और चिड़ियों मे भी नर सुन्दर-सुन्दर गाने गाकर मादा को अपने पास बुलाता है। इनके यहाँ यही व्यवहार चलता है।"

यह सब सुन कर वह अचरज मे रह जाती। फिर न-जाने क्यों मन में सँकुचित हो उठती। एक दिन उस ने कहा—"पशु प्रेम नही जानते। उन के यहाँ मनुष्यों की तरह निराश प्रेमी नही रहा करते।"

यह सुन वह बोली—"ओह, तुम तो बहुत-सी बाते सुना सुना कर मुझे डरा दिया करते हो। तब बच्चे एक दूसरे को क्यों प्यार करते है। क्या यह सब · ·····?"

"बिल्कुल बेकार ·· ·· · "

उस के प्रभाव के भीतर फँस, हर वक्त उस की बातों को सुनते-सुनते, उस ने न जाने क्या-क्या और कैसी-कैसी नई बातें सीख ली—आदमी क्या है, विज्ञान अब क्या-क्या कर रहा है, दुनिया का नाश कब होगा, पशु-पक्षी और मनुष्य के जीवन में इतना बड़ा अन्तर क्यों है, वह सुनाता था, वह एक-एक बात को रटती जाती थी।

एक दिन रात को वह चुपचाप चारपाई पर बैठी हुई थी। वह पास आ कर बैठ गया। बोला—"तुम्हारे पाँव तो बहुत सुन्दर हैं।"

"क्यों, क्या तुम्हारे नही है?"

"मेरे!" वह चुप हो गया। फिर उस के हाथ की उङ्ग-

लियों को दाँतों के नीचे रख बोला—"इन को चबा डालने को तबीयत करती है।"

वह कुछ नहीं बोली। उस की ओर देखती ही रह गई। तभी उस ने अपने ओठों को उस के ओठों से मिला दिया।

"तुम्हारे ओंठ तो बहुत गरम है," वह बोली—"बुखार सा चढ़ रहा है।"

"हमेशा ही वह गरम रहते हैं। बहुत सी बाते मैं मन में सोचता हूँ और वे ओठों पर ही रुक जाती है। इसीलिए वे गरम हो जाते है।"

'और ·· ।"

उसके हाथ की कुछ उङ्गलियाँ उसके कानों को सहलाती-सहलाती उसके गालों को छूने लग गई।

"बतलाओगे नही उन बातों को?" वह कुतूहल मे बोली।

अपने विशाल बाहुओं मे उसने उसे जकड़ लिया। वह घबड़ाहट मे छूट कर चारपाई पर बैठ गई। सारे शरीर में उसके पसीना आ गया।

कुछ दिन उसका जी ठीक नहीं रहा। फिर एक दिन एकाएक सुना, उसे किसी ने जहर देकर मार डाला। खूब इसकी तहकीकात हुई। वह बहुत डर गई। किसी से कुछ पूछ-जॉच नहीं की।

लेडी सर्जन ने महारानी की बीमारी के लिये बहुत-सी बाते सोची। कई पुस्तकों को टटोल-टटोल कर देखा। कितनी

ही समस्याओं पर विचार करने के बाद महाराज से बोली, "मेरा खयाल है कि एक काला हिरन कहीं से मँगवाया जाय।"

"दीवान को हुक्म दिया जावेगा। लेकिन मायके में तो कभी यह रोग नही होता था। एकाएक क्या बात हो गई?"

"एकाएक कोई ऐसा धक्का लगा कि भीतरी नसों मे जहर फैल गया। यदि यह बच्चेदानी और 'स्पाइन' मे फैल गया तो फिर जिन्दा रहने की उम्मेद कम है।"

"इञ्जेकशन्स..."

"वह तो मैं ऑर्डर दिलवा चुकी हूँ।"

"जो आप ठीक समझें, मैं क्या कहूँ।"

एक दिन एक काला हिरन छोटी महारानी के कमरे मे लाया गया। उसे एक चमार जाल से पकड़ कर लाया था। छोटी महारानी उसे देखकर खिल उठी। पूछा—'इसे कौन लाया है?"

"कुछ मालूम नही।"

"उसे यहाँ बुलाया जाय।"

रङ्ग महल में आदमियों के जाने की इजाजत नहीं थी। महारानी का हुक्म फिर भी मान्य था। महारानी ने देखा, चमार एक जवान लड़का है—बिलकुल काला, फटी-पुरानी लङ्गोटी पहने। उससे पूछा—"तूने पकड़ा है?"

"हाँ, सरकार।"

"अच्छा, इसे तुम पालो। रोज यहाँ आकर छोड़ जाया करो।" डाक्टरनी ने कहा।

वह लड़का चला गया। रोज़ छोटी महारानी खिड़की से देखती, चमार का लड़का हिरन के साथ खेला करता। सुन्दर, काला-काला हिरन, बहुत ही अच्छा लगता। बड़े ही प्यारे सीग थे उसके। जब कभी वह और उसके पीछे-पीछे वह हिरन कमरे मे आता तो वह सोचती, उसके भीतर बैठी वे आँखे जैसे उस लड़के की आँखों मे मिल गई है। उसकी आँखों मे वह उन आँखों को तलाश करना चाहती, कुछ न पा कर, भ्रम समझ, एक ठण्डी उसाँस भर फिर रह जाती।

एक दिन उसकी बांदी ने सुनाया, वह शराब पीकर एक नौकरानी से लड़ पड़ा है। उसे विश्वास नही हुआ। पूछा—"नौकरानी से?"

"छेड़खानी कर रहा था। नौकरानी कह रही थी कि वह शराब के नशे में उसे पकड़ना चाहता था।"

"पकड़ना!"

"हाँ, वह बदमाश है।"

उस समय छोटी महारानी चुप रही। अगली सुबह उस ने नौकरानी से एक बेत मँगवाय। जब वह लड़का हिरन लेकर आया तो उसने पूछा—"तू शराब पीता है?"

"नहीं सरकार।"

"झूठ बोलता है?"

"मै नही पीता।"

"झूठा!" कह उसने बेत से उसे मारना शुरू कर दिया।

बार-बार कहती थी, "ऐसी शरारत करेगा, झूठ बोलेगा—सच बता !"

"सरकार, कल थोड़ी पी थी।"

"पी थी—क्यों पी ?" उसके आँसुओं से धुले चेहरे को देख वह सहमी-सी बोली।

"ग़लती हो गई, सरकार अब ऐसा नहीं होगा।"

"और नौकरानी के साथ ?"

"नौकरानी का नाम सुनकर वह भौंचक्का रह गया। फिर वह कुछ संभल कर बोला, "वह बदचलन है, मालिक !"

"बदचलन !"

"जब से मैं आया हूँ, हमेशा मुझे फुसलाती और तङ्ग करती है।"

"तुझे तङ्ग करती है ?" आश्चर्य से पूछा।

"हाँ !"

"क्या बात है।"

"मालिक, वह बतलाने की बात नही।"

"बतला, बदमाश कहीं का।"

"उसकी 'सोख' से साठ-गाँठ है।"

"तूने कैसे जाना ?"

"मालिक, मैंने एक दिन दोनों को पकड़ लिया था। उसी दिन से दोनों मुझे मारने की धमकी देते हैं !"

"जा, दूर हो यहाँ से !" गुस्से मे वह बोली।

उसके चले जाने पर उसे लगा कि सच ही उस हिरन जैसी, बिल्कुल वैसी ही, उस लड़के की भी आँखें है।

अगले दिन सुबह उसने उससे कहा—"देख, शरारत नहीं किया करते। तू मेरा नौकर है। मै तेरे खिलाफ कुछ भी सुनना नही चाहती। वह नौकरानी निकाल दी गई है।"

हिरन को उसने पास बुलाया। वह डर गया। नौकर बोला—"पशु भी ठीक-ठीक पहचानता है। पास आना नही चाहता। कल से वह आप से खुश नही है, सरकार!"

'क्यों, क्या हुआ है इसे?"

"इसे डर लगा है कि कही आप आज भी मुझे न मारें। इसीलिए सुबह आने को तैयार नही हुआ?"

"क्या कह रहा है तू?"

"कल मैं खाना नहीं खा सका तो यह भी भूखा रहा। जब मैं पीड़ा से कराहता, यह मेरे पास आ कातर दृष्टि से मुझे देखता पूछता सा लगता, तबीयत अब कैसी है?"

"तू दवाखाने क्यों नही गया। यह डाक्टर आखिर किस लिये है। उनको इतनी तनख्वाह क्यों दी जाती है?"

"सरकार, मैं शर्म के मारे नही गया।"

"शर्म कैसी?"

"नाहक लोग पूछते कि क्या हुआ है?"

"तब तू शराब क्यों पीता है?"

"सरकार, वह बहुत अच्छी चीज़ है। कल मार खा कर

मैं ने फिर पी थी।"

"कल फिर पी!"

"हाँ, उससे पीड़ा नहीं मालूम पड़ी। सब कुछ भूल गया। नींद भी आ गयी।"

"तब देख, मैं भी पिऊँगी!"

"क्या सरकार!"

"मै भी पिऊँगी। तू चुपचाप रात को ले आना। किसी को मालूम न हो।"

"लेकिन ?"

"लेकिन क्या...पैसा चाहिए...यह ले।"

महारानी ने दस का एक नोट उसके सामने फेंक दिया।

आधी रात नौकर पहुँचा। महारानी ने ज़रा पी और मुँह बिचका लिया। फिर कोशिश की। एक-एक घूँट पीने की कोशिश की। बहुत गरम मालूम होने लगा। उत्तेजित होकर बोली, "बहुत गरम हो रहा है। मेरे कपड़े खोल—खोल!"

नौकर भौंचक्का खड़ा रहा।

"बदमाश, देखता ही रहेगा—खोल, खोल!"

"सरकार, आप क्यों शोर कर रही हैं ?"

"खोल, खोल!"

वह बेत ढूँढ़ कर ले आयी। उसने अपनी साड़ी उतार कर दूर फेक दी। पेटीकोट तार-तार कर डाला, बाडी फाड़ कर अलग कर दी और बाकी शराब अपने सिर पर उड़ेल ली।

फिर बेहोश-सी होकर पलङ्ग पर गिर पड़ी। नौकर ने देखा, देखता रहा और .

आखिर उस ने बोतल उठाई। इधर-उधर बिखरी चीजें संभाल कर रख दी। महारानी के नग्न शरीर को ठीक तरह से ढक फिर बाहर चला आया।

सुबह होने पर लेडी-डाक्टर ने आकर देखा, महारानी बेहोश पड़ी है। कमरे में चारों ओर नजर डाली। लगा, जैसे कोई भारी तूफान आकर गुजर गया हो। वह सन्न रह गई। तभी एक बाँदी ने आकर सूचना दी, चमार का लड़का, हिरन का गला चाकू से काट, भाग गया है।

मुसीबत

[रामचन्द्र चेट्टी]

"अबे ओ रहमत—अहमक के बच्चे!" घूँसा तान उसकी ओर दौड़ते हुए मैं चिल्लाया। रहमत का बच्चा मुझे पास पहुँचने का मौका देने के पहले ही दो छलाँग मार दरवाजा पार कर गया। अब किस्सा यह कि आगे आगे रहमत दरवाजे के परदों को फाड़ता, दालान के गमलों को उलटता, बेतहाशा भाग रहा था और हाथ में डंडा लिए, जो सामने पड़ा मिल गया था, मैं उसका पीछा कर रहा था। रहमत स्वीट-पी को रौंदता, क्रिसमन्थस और डालिया के छोटे-छोटे पौधों को कुचलता

जिन्हें मैंने बडे शौक से लगवाया था, आगे बढ़ा तो अचानक रहमत की मुठभेड़ रास्ते मे रखे एक गमले में लगे गुलाब के पेड़ से हो गई। वह उसके बदन से चिमट गया और दोनों जमीन पर कलाबाजियाँ खाने लगे। दौड़ते हुए, बदहवासी से कुछ सँभलने के पहले ही, मै भी रहमत के ऊपर जा पड़ा। बदन मे काँटे बुरी तरह चुभ गये। कपड़ों की गर्द झाड़ तुरत ही मै फिर उठ खड़ा हुआ और नीचे से काँखते हुए रहमत ने भी सिर उभारा। कमबख्त ने मेरा गरम सूट खराब कर दिया था—जी हां गरम सूट, जो वह पहने हुए था। जगह जगह कीचड़ लग गया और खंरोचे पड़ गये। मेरी आँखों मे खून और पानी एक साथ उतर आया। कहना न होगा कि मेरे हाथ मे डंडा था और बड़ी बेआबरू के साथ उसे मकान के भीतर ले जा रहा था। इसके बाद मियाँ रहमत की जो मरम्मत हुई वह उसे किसी प्रेमिका की यादगार के समान मुद्दत तक भुलाये न भूलेगी।

इससे पहले कि और कुछ कहूँ, यह उचित होगा कि सारी परिस्थिति साफ साफ बयान कर दूँ, जिससे आप खुद फैसला कर ले कि मेरा गुस्सा कहाँ तक वाजिब था। रहमत मेरे अकेले मकान का मेरी हाजिरी मे नौकर, बावर्ची, चौकीदार और सब कुछ था। पर गैरहाजिरी मे अपने को खुद घर का मालिक समझ बैठता था। कच्ची उम्र थी। जवानी पहले पहल उसे चूम रही थी और वह उसके नशे मे झूम रहा था। पड़ोस के

मिर्जा साहब को पता नहीं क्यों, रहमत से बेहद नफरत थी—शायद इस लिये कि वह कुछ शौकीन ज्यादा था, बनाव-शृङ्गार खूब करता था और शायद उनकी दाई की लड़की से उसकी लाग-झॉक भी थी। यह तो खैर उम्र का तकाजा था। वरना वैसे रहमत एक सीधा-भला और अच्छा लड़का था—सिवा उसकी कभी-कभी उभर आनेवाली उन हिमाकतों और बेहूदियों के जो खामख्वाह गुस्सा दिला देती थी।

रहमत शौकीन था, यह मै जानता था। मेरी कमीजें वगैरह, जो अकसर गायब हो जाती थी, कुछ महीनों के बाद उसके बदन पर दिखाई पड़ती थी। लेकिन यह कोई खास बात नही। पुराने कपड़ों को, जो अच्छी हालत मे ही होते थे मै वैसे भी उसे पहनने के लिए दे दिया करता था।

उसी दिन मेरा नया गरम सूट, जो मैने ख़ास तौर से एक अंगरेजी दूकान से आर्डर देकर सिलवाया-था, सुबह-सुबह आया था। बहुत ही नफीस कट और सिलाई थी। देखकर दिल खुश हो गया। सोचा, किसी ख़ास मौके पर इसे काम मे लाऊँगा। मै उसे यों ही आलमारी मे खुला छोड़ आफिस चला गया। थोड़ी देर बाद तबीयत में कुछ हरारत और सर मे दर्द मालूम पड़ा। फिर मैं वैसे ही, एक बजे छुट्टी ले, साइकिल उठा घर लौट पड़ा। भीतर घुस कर जो परदा हटाया तो क्या देखता हूँ कि मियॉ रहमत, मेरा वही नया सूट पहने, ड्रेसिंग टेबल के सामने खड़े परेड कर रहे है और अपनी काली कलूटी

सी शकल को आइने मे मुलाहजा कर मुस्करा रहे है। कम्बख्त ने पतलून की सारी क्रीज खराब कर दी थी। उसकी हद से ज्यादा बेअख्तियारी, बदतमीजी और गुस्ताखी देखकर मै गुस्से से बदहवास हो गया और चिल्ला पड़ा।

सूट को देख-देखकर मेरा दिल रो रहा था। जगह-जगह कीचड़ लगी हुई थी। गुलाब के कॉटों से उसमे खरोंचे पड़ गये थे। एक दो जगह की सिलाई भी उखड़ गई थी। रहमत एक कोने मे पड़े दर्द से छटपटा और सुबकियाँ ले रहा था। मै एक नजर उसे गुस्से से और दूसरी नजर सूट को अफसोस के साथ देख रहा था।

रहमत की मरम्मत करने के बाद जब दिमाग़ ठण्डा हुआ तो सरदर्द आप ही आप काफूर हो गया और उसकी जगह दिल के सदमे ने ले ली। मिर्जा पर मेरी श्रद्धा उभर आई। वह सच ही कहते थे कि यह कमबख्त रहमत बड़ा पाजी है। बुजुर्ग आदमी, दुनिया देखी है, झूठ थोड़े ही बोलेगे। मै ही बेवकूफ था जो उनकी बात का यकीन न किया। मैने साइकिल उठाई और उनके मकान की ओर चल दिया।

"वालेकुम अस्सलाम, आओ मियाँ, बहुत दिन बाद दिखाई पड़े।" मेरे सलाम के जवाब मे मिर्जा ने हुक्के की निगाली मुँह से निकाल कर मेंहदी से रंगी दाढ़ी को मुट्ठी में लपेटते हुए कहा। अपने सूट की बरबादी का जो मैंने उनसे बयान किया तो वह हॅसते-हॅसते लोट-पोट हो गये। मैं केवल

उनका मुँह ताकता रह गया।

मिर्जा ने हँसते हुए कहा—"मियाँ, मैने तो पहले ही कहा था कि यह रहमत एक नम्बर का पाजी और मुँह लगा है। उधर तुम आफिस गये और इधर इसने लौंडियों के ऊपर डोरे डालने की तैयारी शुरू कर दी। मै भी कहूँ कि तुम आखिर इतने सखी कैसे हो गये जो इतने नफीस और बढ़िया कपड़े खैरात करने लगे। अब पता चला कि वह खुद तुम्हारे कपड़ो पर हाथ साफ करता था। तुम घर लौटे नही कि उसने गिरगिट-सा रङ्ग बदला—फिर वही फटे हाल ! पचास बार खुद मैने अपनी आँखों से देखा है।"

"यह सब तो हुआ मिर्जा !" मैने बड़ी आजिजी के साथ कहा—"अब आगे के लिए कोई तरकीब बताइये। पचासों नौकर बदलने के बाद तो इसे लाया। सोचा था, लायक होगा। पर तोबा कीजिये, यह भी नालायक ही निकला। अब क्या किया जाय ?"

"अच्छा तो सुनो, पर भाई, तुम लोग आजकल के लड़के ठहरे, बुजुर्गो की बाते क्यों सुनने लगे। वरना तरकीब तो ऐसी है कि बस सारी परेशानी जादू की तरह छू मन्तर हो जाए !"

"सच, मिर्जा सच ?"

"सच नहीं तो क्या मै झूठ कहता हूँ !" मिर्जा ने गंजे सिर पर हाथ फेरते कुछ ऐसे स्वरमे कहा मानो तमाम जिन्दगी

उन्होंने कभी झूठ बोला ही न हो। मुझे प्रतीत हुआ कि उनका यह गंजा सर, जो हमेशा चमकता रहता है, उनकी उस बुद्धि की प्रखरता के कारण ही है जो परमात्मा ने उनके दिमाग़ मे ठूँस-ठूँसकर भर दी है। बुजुर्गी की निशानी उनकी लम्बी दाढ़ी को मैने बड़ी इज्जत के साथ देखा और सँभलकर उन शब्दों का इन्तजार करने लगा जो इसके बाद उनके मुँह से निकलने वाले थे। पर वे खामोश थे—बिलकुल खामोश—बुत की तरह।

"आप कुछ फरमा रहे थे न?" आखिर मैंने ही तङ्ग आकर कहा।

"मियाँ मेरी बात मानो तो कुछ कहूँ ?"

"अजी यह आप क्या फरमा रहे हैं। आपके पास फिर आया ही किस लिए हूँ।"

"तो मियाँ शादी कर लो !" मिर्जा ने अपनी दोनों आँखे मेरे मुँह पर गाड़कर कहा—"बीबी आयेगी तो घर की देख-भाल खुद कर लेगी।"

शादी और बीबी—इन दो शब्दों ने मुझे ऐसा चौंका दिया कि जरा सँभल नही जाता तो कुर्सी समेत जमीन चूमने लगता। औरतों से—भई सच बात तो यह है कि औरतों से मैं यों ही चौकन्ना रहता हूँ। जब तक दूर रहती है, लड़कियाँ ठीक लड़कियाँ ही दिखाई पड़ती है, पर सामने आई नही कि दिमाग़ बदहवास हो जाता है और केवल सुझाई और दिखाई

पड़ता है—शर्म से मुँह पर आया हुआ पसीना, उखड़ी-उखड़ी आवाज और धड़-धड़ करता हुआ कलेजा । साथ ही मुझे अपनी अम्मी का भी खयाल आ जाता है जिसे मेरे मरहूम वालिद बात-बात पर कहा करते थे—"नेकबख्त, तुझे क्या मेरा ही घर रोशन करना था—तुझे क्या मेरे ही यहाँ मरना था ।"

मिर्जा ने मेरे मुँहपर उड़ती हवाइयों को भाँपकर कहा—"मियाँ तो शादी से इतना घबराते क्यों हो । तुम्हारे लिए ऐसी लडकी ठीक कर दूँगा कि बस तुम भी क्या कहोगे । एक है नजर में । बस, हीरा है हीरा । जहाँ कदम रखेगी, सोना बरसेगा । जहाँ मुस्करायेगी, फूल झड़ेंगे । इतनी सीधी और खूबसूरत कि देखने वालों की आँखे झप जायँ । बातों मे वह मिठास कि सीरनी घोल दी हो । जिस घर मे पैर रखेगी, चमक उठेगा । मियाँ, सूरत और सीरत एक साथ मिलना मुश्किल है । इन स्कूल की पढ़ी-लिखी रंगी-पुती तितलीनुमा बेहया छोकड़ियों के फेर मे मत पड़ना । वरना सारी जिन्दगी तलुवे सहलाते ही बीतेगी । हाँ, बोलो तो करूँ बात पक्की ।"

"पर मिर्जा ।"

"अरे मियाँ, क्या खर्च से डरते हो । लाहोल विला-कूवत, खुदा के फजल से यों ही तुम्हारी तनख्वाह काफी है । फिर जहाँ मर्द चार खर्च करते है, औरतें एक मे ही काम चला लेती है । तुम खुद देखोगे कि कितने मजे से ज़िन्दगी

गुज़रती है ।"

मिर्ज़ा की यह दलील मेरी समझ मे न आई । मेरे मुँह खोलने के पहले ही उन्होंने उसे बन्द कर खुद कहना शुरू किया—"मियाँ, यह लड़कपन छोड़ो । अब तुम सयाने हो गये हो । बेनकेल के ऊँट की तरह कब तक भटकते रहोगे । जवानी गुज़र जायगी तो हाथ मल-मलकर पछताओगे । कहना तो बहुत दिनों से चाहता था, पर मौका आज ही मिला है । तुम बेफिकर रहो । मै सब कुछ देख लूँगा ।"

मै जल भुनकर कबाब हो रहा था । मिर्ज़ा बड़े इतमीनान के साथ दाढ़ी पर हाथ फेर रहे थे । ग़नीमत यह थी कि दाढ़ी मिर्ज़ा के हाथों मे ही थी । अगर मेरे हाथों मे होती तो एक बाल भी साबुत न छोड़ता ।

"पर मिर्ज़ा, लड़की...।"

बस, मेरा मुँह खोलना था कि मिर्ज़ा की खुराफात की बातों का रुका सिलसिला फिर शुरू हो गया ।

'घबराओ नही, अपनी ही बिरादरी की है । रिश्ते मे बहुत नज़दीक लगती है—यानी हमारे ताऊ की साली की लड़की ।"

मिर्ज़ा ने भूमिका बाँधते हुये कहा—"अरे भाई, किसी ऐरे-ग़ैरे के पल्ले थोड़े ही बाँध दूँगा तुम्हे । लड़की क्या है, बस चाँद है—वैसी ही खूबसूरत और वैसी ही नाज़ुक और ठण्डे मिजाज़ की । मियाँ, एक बार घर आ जायगी तो बस चारों

और लट्टू-से घूमते फिरोगे।"

मैं लट्टू सा घूमता कि नही, यह तो दूर की बात है, पर मेरे दिमाग ने तो इसी वक्त घूमना शुरू कर दिया। इसके बाद मिर्ज़ा ने मुझे कुछ बोलने ही न दिया। एक बार मुँह क्या खोला; तूफानी दलीलों और खुराफात ने मुझे घेर लिया। मै उठना चाहता और वह मुझे हाथ खीचकर बिठा लेते। गरज़ यह कि मुझे रात का खाना उन्ही के यहाँ खाना पड़ा और इशारों ही इशारों मे उन्होंने अपनी बीबी पर, मेरे शादी करने की रजामन्दी, बिना मेरे कुछ कहे ही जाहिर कर दी—यानी मै मार-मारकर हकीम बना दिया गया। अजीब झक्की आदमी से पाला पड़ा। बस, उनकी मुर्गी की एक टांग—जो मिर्ज़ा कह दे, वही ठीक—गोया मै एक बेवकूफ था और मेरी राय की कुछ भी कीमत या जरूरत नहीं थी।

दवा लेने गया और दर्द लेकर लौटा। मिर्ज़ा ने ज़बरदस्ती हामी भराकर छोड़ा और यदि मै हामी नही भरता तो कयामत तक मेरा पीछा न छोड़ने की वह कसम खा बैठे थे। रहमत मियाँ तो एक ओर धरे रह गये और मै बीबी का पुछल्ला लिये, आने वाली मुसीबतों की कल्पना करता, अपने घर लौटा। मिर्ज़ा का जादू मुझ पर चल गया, पर यदि कही मेरी बद्दुआयें, जो मैं उन्हे उस वक्त दे रहा था, उन्हे लग जाती तो मुझे उल्टे पैरों उनके घर मातमपुरसी करने के लिए लौटना पड़ता।

मिर्जा ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। वे अपनी बात के पक्के ही निकले—यानी मेरी शादी कराकर ही उन्होंने दम लिया। पर श्रीमती जी ने शायद उनकी तारीफों को झूठा साबित करने की कसम खाकर ही घर मे कदम रखा था। सच पूछो तो बीवी क्या थी, एक छोटा-मोटा कहर, तूफान या डाइनामाइट थीं। पैर रखने-से जहाँ सोना बरसने की बात थी, वहाँ दिवाला पिट रहा था। मोटी-मोटी रकमे दर्ज हो रही थी—बेङ्क के एकाउण्ट मे नहीं, बनिये और बजाज के खातों मे। फूलों की जगह मुझ पर ताने और छींटाकशी, रहमत पर गालियाँ और जूतियाँ झड़ रही थीं। बस, मिर्जा के कहे मुताबिक वह सौ मे एक थी और अगर कहीं सचमुच मे सौ मे सौ होती तो मिर्जा की चमकती चाँद और लम्बी दाढ़ी, दोनों वक्त खुदा को याद करती !

यह माना कि वह काफी हसीन थी। मेरी और रहमत दोनों की आँखे उसके चेहरे पर पड़ते ही झॅप जाती थीं। पर खूबसूरती की वजह से नहीं, उसकी बदमिजाजी का ख्याल कर हम सुबह-शाम डर से उसके तलुये सुहलाते और उस अशुभ घड़ी को कोसते जब हम बेवकूफी का सेहरा बाँधे मिर्जा के यहाँ अक्ल ढूँढ़ने गये थे।

दिन गुजरने के साथ-साथ, जो वाकई मे बड़े मुश्किलों से बीत रहे थे, हमने गौर किया कि हमारे कपड़ों और सूटों से भरी आलमारियों पर धीरे-धीरे साड़ियाँ, सलवार, ओढ़नी,

कुरती, ब्लाउज, बाडिस, पेटीकोट और रेशमी रूमाल कब्जा किये जा रहे है और हमारे कपड़े शिकस्त खाई फौज के समान कम होते जा रहे हैं।

बजाज और दर्जी का बिल ज़ोर-शोर से बढ़ रहा था और उसमे केवल जनाने कपड़ों की ही भरमार रहती थी। आफिस जाने लायक पहनने का सूट मिलना अब मुश्किल हो गया था। श्रीमती जी की बदौलत पुराने कपड़ों को अब सिया जा रहा था, रफू किया जा रहा था और उनमे पैबन्द लगाये जा रहे थे।

कपड़ों की फरमाइश करना सर पर आफत मोल लेना था। वह रूखा जवाब मिलता कि सारे हौसले पस्त हो जाते। एक ही गरम सूट-से, जो अब फटे हाल हो रहा था, चौथा जाड़ा गुजर रहा था। पहनते शर्म मालूम होती थी।

आज सुबह वह कुछ विशेष प्रसन्न दिखाई पड़ रही थी। रहमत ने चाय का सेट लाकर टेबल पर रखा। श्रीमती जी ने खुद अपने हाथों से चाय बना कर मुझे दी। मैंने खुशामद से भरे लहजे मे कहा—"भाई, आज की चाय तो गजब की बनी है। न जाने तुम्हारे हाथ के छू जाने से कौन-सी मिठास आ गई है इस में। बस, जी चाहता है कि बनाने वाले के हाथों को . ।"

उसकी कलाई पकड़ ओंठों तक ले जाने का मैंने प्रयत्न किया, पर उसने बीच में ही अपने हाथ को खींच लिया।

"तो रोज क्या नीम घोलकर पिलाया जाता था, कोई पूछे इन से !"

"ओह मेरी श्रीमती जी" मैंने मन ही मन कहा—"तुम अपनी बातों से ही जहर घोल देती हो। तुम्हारी बद-मिजाजी नीम से भी ज्यादा कड़वी है। एक हम ही हैं जो चुप-चाप बरदाश्त किये जाते हैं।"

गरज मेरी थी। मैंने मुँह पर जबरदस्ती मुस्कराहट लाकर धीरे से कहा—"देखो, मेरा यह गरम सूट बिलकुल फट गया है और पुराना हो गया है। न हो तो इसे रहमत को दे डालूँ।"

"उस मुँहजले को आप...?"

"इस महीने की तनख्वाह मिलते ही मुझे नया कोट सिलवा देना।"

उसकी भौंहों पर बल पड़ गये। मैं बड़ी निराशा से उसका मुँह ताकने लगा।

"ऊँह, यह साल तो ऐसे ही जाने दो। फिर सूट भी कुछ ज्यादा पुराना नही हुआ। अभी नया ही तो है। यही साल दो साल...!"

"चार साल !" मैंने तेजी के साथ कहा।

"हाँ, चार साल यह कुछ ज्यादा थोड़े ही हुआ। मैं दर्जी के यहाँ भेज कर ठीक करा दूँगी। मुझे खुद आपा जैसा फर-लगा ओवरकोट खरीदना है। पिछले महीने सत्तर मे दो

साड़ियाँ खरीदी थीं। उनके दाम भी अब तक बाकी है। इस महीने सब अदा करना होगा। साड़ियाँ, देखा है आपने, कितनी खूबसूरत है!"

"देखा है, ठीक तुम्हारे जैसी!" मैंने जलकर कहा—"पर मेरा सूट . !"

"इस साल तो मुश्किल है। जल्दी क्या है, आगे देखा जायगा।" यह कोरा-सा जवाब देकर श्रीमती जी जूतियाँ चटकाती निकल गईं।

आईने के सामने खड़े होते हुए भी शर्म मालूम पड़ती थी, फिर भी मैं बेशर्म बन कर खड़ा हुआ था, उसी सूट को पहने हुए। कोहनियों के पास से कोट घिस गया था। तार-तार दिखाई पड़ रहे थे। जगह-जगह रफू किया गया था। पैण्ट में दो छोटे-छोटे पैबन्द लगे हुए थे। ज़रा झुकते ही बहुत भद्दी तरह दिखाई पड़ते थे। जगह-जगह धब्बे पड़े हुए थे। सूट की दशा पहनने वाले की दशा से भी ज्यादा दयनीय थी।

इतने में आईने में रहमत मियाँ की झलक दिखाई पड़ी। पहले वह टेसू की तरह सजा रहता था। अब बेहाल हो रहा था। उसके सफेद पाजामे में घुटनों के ऊपर दो रंगीन पैबन्द लगे थे और जो कोट वह पहने हुए थे, उसे देखकर मालूम पड़ता था कि यह पुश्तैनी निशानी है, जिस को पहन कर उसके परदादा गदर के वक्त लड़े थे और उसमें जो बड़े-बड़े छेद थे, वे उन गोलियों के निशान थे जिनका कि उन्हें ग़दर के दिनों में

शिकार होना पड़ा था।

इसी रहमत से पीछा छुड़ाने के लिए मिर्जा की नेक सलाह मान मैं श्रीमती जी को घर मे लाया था। रहमत बेचारा कपड़ों पर हाथ साफ करता था, पर बाद में पहनने को रख तो देता था। अब तो इसके भी लाले पड़े हुए थे।

'मेनस्ट्रीट'

[उमेशचन्द्र मिश्र]

चार बजकर बीस पर अलार्म बजा। ऊन की लच्छियाँ और सलाइयाँ बेग में सरकाकर मेरिया ने मेनस्ट्रीट की ओर की खिड़की खोल दी। आकाश स्वच्छ था। नीचे फुटपाथ पर वही युवक आज भी चला जा रहा था, अपने मे खोया-खोया-सा, बाहर से निरपेक्ष।

कुछ आगे फुटपाथ पर बाजीगर का खेल चल रहा था। खासी भीड़ जमा थी। बाजीगर के प्रत्येक कौतुक पर बाजारी लड़के तालियाँ पीटते, सीटियाँ बजाते और उछल-उछल कर शोर मचाते। वह भी भीड़ के एक किनारे, बिजली के खम्भे के सहारे, खड़ा हो गया। उसकी आँखे मदारी के हाथो पर जम गई और मेरिया की आँखें उसके चेहरे पर।

कुछ देर योंही चला। धीरे-धीरे मदारी ने पिटारा समेटा। धीरे-धीरे भीड़ भी खिसकी। फुटपाथ खाली हो

गया। युवक फिर भी वहीं खड़ा रहा—खम्भे के सहारे, सामने टकटकी लगाये।

"ऊँह! न जाने कब तक खड़ा रहेगा, कैसा अल्हड़ है! भला अब वहाँ क्यों खड़ा है!" मेरिया ने उधर से आँखें हटा लीं और खिड़की बन्द करके अँगीठी के पास जा बैठी।

सामने की अट्टालिका पर बिछलती सुनहरी किरणें धीरे धीरे मलिन पड़ रही थीं। उनकी ओर टकटकी लगाये मेरिया सोच रही थी—'कौन हो सकता है वह! क्यों प्रतिदिन ठीक इसी समय पर आया करता है! कहाँ जाता है! क्या करता है!'

अँगीठी की आग कुछ धीमी पड़ी।

"उफ़, बड़ी सर्दी है", उसने नौकरानी को आवाज़ दी—"कुछ कोयले अँगीठी में और छोड़ जा।"

सहसा उसे कुछ याद आ गया। उसने फिर खिड़की खोली। नवयुवक खड़ा था उसी खम्भेसे पीठ लगाये! वह सामने की ओर उसी तरह देख रहा था। इस बार उसके पास एक सिपाही भी खड़ा था और दो बाज़ारु तमाशबीन भी। 'मेनस्ट्रीट' की बत्तियाँ जल चुकी थीं। यातायात भी कम हो गया था।

"आप यहाँ क्यों खड़े हैं, महाशय?" सिपाही ने शिष्टता से पूछा।

"मदारी का खेल जो हो रहा है!" सिपाही की ओर आश्चर्य से देखते हुए युवक ने उत्तर दिया।

"कहाँ रहते हैं, महाशय? कुछ रुक कर सिपाही ने फिर

प्रश्न किया।

"उधर उस ओर!" अँगुली उठाते हुए युवक ने अनिर्दिष्ट भाव से कहा।

दो-तीन तमाशबीन भी पास मे आकर खड़े हो गये थे।

"आपका अभिप्राय किस स्ट्रीट से है महाशय!" उनमें से एक ने पूछा।

"वही जो उधर को है न······!" स्ट्रीट का नाम स्मरण करने का व्यर्थ प्रयास करते हुए युवक ने कह दिया।

"आप जा कहाँ रहे थे?" एक तमाशबीन ने जानना चाहा।

"बाजार, लच्छियाँ खरीदने।"

"क्या कीजिएगा लच्छियों का?"

"माँ ने मँगाई हैं, स्वेटर के लिए।"

"पर इस सड़क पर इधर एक भी बिसाती की दूकान नहीं है।" सिपाही ने अपनी अभिज्ञता प्रदर्शित करते हुए कहा।

"वह तो देख ही रहा हूँ।" युवक ने अन्यमनस्क भाव से कह दिया। तमाशबीनों के ओठों पर मुस्कराहट खेलने लगी।

"रात बढ़ गई है और कुहासा भी घना हो रहा है। अच्छा हो आप घर पहुँच कर अँगीठी की आँच का आनन्द लें।" सिपाही ने नागरिक सौजन्य का परिचय देते हुए कहा।

"वही सोच रहा हूँ।" कह कर युवक पीछे को मुड़ा।

"अपना घर तो आप ढूँढ़ ही लेंगे?" सिपाही ने

मज़ाक़ किया।

"अवश्य, अवश्य, धन्यवाद!" कह कर युवक ने क़दम बढ़ा दिये और कुहासे में मिल कर अदृश्य हो गया।

\+ \+ \+ \+

'अजीब आदमी है।" कह कर मेरिया ने खिड़की बन्द कर दी। उस की अङ्गीठी खूब गरम हो रही थी। कुर्सी खिसका-कर वह पास जा बैठी।

"कौन हो सकता है वह?" वह फिर सोचने लगी। कुछ देर बाद उठ कर पलङ्ग पर जा लेटी। सोचना फिर भी चलता रहा।

सवेरे उठने पर उस का चित्त स्वस्थ न था। उसे झुँझ-लाहट आ रही थी। एक अजीब तरह की खटक उसे परेशान कर रही थी, जिस का कारण स्वयं उस की समझ मे न आता था।

"उँह होगा भी।" कह कर उस ने मन का बोझ उतार फेंकना चाहा। पर किसी काम में आज उस का जी न लगा।

टाइम-पीस की छोटी सुई चार की ओर बढ़ी। उस की बेचैनी भी बढ़ती गई। इस चिन्ता को निकाल डालना ही ठीक होगा, नहीं तो यह आज भी न सोने देगी। उस ने अपना ट्रङ्क खोल कर नीले रङ्ग का कीमती गाउन निकाला, जिसे वह अमीरों के उत्सवों के अवसर पर ही पहनती थी। फिर एल आलमारी खोल कर सौंदर्य-प्रसाधनों की परीक्षा ली। फिर एक आदमक़द

आइने के सामने खड़े हो कर एक बार आँखें भर कर अपने को देखा।

एक बज कर दस मिनट हो चुके थे। केवल दस मिनट और! घड़ी के अलार्म को बन्द कर दबे पाँव वह जीने से नीचे उतर फुटपाथ पर आ खड़ी हुई। युवक नित्य की भाँति चला आ रहा था। एक अभूतपूर्व चञ्चलता से मेरिया का हृदय भर गया। वह सिहर उठी। 'मेन स्ट्रीट' नागरिक जीवन की घोर व्यस्तता का चल-चित्र बनी हुई थी।

(२)

"मैं यही लच्छियाँ चाहता हूँ न ?" युवक ने एक युवती की ओर हाथ की लच्छियाँ बढ़ाते हुए कहा, जो उस की बग़ल में ही निरुद्देश्य खड़ी इधर-उधर कर रही थी।

"ठीक यही, मिस्टर.........!" युवती ने चौंक कर कहा और मिस्टर पर आ कर अटक गई।

"लुई।" युवक ने उस का वाक्य पूरा कर दिया।

"आप बड़ी सहृदया हैं, मिस..............!"

"मेरिया।" युवती ने उस का वाक्य पूरा कर दिया।

"क्या कीजिएगा इन लच्छियों का ?" युवक की आँखों में आँखें डालते हुए युवती ने प्रश्न किया।

"माँ ने मँगाई हैं, स्वेटर बुनने के लिए।"

"किस रङ्ग की लच्छियों के लिए उन्हों ने कहा था ?"

युवक सोचने लगा।

"ठीक है, परेशान होने की जरूरत नहीं।" उस के असमञ्जस को भाँपते हुए युवती ने कहा।

फिर उस ने दूकानदार से एक विशेष मार्के का बण्डल लिया, जिस में विभिन्न रङ्गों की लच्छियाँ थीं। युवक के हाथों मे उसे रखते हुए बोली—"क्या आप कृपा कर के यह बण्डल मेरी ओर से अपनी माता जी को भेंट कर सकेंगे ?"

"अवश्य-अवश्य, आप बड़ी भली हैं, मिस.........।"

"मेरिया !" युवती को फिर वाक्य पूरा करना पड़ा।

"आप के साथ अपने घर पर चाय पी कर हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।" युवक ने सामान्य शिष्टाचार का प्रदर्शन करते हुए कह दिया।

"धन्यवाद ! आपके घर पर कौन कौन हैं, मिस्टर लूई ?"

"मैं हूँ और मेरी माँ है। तीसरा कोई नहीं है।"

"तब तीसरी मैं हो जाऊँगी।" मेरिया ने नारी-सुलभ चपलता के साथ परिहास किया।

परिहास का अभिप्राय न समझ युवक उस के मुँह की ओर देखता रहा।

"कृपा कर के अपने घर का पता तो बतला दीजिए।" अपने बटुए में से नोट बुक और पैंसिल निकालते हुए मेरिया ने कहा।

युवक चक्कर मे पड़ गया। उसे अपना घर मालूम था, घर का पता नहीं।

"कृपा कर के मेरे साथ चल कर देख लें। नम्रता के साथ उस ने प्रार्थना की।

"धन्यवाद, चलिए।"

दोनों दूकान से निकल कर पूर्व की ओर जाने वाली ट्राम पर जा बैठे।

\+ + + +

"आप मुझे पसन्द करते हैं, मिस्टर लूई?" माँ के किसी कार्यवश दूसरे कमरे में जाने पर चाय पीते-पीते मेरिया ने धीरे से कहा।

"बहुत अधिक, बहुत अधिक!" हाथ का प्याला उतावली के साथ मेज़ पर रखते हुए लूई ने कह दिया।

"आखिर क्यों?" मन में एक विचित्र प्रकार की गुदगुदी अनुभव करते हुए मेरिया बोली।

"आप मेरी माँ जैसी ही भली और उदार हैं।"

मेरिया का जोश ठण्डा पड़ गया। 'इस चिर-शिशु के साथ··· ·····!

(३)

और कुछ दिन बाद मेरिया सचमुच आ गई। उस के आ जाने पर माँ और बेटा दोनों निश्चिन्त हो गये। माँ को एक चीज़ के लिए किसी को महीनों याद दिलाने की ज़रूरत अब नहीं रही। न बेटे को ही अब धोबी का हिसाब उतारने के लिए कहानी के साट को सामने से खिसकाना पड़ता था। अपनी

अपनी जगह दोनों प्रसन्न थे, दोनों सन्तुष्ट। मेरिया भी सन्तुष्ट ही थी। और कभी-कभी अपने इस सन्तोष पर स्वयं चकित हो उठती थी। वह नित्य सवेरे उठ जाती। घर के आवश्यक धन्धों से निबटती, देखती कि लूई की मेज़ पर काग़ज़-क़लम, सिगरेट, दियासलाई क़रीने से सजे हैं या नहीं और माँ के चर्च जाने के गाउन पर ठिकाने से क्रीज़ है या नहीं।

घर के जीवन में अब एकमति आ गयी थी। इस का श्रेय अकेली मेरिया को था। पर मेरिया को कभी कभी ऐसा प्रतीत होता था, मानो उस का जीवन-प्रवाह कहीं रुक सा गया है। विशेषतया घर का सब काम निपटा कर, शृङ्गार के उपकरणों से खिलवाड़ कर के, तीसरे पहर स्वेटर बुनती हुई वह पड़ोसिनों से गप-शप करती और वे अपने 'हनीमून' की रोमाञ्चक बातें अतिशयोक्ति के रूप में सुनातीं तो उस का तन-मन सिहर उठता। इसे अपना जीवन नीरस और निष्प्रयोजन सा लगता। उस के पास पड़ोसिनों को सुनाने योग्य कुछ भी न था।

एक रात को ऐसी ही बात मस्तक मे भरे वह दबे पाँव लूई के कमरे मे जा पहुँची और उस की कुर्सी के पीछे खड़ी हो कर देखने लगी। 'मेन स्ट्रीट' का प्लाट चल रहा था। प्रेमी अपनी प्रेमिका के साथ नार्वे जाने की तैयारी में था—शायद 'हनीमून' के लिए।

"नार्वे क्या 'हनीमून' के लिए सुन्दर स्थान है?" वह पूछ बैठी।

चौंक कर लूई ने पीछे की ओर देखा। फिर बोला—"हाँ-हाँ, बहुत सुन्दर। कम से कम मुझे बहुत पसन्द है।"

"आप वहाँ चलना पसन्द करेंगे?" अनायास ही मेरिया के मुँह से निकला।

"अवश्य मिस............।"

मेरिया ने इस बार लूई का वाक्य पूरा करने की आवश्यकता नहीं समझी। वह दाँत भींच कर चुपचाप कमरे से बाहर चली आई।

कुछ दिन और बीते; महीने भी। अब सूर्य की किरणों में तेजी आने लगी थी और उन के मकान में रखे हुए गमले फूलों से भर उठे थे। मेरिया उन्हें देखती और एक विचित्र प्रकार की बेचैनी का अनुभव करती। वह सोचती, उसे क्या फूल भी पसन्द नहीं हैं।

एक रात वह फिर लूई के कमरे में पहुँची। इस बार लूई सावधान था। उस ने कहा—"क्या है?"

"घर सूना-सूना सा लगता है।"

"तब?"

मेरिया चुप रही।

"ठीक, ठीक, मेरी 'हीरोइन' भी यही सोच रही है। उसे भी कुछ अच्छा नहीं लगता। बाहर बसन्त है, पर उसके भीतर वही शिशिर की ठिठुरन। वह नहीं जानती कि वह क्या चाहती है। मेरी समझ में भी कुछ नहीं आता। उपन्यास यहाँ

आकर रुक गया है । तीन दिन से सोच रहा हूँ ।"

उपन्यास के अधलिखे पृष्ठ पर निगाह डालते हुए मेरिया ने कहा—"मैं जानता हूँ कि वह क्या चाहती है ?"

"तो बताओ न, मैं बड़ा उपकार मानूँगा ।"

"सुनिए; वह चाहती है, अपने साथ खेलने के लिए एक...!" कहते-कहते मेरिया के गाल कानों के समीप-तक लाल हो गये ।

"ओह ठीक ! खूब याद आया । मैं तो भूल ही गया था कि नारी की समस्त चेतना, समस्त अभिलाषा का केन्द्र मातृत्व है । वह प्रकृति से ही बीजगर्भा है । अब काम चल गया ।"

यह कह कर लुई ने लेखनी उठाई और दूने उत्साह, दूने वेग से लिखने लगा ।

मेरिया ने मन ही मन निश्चय किया, इस कठपुतले से अब कभी कुछ न कहूँगी । वह चुपचाप बाहर चली आई ।

कुछ दिन और व्यतीत हुए । मेरिया फिर लूई के कमरे में पहुँची । पर इस बार दिन था, रात नहीं ।

"माँ की तबियत ख़राब है ।" उस ने धीरे से कहा ।

"तबियत ख़राब है ?" कान से लेखनी छुआते हुए लूई ने पूछा ।

"हाँ, बहुत ख़राब है !"

बड़े आश्चर्य की बात है । 'मेनस्ट्रीट' की 'हीरोइन' भी नाव के एक फिवर्ड मे बीमार पड़ी है । उसका प्रेमी-पति उसके

लिए एक नार्वेजियन डाक्टर 'ज्युरोन्स्तचस्त' को बुला लाया है। तुम्हे याद रहेगा न यह नाम। अच्छा, एक बार कहकर देखो तो—'दाक्तार ज्युरोन्स्तचस्त'। स्केण्डेनेवियन नाम बड़े अटपटे होते है, ख़ास कर हम अमरीकनों के लिए।"

"पर इस मनहूस शहर मे इस नाम का शायद कोई अभागा डाक्टर नहीं है।" मेरिया के स्वर मे झुँझलाहट और तेज़ी थी।

कुछ देर तक मेरिया की मुख-मुद्रा की ओर निर्निमेष भाव से देखता हुआ लूई बोला—"तुम मेरा मतलब नहीं समझीं। मैं कहना चाहता था कि मानव सभी परिस्थितियों, सभी स्थानों और सभी कालों में मानव ही है। देश और काल के अवान्तर-भेद उसकी मानवता और सहज अनुभूति को कैसे मिटा सकते हैं।" उसकी क़लम अब बालों से उलझ रही थी।

मेरिया क्रुद्ध गई। फिर बोली—"तुम्हारा घर इसका अपवाद है।" यह कह कर एक झटके के साथ वह कमरे से बाहर निकल गई।

दूसरे दिन प्रायः उसी समय पर वह फिर लूई के कमरे में पहुँची और चाय की ट्रे सामने रखती हुई बोली—"मैं माँ को क़ब्रिस्तान पहुँचा कर आ रही हूँ।"

उपन्यास वहीं रुक गया। क़लम ऊपर उठ गई। शिशु-सुलभ भोलेपन से मेरिया के मुख की ओर देखता हुआ लूई बोला—"माँ मर गई क्या?"

"हाँ, कल शाम को।"

"यह तो बहुत बुरी बात हुई। क्यों न मेरिया, मुझे सेल्मा के उपन्यास इसी लिए पसन्द नहीं हैं कि वह अपने प्रिय पात्रों को प्राय: मार देती है।" यह कह कर चिन्तित मुद्रा से चाय का प्याला उसने उठा लिया और धीरे-धीरे पीने लगा।

इसके बाद कुछ दिन तक कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। अब मेरिया ने अन्तिम रूप से निश्चय कर लिया कि वह लूई से कोई बात न करेगी।

+ + + +

एक दिन लूई ने देखा, कमरे की चिक हटाकर अदालत का चपरासी भीतर आ रहा है।

"क्या है ?" उसने टोका।

"अदालत का समन।" अभिवादन करते हुए चपरासी ने समन आगे कर दिया।

"कैसा समन ?"

"तलाक के मुकद्मे का।"

"मुझे क्या करना होगा ?"

"इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए और कल ठीक तीन बजे अदालत मे पहुँच जाइए।"

लूई ने पीछे मुड़ कर देखा। मेरिया पास ही खड़ी थी। उसकी ओर सङ्केत करते हुए उसने कहा—"मेरे सब कामों पर यही हस्ताक्षर करती है। इसे दे दो।"

"पर इस काग़ज़ पर आपको हस्ताक्षर करना होगा।' आपत्ति करते हुए मेरिया ने कहा।

लुई की समझ में नहीं आया कि आज यह नई बात कैसी। पर मेरिया ठीक ही कहती होगी, यह सोचकर उसने चुपचाप हस्ताक्षर कर दिया।

"कल ठीक तीन बजे; याद रखना!" चपरासी के जाते ही मेरिया ने जैसे सावधान करते हुए कहा।

"हाँ मेरिया, मुझे याद रहेगा। तलाक के मामले, सुनता हूँ, बड़े दिलचस्प होते हैं। मेरी 'हीरोइन' को भी इसकी जरूरत पड़ सकती है। आज तक ऐसा कोई मुक़दमा मैंने नहीं देखा था। यह नितान्त संयोग की बात है। तुम भी मेरे साथ चलना, मेरिया। मजा आ जायगा।"

मेरिया की आँखों में आँसू छलछला आये।

दूसरे दिन मेरिया तो अदालत मे ठीक समय पर पहुँच गई, पर लुई 'मेनस्ट्रीट' में ही उलझा रहा। झुँझलाकर मैजिस्ट्रेट ने उसके नाम वारण्ट निकाल दिया।

"क्या है?" पुलिस अफ़सर को अपने कमरे में आता देख उसने सहज भाव से पूछा।

"अदालत की हाजिरी का वारण्ट।"

"मैं भूल गया था, महाशय, आज अवश्य आ जाऊँगा।"

"नहीं। अभी चलना होगा, इसी समय, मेरे साथ ही।" रोब के स्वर में अफसर ने कहा।

"चलिए फिर।"

वह उठा और अफसर के पीछे-पीछे चल दिया। उसके अदालत में पहुँचने पर न्यायाधीश ने कहा—"आपकी पत्नी की शिकायत है महाशय कि बारह महीने के लम्बे समय में आप ने उसे एक बार भी प्यार नहीं किया।"

लूई का ध्यान नार्वे पहुँचा हुआ था। 'मेनस्ट्रीट' का 'हीरो' अपनी 'हीरोइन' को लिये फियर्डों की सैर कर रहा है। अदालत की बात जैसे उसने सुनी नहीं।

"मैडम का दावा ठीक है, महाशय?" वादी-पक्ष के वकील ने लूई को चुप देखकर प्रश्न किया।

"नारी की दृष्टि बड़ी पैनी होती है महाशय, प्रेम की नाप-तोल में वह कभी ग़लती नहीं करती।"—दार्शनिक की भाँति लूई ने सत्य का निर्देशन किया।

"वादी को खर्चे के सहित डिग्री दे दी जाय।" वकील ने अदालत से सिफारिश की।

"आप की आमदनी क्या है, महाशय?" अदालत ने प्रश्न किया। लूई ने कातर भाव से मेरिया की ओर देखा वह सामने ही खड़ी थी।

"पन्द्रह डालर प्रति सप्ताह।" मेरिया ने अदालत के सामने एक कागज़ रख दिया।

"आप इसमें से अपनी पत्नी को सुविधापूर्वक कितना दे सकेंगे?" तलाक-कानून का आधार लेते हुए अदालत ने पूछा।

"वह तो मेरिया के पास ही रहता है, सब का सब।"

"पर अब वह तुम्हारे साथ रहना नही चाहती।"

"क्यों मेरिया, तुमने तो शायद मुझ से ब्याह भी किया था?"

मेरिया ने घृणा के साथ मुँह फेर लिया।

लूई ने भयभीत बच्चे की तरह इधर-उधर देखा। फिर बोला—"अदालत मेरी सारी आमदनी मेरिया को दे दे और मेरा घर भी। मुझ पर कृपा करके केवल मेरा पढ़ने-लिखने का कमरा छोड़ दे, कुछ दिन के लिए। मेरिया जिस प्रकार चाहे रहे, जो चाहे व्यय करे। कुछ न कहूँगा। पर वह बनी उसी घर में रहे। कम से कम कुछ महीने तक और!"

अदालत ने मेरिया की ओर देखा। उसे कोई आपत्ति न थी।

छः महीने बाद।

'मार्निंग पोस्ट' की ताजी कापी हाथ मे लिये मेरिया एक दिन तड़के ही लूई के कमरे मे पहुँची और बोली—"लूई, डार्लिंग, यह देखो, यह! 'मेनस्ट्रीट' पर नोबेल पुरस्कार—लूई..."

"सचमुच! यह बात अच्छी है, क्यों न मेरिया!" और मानो अपने कथन का समर्थन पाने के लिए वह मेरिया के मुँह की ओर देखने लगा।

(४)

एक महीने के बाद लूई और मेरिया फिर अदालत में पहुँचे। मेरिया ने गुज़ारे की रकम बढ़ाने की दर्ख्वास्त दी थी।

"आजकल आपकी क्या आय है, महाशय ?" अदालत ने नपे-तुले शब्दों मे जानना चाहा।

लूई ने मेरिया की ओर देखा।

"आठ हज़ार पौण्ड, स्थायी, नोवेल-पुरस्कार से और लगभग पन्द्रह हजार डालर प्रति सप्ताह 'मेनस्ट्रीट' की रायल्टी से।" अदालत के समक्ष लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए मेरिया ने कहा।

"मेरिया के निर्वाह के लिए अब आप कितना देना चाहते हैं, महाशय ?'

लूई सहसा चौंक पड़ा। फिर बोला—"क्या मेरी आय सचमुच इतनी है, इतनी अधिक !"

"मेरिया का कहना है कि 'मेनस्ट्रीट' के पुरस्कार और रायल्टी से इतनी आमदनी हो रही है। कागज़ भी उसके कथन की पुष्टि कर रहे हैं।" दावा को समझाते हुए अदालत ने कहा।

"तो वह सारी सम्पत्ति मेरिया की है, मेरी नहीं। अदालत सब रक़म उसे ही दिला दे।"

"और आप अपने निर्वाह के लिए ?" अदालत ने आश्चर्य से पूछा।

"पन्द्रह डालर प्रति सप्ताह। इतना काफी होगा, क्यों न मेरिया ?"

"तुम्हारे-जैसे कठपुतले के लिए जरूर काफी होगा !" मुँह बिचकाते हुए मेरिया ने कहा—"आश्चर्य है, ऐसे भुलक्कड़ों को भी लोग नोवेल-पुरस्कार देते है।

—:मरघट के कुत्ते:—

[अमृतलाल नागर]

"ॐ क्रीं छिन्नपिशाचिनी स्वाहा...ॐ हँसि हँसि जने हीं क्लीं स्वाहा...ॐ ह्री क्लीं...काल कर्णिक ठः ठः स्वाहा... चल, चल...चार ..पाँच ..चल...ॐकारमुखे विद्युज्जिह्वे ॐ हुँ चेटके जय जय स्वाहा...चल फलाँग...फलाँग !"

बुझती हुई चिता के पास ठिठके-हुए जरख को अघोरी ने कर्कश स्वर मे आदेश दिया। गर्दन दबा कर जरख अपना बदन सिकोड़ते हुए एक बार और चिता लाँघने के लिए तैयार हुआ। पोले पञ्जों से एक कदम आगे बढ़ा फिर गर्दन डाल दी और हाँफता हुआ दुम हिलाने लगा।

पालथी मारे आसन पर बैठा हुआ अघोरी आवेश में झपटा। धीमी-धीमी उठती हुई लौ में अघोरी की लाल आँखें और भी लाल लगती थी। काले तिल के दाने झपाटे के साथ

लेते हुए उस ने अपने हाथ झटका कर जरख के मुँह पर तान मारे।

"ॐ ह्री रक्त कम्बले महादेवि मृतक मुत्थापय प्रतिमां चलाय पर्वतान् कम्पाय नीलय विलसत् हुँ हुँ स्वाहा......ॐ ह्री क्लीं...!"

जरख वैसे ही खड़ा हाँफ रहा था। अघोरी ने मंत्र बड़बड़ाते हुए उसे देखा। क्रोधावेश मे उसका बदन फड़क उठा। तिल के दाने लेकर तेजी से उसने हाथ उठाया। जरख ने एक क्षण के लिए अपनी छोटी-छोटी आँखे मीच ली। साहस बटोर कर वह शीघ्रता-पूर्वक चिता को लाँघ गया। मंत्र पढ़ते हुए अघोरी के काले-काले दाँत चिता की लौ मे चमक उठे। वह और स्फूर्ति के साथ मंत्रोच्चार करने लगा।

उल्लू का कलेजा बायें हाथ में ले, उसमे घी, जौ, तिल, रक्तचन्दन और जवाकुसुम डाल तथा बकरे के हृदय का रक्त छिड़क कर जोर-जोर से मन्त्र पढ़ता हुआ अघोरी उठ खड़ा हुआ।

चिता के दाहिनी ओर, पास ही, जरख पड़ा हुआ जोर-जोर से साँसें घसीट रहा था। अघोरी ने उसे देख भर लिया। अपना मन्त्र समाप्त कर उसने चिता मे आहुति दी। बुझती हुई ज्वाला एक बार प्रचण्ड हो कर धीरे-धीरे धीमी होने लगी। कुछ फूल और जौ उठा कर अघोरी ने जरख पर तान मारे—"उठ बे, एक बार और चऽल !"

अघोरी के ओठों पर मुस्कराहट, चिता की लौ, जरख की टाँगें और आँखे प्रायः समान रूप से लड़खड़ा रही थीं। किसी तरह खड़ा हो वह दयनीय नेत्रों से अघोरी को ताकने लगा।

अघोरी फिर तिल उठाने के लिये झुका। उस पार जाने के लिए जरख उछला, लेकिन चिता ने इस बार स्वयं उसे ही आहुति रूप में स्वीकार कर लिया।

अघोरी तड़प उठा। जरख चीत्कार कर उठा। क्रोधावेश में ओठ दबा, घी की हाँडी उठाकर अघोरी ने मरते हुए जरख पर बल-पूर्वक प्रहार किया—"जा साले, तेरा सत्यानास हो। हरामी के पिल्ले···भ्रष्ट कर दिया उल्लू के पट्ठे ने·· !"

अघोरी की गालियों मे मरते हुए जानवर की करुण पुकार दब-सी गई। हाँडी का घी चिता में आखिरी बार जोश ले आया। गालियों का खज़ाना लुटाता हुआ अघोरी अपनी कुटिया की तरफ चला।

लकड़ी की टाल के सामने तराजू के पास, बाँस की खटिया पर लेटा हुआ खिलावन चित हो दो-एक बार जोर-जोर से जमुहाई लेते हुए बड़बड़ा उठा—"राम हो, राम हो, हम जानी डेढ़ क टेम होई। काहे बाबा ?"

"चुप बे, डेढ़ का बच्चा, ससुरा, चल उठ, मेरी चिलम तो ले आ...भ्रष्ट हो गया, जाय साला...ऐसा घोर कलजुग बेईमान ससुरा...अबे मर गया क्या साले.. उठता है कि...!"

"जाइति हयि बाबा, जाइति हयि।"

बाबा बरगद के चबूतरे पर जरा कमर सीधी करने लगा। खिलावन को आता हुआ देख, बदन तौलते हुए उठा। एक अँगड़ाई ली, फिर उसके हाथ से चिलम लेते हुए बोला—"तपस्या क्या होती है बे, जानता है कुछ?"

चिलम की ओर देखते हुए, खीसे निपोर कर, हाथ मलता हुआ खिलावन बोला—"हाँ बाबा, जानिति हयि।"

चिता से आग लेने के लिए बाबा बढ़ा। हड्डी के टुकड़े से अँगारे खींचे, चिलम पर फूँकते हुए, उसने पूछा—"क्यों बे, तपेसरी का लौंडा कब मरेगा?"

आग तापते हुए खिलावन बोला—"जमीन पर तौ लै लिहिन है वहिका। आज भिनसरहै आँखीं उलटि दिहिस रहै। मुल परान-पापी कतूँ अटके आये। याकै याकु जवान-जहान लरिका—का बाबा, उजरिगा तपेसिरियौ बिचरऊ!"

चिलम के चमकते हुए अँगारों मे बाबा के मोटे-मोटे ओठ फड़कते दीखे।

"उजड़ने दे साले को। सुन बे, तेली की जात है। मैं उस के मुर्दे को सिद्ध करूँगा।"

"मुल तपेसरी..।"

"चुप बे तपेसरी के बच्चे। तेरा मालिक है, होगा। देख बे, लहास फूँकने न पाय उसकी।"

कुछ दूर पर क़ब्र-बिज्जू ज़मीन में पोल कर रहा था। एक कुत्ते ने धीरे-से उसकी दुम दाँतों-तले ली। ज़मीन के अँदर से धीमी-सी ग़ुर्राहट निकली।

आस-पास दो चार कुत्ते भूँक रहे थे। दूर पर सियारों का हंगामा था।

सनसनाती हुई हवा पत्तों को खड़खड़ा कर बह चली। चिता की गर्म राख के थपेड़ों ने खिलावन औ अघोरी को उठ जाने के लिए मजबूर किया।

"लौंडे का ब्याह भी तो हो चुका है न ?"

"हाँ बाबा, याक पखवारा भा होई। अबही तौ हाथे क्यार मेहदियौ ऊजरि आय। ई हैजा ससुर बिकट महामारी आय। आजुकाल्हि तौनु ई जानि लेओ, अकि पाटि दिहिस अहै मसान ससुर। मुल मोहना सार परी पाय गया रहै परी, साँचे बाबा।"

"आँख है तेरी, क्यों बे ?"

"नाहीं बाबा, च्-च् राम राम। आँखी का...!"

"उड़ता है बे उल्लू...साले...अच्छा जा, फूँकने न देना उसे। परी तुझे दिलवा दूँगा।"

अघोरी अपनी कुटी मे घुस गया।

हवा के झोंके से पत्ते फिर खड़ाखड़ा उठे।

दूर पर एक कुत्ता रोया—"हू: SSS इ: !"

तीन-चार कुत्ते साथ में सुर मिला उठे। नदी के उस पार सियारों का शोर आसमान उठाये था।

[२]

"का हाल अहै मोहन क्यार ?" दूकान का टट्टर हटाते हुए खिलावन ने पूछा।

"तपेसरी एक टाँग उठा कर चारपाई पर बैठ गया। चेहरा सूख गया था। आँखें लाल थीं। चार दिन की दाढ़ी स्याह चेहरे पर सफेदी बनकर छाई हुई थी। दुपलिया टोपी उतार कर, सिर-के खसखसी बालों पर हाथ फेरता हुआ, तपेसरी सूखी हँसी हँसा। फिर धीरे-धीरे बोलना शुरू किया—"का हाल बताई तुम का। बस इहै समुझि लेओ, दम-दुइ मिनट माँ आवै चहति है—यौ आपन दुकान खावै।"

आँखों की कोरों मे पानी भर आया।

"राम नाम सत्य है...सत्य बोलो ऽ मुक्ति है...हरि का नाम..." एक बारात आई।

"क्या भाव दीं ?"

"चौदह पसेरी" तपेसरी ने बग़ैर सिर ऊँचा किये ही जवाब दिया।

"अरे ठीक बोलो भई।"

"ठीक ही है लाला। ई मोल-तोल की जगह नहीं... खिलावन, तौल तो दे भैया।"

तराजू पर बटखरे चढ़ने लगे।

है ऊपर से।"

लोध के मुर्दे की पत्नी सकपका कर रह गई। महापात्र तथा दो-चार और लोग तमाशा देखने के लिये आ गये।

नाव वाले से डोल झपट कर अघोरी बड़बड़ाता हुआ कुटी मे चला गया।

धीरे-धीरे खोटे रुपयों का क़िस्सा मालूम हुआ। विमान की लाश के लड़के ने सुना। उसने धरम किया। लोध की लाश चिता पर चढ़ी।

"करम कौन करेगा ''यह लड़का है ''अच्छा, यही सही।'

लड़के के एक हाथ मे जलती हुई पुआल पकड़ा कर दूसरे हाथ को अपने हाथ मे लेकर, महापात्र चिता की सात परिक्रमा कराने लगा। लड़का घबरा कर रो उठा। माँ को पुकारने लगा। महापात्र जल्दी-जल्दी उसे चारों तरफ़ घुमा रहा था। औरत अलग खड़ी रो रही थी।

"अच्छा, लाओ-लाओ जल्दी करो। सवा रुपये पैकरमा के, आठ आने परेत-भोजन, बीस आने मेरी दच्छिना। जल्दी करो जल्दी!"

विमान पर जरकिनार दुशाले का कफन था। मेहतर ने हाथ लपकाया। महापात्र का ध्यान उधर ही था। दाहिना हाथ औरत की तरफ़ फैला हुआ था। निगाह सामने थी। मेहतर को दुशाला लेते देख वह चीख उठा—"ठहर बे, ठहर बे, ओ डोम के बच्चे, वो मेरा हक है।"

डोम का बच्चा भी सीना तान कर अकड़ा "है हक्क तुम्हारा ? कभी तेरे पुरखों ने भी कफन लिया था ?"

"हाँ-हाँ, बड़ा कनूनिया बना है। खबरदार जो एक कदम भी आगे बढ़ाया। हक्क की बात कर।"

महापात्र औरत की ओर मुड़ा—"जल्दी निकाल जल्दी, मेरी दच्छिना ! टके का मुर्दा ससुर, मेरा बावन रुपये का दुसाला चला गया तेरे पीछे। अब जल्दी कर ना।"

आँचल की गाँठ खुल गई। महापात्र झपट कर चारों ले गया खरे भी। और खोटे भी।

डोम आगे बढ़ा। महापात्र एक टिखटी का बाँस लेकर झपटा—"कपाल किरिया कर दूँगा साले तेरी। बायें हाथ से ढीला कर दे मेरा दुसाला, चुप्पे से !"

"आये बड़े धौंस जमाने वाले।"

"धौंस वाले क्या बे.. वो तो मेरा हक्क है...लँगोटी तेरी होती है...जा ले जा।"

"वो तो मेरी हुई। उस पर क्या बोलोगे ?"

"अबे तो कफन दे न मेरा। मारे बाँस भुरता कर दूँगा साले...लाला, तुम्ही धरम की बात कहो.. बोलो... कफन किसका है ?"

तपेसरी के घर से खबर आ गई थी। वह रोता हुआ जा रहा था। महापात्र ने उसकी बाँह पकड़ कर पूछा।

तपेसरी क्षुब्ध हो उठा। आँसू से भरी आँखे ही महा-

पात्र की ओर उठा कर रह गया।

महापात्र ने उसे देखा। पूछा—"क्या हुआ... क्या मोहन..."

तपेसरी हिचकियाँ लेकर रो उठा।

"राम-राम, राम-राम। महापात्र एक क्षण रुक कर बोला—"अच्छा, धरम की बात कहे जाओ, हक मेरा है न?"

तपेसरी ने नाक साफ करते हुए भर्राये गले से जवाब दिया—"हाँ भैया तेरा है।" फिर जल्दी से पिण्ड छुड़ा कर चला गया।

"ले बे ले, देख ले।"

"उनके कहने से होता क्या है?" मेहतर बोला—"हक मेरा है।"

"बड़ा हक वाला बना है।" बाज की तरह झपट्टा मार कर महापात्र ने मेहतर के हाथ से दुशाला छीन लिया।

इसी समय अघोरी बाहर निकला।

"देख लो बाबा, देख लो। तुम्हीं धरम की बात कह दो। कफ्फन किस का होता है? ये महा बाह्मन का बच्चा साला मेरा हक लिये जाता है। कफ्फन भी नही जुड़ेगा साले को, मेरा जी दुखा के, हाँऽ।" डोम मुँह और आँखे पोंछने लगा।

"जी क्या दुखाया वे हक मेरा है। लाला तपेसरी भी कह गये न अभी।"

अघोरी ने महापात्र की ओर ज़रा देखा। फिर भंगी से बोला—ले जाने दे साले को। तपेसरी भी हरामी है। उसका तू उतार लेना बे। लाता होगा उठा के अभी। जा बे, मेरी चिलम में आग तो ले आ।"

महापात्र धीरे-धीरे बड़बड़ाता हुआ खिसक गया। मेहतर आग लेने चला।

अघोरी ने तन कर एक अँगडाई ली—"शिव-शम्भो... हर हर।"

"फिर खिलावन की ओर तिरछा मुड़ कर बोला—"खिलावन, तौल रखबे लकड़ी। समझा !"

लाल-लाल आँखे खिलावन की आँखों मे जा पड़ी। खिलावन सकपकाया। धीरे-से बोला—"हाँ बाबा।"

"हाँ बाबा नही बे, होगा बाबा। समझा ?"

खिलावन चुप रहा।

मेहतर अँगारे ले आया। चिलम उलट कर बाबा ने गाँजा भरा। फिर अँगारे रख, दम लगाते हुए, ओंठ चबा कर भँगी से बोला—"उस तेली का लौंडा फुँकने न पाये। समझा बे। दुसाला तुझे दिलवा दूँगा।"

"मुल बाबा, पचास के बीच मे ये होगा कैसे ?"

"होगा बे, होगा। बाबा कहता है, होगा। भसम कर दूँगा सारे मसान को आज।"

चिलम उलटा कर बाबा तेज़ी से अपनी कुटिया मे

चला गया।

"खिलावन!" अन्दर जाकर बाबा ने आवाज़ लगाई।

खिलावन चला। उसे बाहर ही से आदेश मिला—"किसी मजूरे को भेज। सहर से सामान मँगाना है।"

खिलावन उल्टे पाँव टाल पर लौटा।

बाबा की कुटी से लौट कर मज़दूर ने खिलावन से कहा—"बाबा मसान जगहि है आज। पूँजा खातिर समान मँगाइन है। तनी आपन सैकिल तो दोओ हमका।"

खिलावन ने चुपचाप साइकिल की ओर देख कर गर्दन हिला दी।

घण्टे-भर बाद मज़दूर साइकिल के पीछे गठरी बाँधे लौट आया। फिर हुक्म मिला। मज़दूर गया। गाँव से एक बकरा चुरा लाया।

नदी में दो गोते लगा कर अघोरी गीले बदन कुटी में जमे हुए आसन पर आकर बैठ गया। पूजा आरम्भ की। बकरा बलिदान किया।

अँधकार धीरे-धीरे बढ़ रहा था।

खिलावन, मज़दूर, मेहतर, महापात्र, चुपचाप खड़े, 'राम-नाम-सत्य' की आवाज़ निरन्तर समीप आते सुन रहे थे।

लकड़ी की टाल के सामने ही मोहन की अर्थी को विश्राम मिला।

"देख ले बेटा, देख ले' हाय, अब इस गद्दी को कौन

सम्हालेगा मेरे लाल ?"

तपेसरी मोहन की लाश से चिमट गया।

एक-सौ-आठ गोते लगने शुरू हुए । तपेसरी किसी के सम्हाले न सम्हलता था।

"नहाले मेरे लाल ··तुझे तो पैराकी का बड़ा सौख था मेरे मिठुआ !"

तपेसरी एक-एक बात को याद कर फूट-फूट कर रो रहा था।

कफन उतरा। मेहतर और महापात्र लपके।

"अब मत बोलना । ये मेरा दाँव है । बाबा फैसला कर चुके है।"

महापात्र कफन घसीटते हुए बोला—"बड़े बाशा आये फैसला करने वाले। मेरा हक है।"

लपक कर दूसरा छोर मेहतर ने पकड़ लिया—"आज हक जताने आये है। दिलग्गी नहीं है। मैं ले के ही छोड़ूँगा।"

"देखूँ साले, कैसे लेता है। हड्डी तोड़ के धर दूँगा तेरी, चाहे आज नहाना क्यों न पड़े !" महापात्र मेहतर पर झपटा।

तीन-चार लोग समझाने लगे।

"नही आज मै फैसला करके ही रहूँगा । साला मेरे हक मे दखल देता है, भंगी का बच्चा !"

"और तू साले महाबाह्मन का बच्चा।"

महापात्र गुथ गया—"साले गाली देता है ?"

आसमान पर काले बादल घिरने लगे थे। लोगों ने जल्दी मचाई।

"अच्छा, पहले करम तो करादो। पीछे फैसला कर देंगे। पानी आने वाला है।" एक ने महापात्र से कहा।

"करम कैसा जी...पहले इस साले का तो करम कर दूँ।"

दोनों तरफ से चटाचट और धपाधंप तमाचे, घूँसे और गालियों के गोले चल रहे थे।

तपेसरी रोता हुआ बोला—"अरे मंसादीन महराज, छिमा करौ। दाग तौ लगै गया हमरे भैया! तुम्हरे पाँव छुइति हैं।"

"माने क्या लाला...तुम्ही कहौ धरम की बात। उत्ती वेला तुम्ही ने तो न्याव किया था...हमारा हक है कि नहीं?"

मेहतर ने बात काटी—"हक कैसे...लाला की तो उमिर गुजर गई हियाँ...बताओ लाला कप्फन किसका...देखो, ईमान की बात।"

"ईमान क्या...उत्ती वेला कहा ही था।"

"मुल तब आपे मे थोड़े रहे। पूछो लाला से।"

खिलावन बीच-बचाव करने लगा। महापात्र तैश मे आकर बोला—"तुम चुप रहना खिलावन। मोहन के मुर्दे पर मेरा हक नही जमा तो मेरी जिन्दगी भर की जाती है। तपेसरी लाला रोज के तजरबेकार है। कह दे मोहन की लहास पे हाथ धर के, हक इसका है...फेंक दूँ साले को। दो कौड़ी के दुसाले

की बिसात ही क्या है ?" मंसादीन महापात्र के मुँह पर 'हक' का तेज चमक उठा।

"खिलावन, तुम्ही कहौ ईमान की। बाबा ने क्या फैसला किया था उस दम ?" डोम का पक्ष कमज़ोर था।

बड़ी-बड़ी बूँदें पड़ने लगी थी। अँधेरा घनघोर छा रहा था। लोग घबरा रहे थे।

तपेसरी सम्हला, बोला—"अच्छा जो बाबा कहैं भाइ।"

तपेसरी चला। मेहतर आगे-आगे बढ़ा और लोग पीछे पीछे।

कुण्ड में आग की लपटें उठ रही थी खून के छीटे, पूजा का सामान, बकरे का कटा हुआ धड़—कुटी मे चारों तरफ बिखरा हुआ था। बकरे के सिर मे चर्बी भर कर दीप जलाया था। खून से सना हुआ कलेजा एक ओर रक्खा था, पास में ही शराब की बोतल। बकरे के खून से लथपथ अघोरी आसन मारे मंत्रोच्चार कर रहा था। उसकी आँखें बन्द थी। बीच बीच में उसका बदन फड़क उठता था।

बाहर, सब लोग मंत्र-मुग्ध, स्तब्ध !

सहसा बाबा ने आँखें खोली। सामने तपेसरी को एक वस्त्र मे खड़ा देखा।

शराब की बोतल हाथ में उठाई। बकरे के कलेजे पर धार पड़ने लगी—"ॐ क्री आगच्छ आगच्छ चामुण्डे क्री स्वाहा ऽऽऽ !"

तपेसरी की तरफ देख अघोरी क्रूरतापूर्वक ठहाका मार कर हँस पड़ा।

आकाश में बड़ी ज़ोर से बिजली कड़की। पानी तेज़ी से बरसने लगा। लोग मसान छोड़ कर भागे।

बाहर, हवा के साथ पानी की तीखी-बौछारें, सन्-सन् करती हुईं।

बाबा ने कुण्ड में कलेजे की आहुति दी। आग की लपक बढ़ी। एक बार और अघोरी की हँसी श्मशान के वातावरण में गूञ्ज उठी—"ह-ह-ह।"

हवनकुण्ड की अग्नि-शिखा बाबा के तमतमाये हुए चेहरे के सामने खेल रही थी।

दो रोटियाँ

[चन्द्रकिरण सोनरेक्सा]

उमा ने सिर पर पहला लोटा ही डाला था कि बाहर से उसकी छोटी ननद श्यामा ने पुकारा—"भाभी, ओ भाभी, मुन्ने ने सब कुछ खराब कर दिया है। जल्दी आओ।"

"हरे भगवान!" थके और खिझे हुए स्वर में उमा के मुँह से निकला। फिर साबुन-लगे हाथों से ही नल की टोटी बन्द कर उसने गुसलखाने में से कहा—"बीबी जी, मेरे सिर में साबुन लगा हुआ है। ज़रा तुम्हीं धुला दो।"

"यह अच्छी रही," श्यामा ने तीखे स्वर मे उत्तर दिया—"न बाबा, खिलाना-पिलाना सब कर सकती हूँ, लेकिन यह गंदगी नही ढोई जाती मुझसे.........!"

"तो रहने दो, मै आकर ठीक कर लूँगी।" रुआसे स्वर मे उमा ने कहा और जल्दी-जल्दी लोटे डाल कर सिर का साबुन निकालने लगी। बाहर मुन्ना उसी प्रकार लथ-पथ चिल्ला रहा था—"हुआ...हुआ . !"

"अरी बहू, क्या कान मे तेल डाल कर सो गई है !" बाहर के द्वार से प्रवेश करते हुए सास ने गरज कर कहा—"वाह री, बालक रो-रो कर बेहाल हुआ जा रहा है और रानी जी अपने सिंगार मे मगन है। देख तो आकर, उसने गद्दी, दरी-बिछौना, सब कुछ ख़राब कर दिया है।"

फिर बिना रुके उन्होंने पुकार लगानी शुरू कर दी—'बहू, अरी ओ बहू !"

"जी मै गुसलख़ाने मे हूँ !" जल्दी जल्दी भीगी देह को बिना पोंछे ही, धोती लपेटते हुए, गुसलख़ाने के भीतर से उमा ने उत्तर दिया।

"बेगम गुसल कर रही है।" श्यामा ने माँ की पुकार के उत्तर मे कहा—"हुक्म दे गई है कि मेरे आने से पहले लड़के को नहला-धुला कर काजल-तेल लगा कर लैस कर दो।"

"ओ हो !" सास ने चमक कर कहा—"कोई उसके बाप का नौकर बैठा है जो नहला-धुला देगा। अरी बहू, क्या

तेरा नहाना अभी तक नहीं निबटा ?"

"आयी अम्मा जी !" बिना जम्पर पहने, धोती से देह छिपाती, गुसलखाने से निकल कर उमा रसोई घर की ओर लपकी। आलू चढ़ा आई थी। उन्हें देखना ज़रूरी था।

"पहले इसे सम्भाल !" सास ने पोते की ओर इंगित करते हुए कहा।

उमा मुड़कर दालान मे आ गयी। रोते हुए बच्चे को उठा कर नल के नीचे ले गई। नल खोल कर उसे नहलाते हुए उसने पुकार कर कहा—"बीबी जी, ज़रा आलू देख लो। कहीं जल न जाएँ।"

श्यामा ने सुन तो लिया, पर बोल कानों पर उतार कर 'जासूस की डाली' पढ़ती रही। उमा मुन्ने को नहला कर, तौलिए से उसका बदन पोंछ, फ्राक पहना रही थी। तभी आलुओं के लगने की तीव्र गंध ने उसकी नाक मे प्रवेश कर बता दिया, तरकारी जल रही है। फ्राक गले में पड़ी छोड़ कर वह रसोई की ओर दौड़ी। अंचल से पतीली उतार कर उसने दूध की कढ़ाई चूल्हे पर रखी। फिर आकर मुन्ने को फ्राक पहनाई। मुन्ने के गंदे कपड़ों को समेट कर उसने एक कोने मे रख दिया।

साढ़े आठ बज चुके थे। नौ बजे तक उसे भोजन तैयार करना था। कपड़ों का पोट धोने के लिए फ़ुरसत के पूरे दो घण्टे चाहिएँ। अभी ऊपर के कमरे

और छत पर झाड़ू लगानी बाकी थी । आज उमा ज़रा देर से, याने चार के बजाय साढ़े चार बजे, उठी थी । इतनी देर से उठने का ही यह फल हुआ था ।

"बीबी, बीबी !" बाहर से दो वर्ष की मुन्नी ने आकर माँ का आँचल खींचते हुए कहा—"दादा जी आये हैं । चिज्जी लाए है ।"

"हट परे !" उसे एक झिड़की देकर, मुन्ना को गोद मे उठा कर, रसोई घर मे चली गई । मसाले के दो-एक डब्बे मुन्ना के आगे रख, उसे खेल मे लगा, वह आटा सम्हालने लगी ।

चूल्हे पर तवा रखा ही था कि बाहर से उसके छोटे देवर ने आकर कहा—"भाभी, पिता जी ने कहा है, उनका पेट आज कुछ गड़बड़ मे है । वह रोटी नहीं खायँगे । थोड़ा-सा दलिया बना देना ।"

"अच्छा," कह कर उमा ने पहली रोटी तवे पर डाल दी । 'उनके' लिये कुछ फुलके सेक कर तवा वह उतार देगी । फिर दलिया बना कर शेष आटा बाद मे सेंक लेगी । मन ही मन उसने तय किया ।

"बीबी दूध···बड़ी भूख लगी है ।" मुन्नी आकर सिर पर सवार हो गई ।

"ठहर जा, देती हूँ," उमा ने चूल्हा फूँकते हुए कहा गीली लकड़ियों के कारण आग जल नहीं रही थी

धुएँ के मारे उसकी आँखें अन्धी हुई जा रही थीं।

"अभी दे, जल्दी ··!" मुन्नी मचल कर रोने लगी। उमा का धैर्य जवाब दे गया। आटा लगे हाथों से एक थप्पड़ उसके गाल पर लगा कर बोली—"चुप चुड़ैल!"

मुन्नी ने एक तूफान बरपा कर दिया। आँगन मे मचल कर गिर पड़ी। धरती पर लोट कर उसने पुकार लगाई—"अम्मा···अम्मा···मुझे बीबी ने माला···!"

अम्मा अर्थात मुन्नी की दादी माला फेर रही थी। पोती का रोना सुनकर वहीं से बैठी-बैठी चिल्लाई—"बाबा रे, यह माँ काहे को है, कसाइन है। ज़रा लड़की पास गई नहीं कि इसने पीट पाट कर उसका भरता बना दिया। ऐसा कौन हल में जुत रही है कि घड़ी-भर बच्ची को दुलार-पुचकार भी नहीं सकती। दोनों समय दो रोटियाँ सेंकनी पड़ती हैं। उसी मे बिचारी का सारा दिन खप जाता है।"

उमा जहर के घूँट की भाँति सारी बातें पी गयी। रात के चार बजे वह उठी थी। अब साढ़े नौ बजे हैं। तब से वह एक पाँव से नाच रही है। घर भर के बिस्तरे उठाना, झाड़ना, सब को लस्सी-पानी-शर्बत बना कर देना, बच्चों को नहलाना-धुलाना, रसोई तैयार करना। सवेरे से यह चक्की चल रही है। अभी ढेर के ढेर कपड़े धोने हैं। अचार का मसाला कूटना है। गरम कपड़े धूप में सुखाने है। आटा खतम हो गया है। उस के लिये गेहूँ बिनने हैं। यह सब करना है। कभी बच्चे को गोद

में लेकर, कभी सुला कर, कभी पास बैठा कर । बीच-बीच में किसी को पान देना, पानी देना, सिर में तेल की मालिश करना, संध्या को फिर इतने बड़े परिवार के लिए भोजन बनाना, बिस्तरे बिछाना है · ।

"मेरी कमीज़-पतलून तो ज़रा निकाल दो ।" रामेश्वर ने पुकार मचाई—"और देखो, गुसलखाने मे तेल-साबुन तौलिया भी रख देना ।"

तवे पर पड़ा फुलका जल्दी से सेक कर उमा उठी । मुन्ना रोने लगा । लाचार उसे भी गोद मे उठा कर तौलिया-साबुन रखने चली । जल्दी से साबुन-पानी रख वह ज़ीना चढ़ कर ऊपर गई । फिर बक्स में से कमीज़-पतलून निकाल पलंग पर रखा और रसोई मे आकर पुन. रोटी सेकने लगी । मुन्ना किसी भी तरह शांत न बैठता था । उमा ने हार कर ननद को पुकारा—"बीबी, ज़रा आकर इसे लेलो । रोटी नही सेंकने देता ।"

श्यामा भुनभुनाती हुई आकर उसे उठा ले गयी । जाते जाते बोली—"इससे तो काम कर ले सो अच्छा । एक नौकर इनके बच्चे को खिलाए, तब रानी जी दो रोटियाँ सेकेंगी ।"

"तो बीबी, दो फुलकियाँ तुम सेक दो । मै उसे लिए लेती हूँ ।" उमा ने ज़रा चिढ़ कर कहा ।

दो फुलकियों के लिए गुँधे हुए दो सेर आटे का परिमाण देख कर श्यामा ने मुँह बिचका कर उत्तर दिया—"न बाब

मैं किसी के किए-कराये की मालिक नहीं बनती । जब सभी तुम ने कर लिया तो दो रोटियाँ सेंक कर मैं अपना नाम क्यों करूँ ।" और वह मुन्ना को उठा कर चली गई ।

"कमीज़ के बटन नदारद हैं। पतलून में बक्सुए नहीं हैं ।" रामेश्वर ने ऊपर से आकर भुनभुनाते हुए कहा—"तुमसे इतना भी नहीं होता कि जब धोबी के यहाँ से कपड़े आएँ तभी उन्हें टाँक कर दुरुस्त कर रक्खो ।"

उमा ने तवा चूल्हे से उतार कर नीचे रख दिया और कमीज़ लेकर भीतर चली गई । एक बटन टाँक कर दूसरे में सूई लगाई ही थी कि बाहर से सास ने कहा—"हरे राम, चूल्हा खाली जल रहा है और आप जाने कहाँ सो रही हैं !"

घबड़ाहट में सूई उमा की उँगली में चुभ गई । 'सी' करके उमा ने सूई खींच ली । दो बूँद रक्त धोती पर चू पड़ा । जैसे-तैसे बटन लगा कर, बक्सुए हाथ में लेकर, वह बाहर आ गई । चारपाई पर सब कुछ रख कर वह फिर रोटी सेंकने लगी ।

सास कह रही थी—"जल्दी-जल्दी, सेंक ले । मैं गेहूँ फटक रही हूँ । बीन कर साफ़ करना है इन्हें ।"

+ + +

पौने ग्यारह बजे रामेश्वर सिनेमा देख कर लौटा । उमा ने आकर द्वार खोले । फिर यह कहती ऊपर चली गई— "रसोईघर में जाली की आलमारी में दूध रखा है । वहीं कपड़े में लिपटे पान भी रखे हैं ।"

रामेश्वर ने रसोई मे जाकर दूध निकाल कर पी लिया। फिर कुल्ला कर पान का बीड़ा मुख मे रख ऊपर पहुँचा। कमरे मे आकर देखा, मुन्नी अपने खटोले पर और मुन्ना उमा की चारपाई पर सो रहा है। उमा अपने सामने रामेश्वर का बक्स खोले कुछ सी रही थी।

"इतनी रात तक भी तुम्हारा ताना-बाना खतम नही हुआ!" अपने पलंग पर बैठ कर रामेश्वर ने कहा—"यह क्या कर रही हो?"

"ज़रा कमीज़ो मे बटन लगा रही हूँ", उमा ने एक फटे नीकर को सीते हुए धीरे से उत्तर दिया।

"इसके लिए क्या दिन मे समय नही मिलेगा। क्या करती रहती हो सारे दिन। पहले चौका-बर्तन का रोना रहता था। अब तो महरी भी लगा दी है।" रामेश्वर ने नाक-भौं चढ़ा कर पूछा।

उमा चुप रही।

"चलो रखो। इसे कल करना। अब सोओ।" अधिकार पूर्ण स्वर मे रामेश्वर ने कहा।

उमा ने चुपके से सब समेट कर बक्स मे रख दिया। उसकी आँखें नींद से झपी जा रही थी। हल्के पाँवों से वह अपनी चारपाई की ओर बढ़ी।

"अरे उधर कहाँ चली, यहाँ आओ!" रामेश्वर ने बुलाया।

— आ —

उमा के सिर पर फिर मुसीबत आयी है। अर्थात् निकट भविष्य मे ही वह किसी तीसरे प्राणी की माँ बनने वाली है। मुन्ना अभी सवा साल का है। अच्छी तरह पैरों भी नहीं चल पाता। मुन्नी भी मुश्किल से साढ़े तीन वर्ष की हुई है। तिस पर अव यह तीसरा प्राणी आ रहा है। उसने तो कभी इसकी चाहना नहीं की। वह तो पहला भार ही सम्हालने में असमर्थ है। इसे वह कैसे पालेगी। फिर मुन्ना आजकल बीमार है। दिन भर उसे सास रखती है। स्वयं उसे तो दो रोटियों से ही फुरसत नहीं मिलती। हाँ, रात का जागना उसके जिम्मे है। वह नही जागेगी तो कौन जागेगा? वह जागती है, दवा देती है, दूध पिलाती है और रामेश्वर की नींद न उचट जाए, इसलिए सारी रात मुन्ना को गोदी में लेकर टहलाती भी है। बीमार बच्चा; तनिक-तनिक-सी बात पर रोने लगता है।

उमा की देह यह सब नहीं सह पाती। तीन महीने से उसे हल्की-हल्की खाँसी बनी हुई है। बीच मे दूसरे चौथे हरारत भी हो जाती है। आज मुन्ना की तबियत ज्यादा खराब थी। डाक्टर देखने आया था। देखकर जब बाहर आया तो उसने रामेश्वर से कहा—"मिस्टर वर्मा, तुम्हारी वाइफ तो बहुत 'वीक' है। डिलिवरी का टाइम करीब आ रहा है। पूरी खुराक और आराम मिलना चाहिए। हूपिंग कफ (काली खाँसी) हो रही है। सरदी के दिन हैं। ठंड से बचाइयेगा......।"

रामेश्वर चुपचाप खड़ा डाक्टर का 'समॅन' सुनता रहा। वह कुछ बोला नहीं।

\+ + +

वह दिन भी आ गया, जिस की कल्पना और प्रतीक्षा दोनों ही उमा की देह के अणु-अणु में पीर-भरी सिरहन भर देती थी, जिसका अनुभव यह पहले भी दो बार कर चुकी थी। वही प्रसव की काल-रात्रि फिर आ गयी। नीले पड़े ओंठों को भींच-भींच कर, दर्द की लहरें सहते-सहते, उमा ने बेबस घण्टे बिता दिए। प्रसव फिर भी न हुआ। उमा के प्राण आँखों में आकर अटक गये। हाय राम, किन पापों का दंड वह भोग रही है यह ... !

"रामू!" सास ने ज़रा घबड़ाये स्वर मे कहा—"जा, लेडी डाक्टर को बुला ला। दाई कहती है कि मेरे बस का यह रोग नही है।"

फिर बड़बड़ा कर बोलीं—"आज कल तो सभी बातें निराली होती है। बालक भी तो 'कलजुगे' हो गये हैं। बिना लेडी डाक्टर के धरती पर आना ही नहीं चाहते। आजकल की लुगाइयाँ भी ऐसी हैं कि एक दिन के दर्दों मे ही ठंडी पड़ जाती हैं।"

लेडी डाक्टर आई। उमा को देख घबड़ा कर बोली—"ओ बाबा, इतना वीक!"

पूरे छः घंटे के बाद मूर्छिता उमा ने एक मृत-शिशु

को जन्म दिया।

\+ + +

दस बारह दिन बाद उमा फिर उठने-बैठने योग्य हो गयी। खड़ी होने की शक्ति आते ही उसके सिर पर फिर दोनों समय की रोटियाँ पड़ गईं। अब एक समय में जब वह चार फुलके खा सकती है तो दो जून चार रोटियाँ सेंक लेना कोई बड़ी बात नहीं। फिर जब बालक ही नहीं रहा तो सवा महीने की 'छूत' क्यों रहती। वह तो बालक के आराम की खातिर है, नारी की सुविधा के लिए नहीं।

डगमग पाँवों से उमा फिर घर में चक्कर काटने लगी। मुन्ना को गोद में लिए-लिए रोटी-पानी, झाड़ू-बुहारी, सभी कुछ चलने लगा। जैसे-तैसे तीन महीने तक उसने अपनी ड्यूटी भुगताई। फिर एक दिन चुपके से—कुल चार दिन के तेज ज्वर में सदा के लिए उसने छुट्टी ले ली। उमा मर गयी।

— ६ —

"श्यामा ज़रा साबुन तो देना!" गुसलखाने से रामेश्वर ने पुकारा।

"मै मुन्ना को लिए हूँ" श्यामा ने बहाना किया और बाहर चली गई।

"अम्मा, साबुन कहाँ है मेरा!" रामेश्वर फिर चिल्लाया।

"क्या जाने भैया कहाँ है। मैं तो रोटी सेक रही हूँ। कैसे ढूँढ़ूँ?"

"ज़रा उठ कर देख न दो।"

"न बाबा, मुझ से बार बार नही उठा जाता। गठिया के मारे जोड़-जोड़ दर्द करता है!" माँ ने भुनभुना कर कहा।

बिना साबुन ही रामेश्वर नहा कर उठ गया। बदन पोंछने को उसने तौलिया उठाया। फिर सूंघ कर उसे दूर फेंक दिया। जाने कब से नही धुला था। बू आ रही थी उसमें। गीले बदन कपड़े पहने वह बाहर आ गया।

"अम्मा!" उसने रसोई के द्वार पर खड़े होकर कहा—"तौलिया में बू आ रही है। कब से नही धोया?"

"ले, अभी चार ही दिन तो हुए हैं साबुन लगाये।"

"चार दिन...तोबा!" रामेश्वर ने कहा—"तौलिया तो रोज़ धुलना चाहिए!"

"भइया, यहाँ तो किसी को फ़ुरसत है नहीं। तुम्हीं इतना कर लिया करो।"

दाँत पीसता रामेश्वर ऊपर चला गया।

"श्यामा मेरे कपड़े क्या धोबी को नहीं दिए।" वह ऊपर से चिल्लाया—"बक्स मे एक भी पतलून नहीं है।"

"मुझे नही पता। नीचे के तो सब डाल दिये थे।" "श्यामा ने भुनभुना कर कहा—"दिन-भर तो मुन्ना को लिए रहती हूँ।"

रामेश्वर ने पलंग के नीचे झाँक कर देखा। मैले कपड़ों का ढेर लगा था। एक एक खींच कर वह सब कपड़े

निकालने लगा।

"हरे भगवान...!" सहसा उसके मुख से निकला। उसका नया कोट चूहों ने कुतर दिया था। परन्तु क्रोध किस पर करे। दूध पीकर उसने गिलास पलंग के नीचे सरका दिया था। वह शायद लुढ़क गया। दूध के लोभ से चूहों ने कोट की दावत कर डाली।

धप् से पलंग पर बैठ कर वह बड़बड़ाने लगा—"मैं सारे दिन जान खपा कर रुपया कमाता हूँ। फिर भी कोई मेरी परवाह नहीं करता। समय पर दो रोटियाँ भी नहीं मिलतीं। घर में और काम ही क्या है जो...!"

'टन' करके घड़ी ने साढ़े नव बजाया। लपक कर रामेश्वर शीशा-कंघा खोजने लगा। कंघा दो टुकड़ा हुआ टेबिल के नीचे पड़ा था।

वह बड़बड़ाता हुआ सीढ़ियाँ उतरा—"अम्मा, मेरा कंघा किसने तोड़ा ?"

"और कौन तोड़ेगा, मुन्नी से टूटा है !" माँ ने धुएँ के कारण आँखें मलते हुए कहा—"इस मरी स्यामो से इतना भी नहीं होता कि एक समय रोटी ही बना लिया करे। दोनों जून मैं ही चूल्हे पर तपूँ !"

"मुन्नी, अरी मुन्नी, इधर तो आ चुड़ैल !" आँगन में जाती हुई मुन्नी का कान पकड़ कर रामेश्वर ने दो थप्पड़ जमा दिये।

"अरी मेरी माँ...!" मुन्नी चीख मार कर रोने लगी।

रामेश्वर बिना रोटी खाये आफिस चला गया।

अम्मा कह रही थी—"न बाबा! इसके मिजाज़ कौन सहेगा। मै तो बरेलीवालों को लिख दूँगी। लड़की छोटी हो या बड़ी, हम तो गौना ले जायँगे। छोटी थी तो ब्याह क्यों किया था। कुछ नही करेगी तो दो रोटियाँ तो सेंक ही देगी।"

कितना झूठ

[विष्णु]

निशिकाँत की आँखे रह-रहकर सजल हो उठती और वह मुँह फेरकर सड़क की ओर देखने लगता, मानो अपने आँसुओं को पीने की चेष्टा कर रहा हो। सड़क पर सदा की तरह अनेक नर-नारी पैदल, ताँगे पर, कार पर, सायकिल या दूसरे यानों पर, इधर से उधर और उधर से इधर आ-जा रहे थे। उनमे अमीर-ग़रीब, स्वस्थ-अस्वस्थ, सुन्दर-असुन्दर, दाता-भिखारी, अच्छे और बुरे, सभी थे। कुछ चुपचाप चल रहे थे कुछ ऊँचे स्वर मे चिल्ला रहे थे। उनके स्वर की गूँज दूर दूर तक फैल रही थी। कुछ फ़ैशन की तितलियाँ—यौवन की प्रतिमाएँ, खोये जीवन की याद लिये कुछ वृद्धाये, कुछ अल्हड़ बालक और बालिकाये, रात के सिनेमा में सुने हुए गीत को गाने की चेष्टा करते हुए कुछ मस्त युवक, कुछ युग के भार से दबे हुए सिनरसीदा लोग। सभी आते और लिप्त-अलिप्त

से, एक अदृश्य चक्कर में घूमते-घुमाते, विलीन हो जाते।

यह सब देख कर निशिकांत हठात् सोच बैठता—आखिर यह बात क्या है—यह सृष्टि क्यों बनी है—उस अव्यक्त अगोचर परमात्मा को क्यों यह खब्त सवार हुआ—क्यों उसने मकड़ी की तरह यह ताना-बाना बुन डाला—फिर इस जाले मे कितना तेज आकर्षण—स्त्री और पुरुष एक-दूसरे की तरफ इस प्रकार खिँचते है जैसे कभी वे एक रहे हों और फिर किसी के क्रूर हाथों-द्वारा कभी अलग कर दिये गये हों और अब जैसे फिर एक होना चाहते हों—बिलकुल उस काल्पनिक अर्द्ध-नारीश्वर की तरह—लेकिन वे एक हो कहाँ पाते है—केवल एक क्षणिक, अपरिमेय, अद्भुत और आनंद-मय आवेग के बाद अलस-उदास और धीर-गम्भीर होकर अपने ही समान अपने अनेक स्वरूपों का निर्माण करने मे लग जाते है—स्वयं सृष्टा बन कर नियन्ता की बेवकूफी को दोहराने लगते हैं और इस कार्य मे उन्हे इतना आनन्द मिलता है कि मृत्यु के समान प्रसव-पीड़ा भी उनके प्राणों मे उन्माद पैदा कर देती है। उनका मिट्टी का घरौँदा जब उनके अपने स्वरूपों की किलकारियों से गूँजने लगता है तो आनन्द-विभोर होकर कह उठते हैं—यही तो स्वर्ग है। और कभी न समाप्त होने वाले इस सृष्टि-क्रम का एकमात्र कार्य है जीवन के एक-मात्र और अन्तिम सत्य को प्रमाणित करना—जीवन का वह सत्य है मृत्यु…।

निशिकांत हठात् चौंक उठा—"तो क्या सत्यभामा भी मर जायगी... बेशक मर जायगी.. ।"

वह फिर कातर हो उठा। जिन आँसुओं को पीने के लिए उसने इतना सोच डाला था, वे फ़िर दुगने वेग से उमड़ आये। उसने गरदन को जोर से झटका दिया और इस बार फिर अपनी आँखे उस विशाल बिल्डिङ्ग की ओर घुमा दी जिसके एक कमरे मे, उसकी पत्नी सत्यभामा को लेकर, मृत्यु और जीवन के बीच एक भयङ्कर संघर्ष छिड़ा हुआ था। उसने देखा, उस ब्रह्मलोक (मैटिरनिटी हास्पिटल) मे अन्दर ही अन्दर एक सुप्त कोलाहल, एक मधुर वेदना, एक मीठा दर्द, जागता चला आ रहा है। सफेद बगुले जैसे कपड़ों मे कसी नर्सें, तेजी से खटखट करती डाक्टरनियाँ; स्ट्रेचर या इनवा-लिड चेयर थामे सहायक दाइयाँ और बार-बार दरवाजे पर आकर पुकारती हुई मिसरानी—सभी एक नियम मे बँधे, सदा की तरह, मशीन के समान अपना काम करती चली जाती है।

तभी दाई ने आकर पुकारा—"मालती का घरवाला है।"

बेच पर ऊँघता-सा एक व्यक्ति बोल उठा—"जी, मै हूँ।"

"लड़का हुआ है।"

"लड़का ।" नींद जैसे खुल गई—"दूध लाऊँ?"

"हाँ, इसी वक्त—और फल भी," उसने कहा और शीघ्रता से चली गई।

क्षण बीता। लान मे अनेक स्त्री-पुरुष आये और गये।

इतने मे दाई फिर बाहर आई—"करुणा !"

एक स्त्री दौड़ी—"जी…!"

"लड़की !"

स्त्री के साथ एक अधेड़ सज्जन भी थे। सुनकर सन्न से रह गये। दूसरे क्षण बोले—"लड़का और लड़की, दो मे से एक ही तो होना था। जाओ, मै दूध लाता हूँ।

निशिकांत रोज इसी तरह सुनता और देखता कि भागे हुए स्त्री पुरुष आते है और खिलौने की तरह अपना ही सा स्वरूप लेकर चले जाते है। रात ही कोई दो बजे एक स्त्री आई। बोली—"मेरे बच्चा होने वाला है।"

नर्स ने कहा—"बेड खाली नहीं है। और कही जाइये।"

"लेकिन…!" स्त्री के पति ने घबरा कर कहा।

नर्स खिजी, मुस्कराई, स्त्री को लेकर अन्दर चली गई और कोई बीस मिनट बीते होंगे कि लौट कर आई—"जाइये, दूध ले आइये। आपको लड़का हुआ है।"

लेकिन साथ ही निशिकांत ने देखा कि एक युवक बहुत दुखी, संतप्त, अलग एक कोने मे ऐसे बैठा है जैसे कि अभी रो पड़ेगा। उसने पूछा—"क्या बात है ?"

वह चौंका-सा—"क्या बताऊँ कि क्या बात है।"

"आखिर ‥?"

"पाँच दिन से दर्द उठ रहे हैं। बच्चा नहीं होता।"

"आपकी पत्नी है ?"

"जो···!"

"और कौन है ?"

"कोई भी नहीं।"

उसने गम्भीर होने की चेष्टा की और ठीक इसी समय आवाज़ लगी—"रानी के साथ कौन आया है ?"

"मैं हूँ," वह युवक शीघ्रता से आगे बढ़ा।

नर्स ने कहा—"बच्चा अटक गया है। आपरेशन होगा।"

निशिकांत ने देखा, उस युवक के पैर लड़खड़ाये और वह बेञ्च पर ऐसे लुढ़क गया जैसे दरख्त से कोई टहनी टूट कर गिर पड़ी हो। नर्स फिर आई और एक पर्चा पकड़ाते हुए बोली—"घबराइये नहीं। सब ठीक हो जाएगा। जाकर दवा ले आइये।"

वह उठा और निशिकांत से बोला—(वाणी उसकी रुँध गई थी)—"सच कहता हूँ, इस बार रानी बच गई तो···!"

निशिकांत ने बीच मे टोक कर कहा—"जाइये, इंजेक्शन ले आइये। जो कुछ आप करेंगे, वह सब दुनिया जानती है।"

वह गया कि वहाँ एक तीखी करुणा भरी आवाज़ गूँज उठी—"माँ, तुम से बढ़ कर मेरा सहारा कौन है। तुम माँ हो, तुम जगत्माता हो, तुम · !"

एक अधेड़ पुजारी माथे पर त्रिपुण्ड लगाये, गले मे राम-नामी साफा डाले, करुणा से घिघियाता, नर्स के पैरों पर झुका जा रहा था· -"मैं लुट जाऊँगा, मेरी बाग-बाड़ी उजड़ जायगी,

मेरे छोटे बच्चे धूल में मिल जायँगे…!"

सब तरह की बातों की अभ्यस्त नर्स ने बीच में ही तेजी से कहा—"शोर मत मचाओ। इलाज हो रहा।"

फिर दूसरे ही क्षण धीमा पड़कर बोली—"उसे आज पहले से आराम है। सब्र करना चाहिए। सब कुछ ठीक होगा।"

"ठीक होगा, माँ…?"

हाँ-ना में जवाब दिये बिना नर्स फिर चली गई। तभी लान के पीछे वाले बँगले में बड़ी डाक्टरनी तेजी से स्टेथेस्कोप लिये निकली। निशिकांत दौड़कर उसके पास गया। डाक्टरनी ने देखा, रुकी और बोली—"क्या बात है ?"

"सत्यभामा के…?"

"हाँ-हाँ, वह आज टिकी है। खतरा पूरा है परन्तु आशा है…"

"आपकी कृपा है, लेकिन मैं कहता था, आप पैसे की चिन्ता मत करना…।"

डाक्टरनी लापरवाही से बोली—'पैसा हम लोगों के लिये चिन्ता का विषय कभी नहीं रहा। आप… !"

कहती-कहती बड़ी तेजी से वह अन्दर चली गई।

पास खड़े एक सज्जन ने पूछा—"केस बहुत सीरियस है ?"

"जी, दस दिन से न जीती है, न मरती है।"

"बच्चा हुआ था ?"

"जी, बच्चा तो ठीक हो गया…"

"फिर…"

"फिर क्या जी, अपने कर्म का लेख। बच्चा होने के सात दिन बाद इतना रक्त बाहर निकल गया कि ब्लड प्रैशर जोरों पर आ गया। खून के इंजेक्शन लगाने की बात चल रही है।"

"खून के इंजेक्शन!" साथी अचरज से बोले।

"जी हाँ," निशिकांत ने कहा और तेजी से उठ खड़ा हुआ। अन्दर से उसकी माँ आ रही थी। उसके चेहरे पर घबराहट थी और आँखों मे तरल निराशा।

"क्या बात है ?" उसने शीघ्रता से अपने को सम्भाल कर माँ से पूछा।

माँ कुछ नहीं बोली, केवल हाथ हिला कर मानो कहा—"क्या पूछते हो, पूछने का विषय ही अब समाप्त होने वाला है।"

"फिर उठने लगी है ?"

"भागती है। नर्सो ने बाँध दिया है और दूर कमरे मे जहाँ कि…"

"……"

"रह-रह कर कह उठती है—बच्चा…मेरा बच्चा कहाँ है ?"

"मैंने कहा—बेटी, तेरा बच्चा घर पर है। लेकिन वह मानती नहीं। उठ-उठ कर भागती है।"

माँ रोने लगी। निशिकांत नीचे देखने लगा। उसका

हृदय बैठ गया। आँखें जलने लगी। आँसू अन्दर ही अन्दर धुआँ बनकर घुट गये। माँ फिर आँसू पोंछते हुए बोली—"मैं घर जा रही हूँ। बच्चे के लिए किसी दूध पिलाने वाली को देखना है। दूध के बिना क्या वह बचने वाला··।"

लेकिन जैसे ही वह जाने को मुड़ी, निशिकांत का छोटा भाई तेजी से साइकिल पर आकर बोला—"जल्दी घर चलो माँ!"

माँ, चौंक कर बोली—"क्यों रे · ?"

"चलो तो।"

"आखिर···?"

वह बोल नहीं सका। रो पड़ा।

निशिकांत समझा और समझकर हँस पड़ा—"अरे रोता है, इतना बड़ा होकर। दुनिया मे मरना-जीना तो लगा ही रहता है ··।"

लेकिन माँ बावली-सी बोली—"तू कहता क्या है ?"

फिर पागलों की तरह घर की तरफ दौड़ी। सड़क पर मोटर सन्नाटे से निकल गई। भाई ने साइकिल सम्भाली और निशिकांत सदा की तरह, हाथ कमर के पीछे बाँधे, टहलने और सोचने लगा—"यह दुनिया, यह सृष्टि, जीवन से मृत्यु, मृत्यु से जीवन, यह कैसा निर्माण-चक्र। यह प्रेम, यह वासना, सब का वही एक अन्त ··!"

उसका मस्तिष्क चकराने लगा। उसे याद आया, युद्ध-

भूमि के उस महान् दार्शनिक नित्शे ने एक स्थान पर लिखा है—"स्त्री एक पहेली है जिसका हल बच्चा है।"

इतने में कई नर्सें मुस्कराती हुई उसके पास से निकल गईं। एक ने निशिकांत को देखा और कहा—"आज सत्यभामा बेहतर है।"

"थैंक्स, सब आपकी मेहरबानी है।"

"लेकिन उसके बेबी का ख्याल रखियेगा।"

निशिकांत एकदम कॉपा। नर्स ने उसी तरह कहा—"जब तक आप धाय का इन्तज़ाम करें, तब तक अपनी भावज का दूध ही पिलाइये। सत्यभामा हर वक्त बच्चा-बच्चा कहती रहती है!"

"जी," निशिकांत ने कहा,"बच्चा बिलकुल ठीक है। धाय का प्रबन्ध कर लिया है।"

दूसरी नर्स बोली—"कभी यहाँ भी लाइये।"

"ज़रूर लायँगे जी।"

वे चली गईं। निशिकांत की ऑखें एक बार फिर ऑसुओं से भर आईं। वह गुनगुनाया—"स्त्री एक पहेली है और बच्चा उसका हल ·।"

छोटी डाक्टरनी मुस्कराती हुई वहाँ आई। निशिकांत को देख कर ठिठकी और ॲगरेज़ी में बोली—"मि० निशिकांत, सत्यभामा आज बेहतर है।"

निशिकांत ने हाथ जोड़े और कृत-कृत्य होकर कहा—

"बहुत-बहुत धन्यवाद। वह आपके कारण जीवित है। आप कितनी मेहरबान है।"

डाक्टरनी ने सुना-अनसुना करते हुए कहा—"उसका बच्चा कैसा है?"

"बिलकुल ठीक है ?"

"यह ठीक है, लेकिन सत्यभामा बच्चे के लिये जरूरत से ज्यादा चिन्तित है।"

इधर-उधर की दो-चार बातें करके वह चली गई और फिर सन्नाटा छा गया। धूप मे भी तेजी आने लगी। निशिकांत उसी तरह सोचता हुआ टहलने लगा। परदेश से आई कोई स्त्री एक कोने मे खड़ी थी। उसने भी निशिकान्त को देखा। पूछ बैठी—"क्यों भैया, बहू का क्या हाल है?"

"अभी तो चल ही रहा है।"

स्वर को संयत बना कर वह बोली—"मैं कहती हूँ, इतनी देर जो लगी है, इसी में भला है। यह तो मरने मे ही देर नहीं लगा करती। लेकिन बच्चा तो ठीक है न...?"

"बिलकुल ठीक!" उसने एक दम कहा और फिर चुप हो गया।

दोपहर भी बीतने लगी। मिलने का समय भी आने लगा। फिर कोलाहल शुरू हो गया। नर-नारी फिर बाते करने लगे। इस बार बहुत से बच्चे भी तोतली वाणी मे अपने छोटे भाई-बहनों की चर्चा करने लगे। कुछ हँस रहे थे,

कुछ के चेहरा पर चिन्ता की गहरी रेखा थी। कोई लड़के की बात कहता, कोई लड़की की। कोई कोई मौत की चर्चा भी छेड़ देता। निशिकांत ने सब की बाते सुनी और अपनी सुनाई। कहा—"भाई साहब, दुनिया का चक्कर इसी तरह चलता है। लड़का-लड़की, जिन्दगी-मौत, सुख-दुख—ये सब अपनी-अपनी बारी से आया ही करते है।"

"जी," उसकी बात सुनकर एक बोल उठा—"आप ठीक कहते है।"

दूसरे ने कहा—"आप कहते तो ठीक है, परन्तु हमने तो कभी जिन्दगी मे सुख देखा नही.. "

एक तीसरा व्यक्ति बीच मे ही बोल उठा—"तो फिर आपके लिए जीना बेकार है ..।"

बहस तेज़ी से चलती, लेकिन घण्टी बज उठी और भीड़ बड़ी तेज़ी से अन्दर की तरफ़ भागी। निशिकांत आज अकेला था। भाई अन्य रिश्तेदारों के साथ जमुना पार चला गया था। माँ आ नहीं सकती थी। वह अकेला ही चुपचाप सत्यभामा के कमरे की ओर चला गया। उसने देखा—चारों ओर हँसी-खुशी का कोलाहल गूँज उठा है।

केवल सवेरे वाले पुजारी ने व्यग्रता से गुमसुम पड़ी अपनी पत्नी को देखा और रो पड़ा—"सोना, मेरी सोना, तू बोल तो...!"

नर्स चिल्लाई—"ख़बरदार जो यहाँ रोये !"

दूसरी तरफ़ एक युवती ने घबराकर पति से कहा—"मैं जाऊँगी। यहाँ डर लगता है।"

दूसरी स्त्री ने पति से पूछा—"बच्चे को देखा है!"

"नहीं।"

"वह देखो, नम्बर चार के पालने मे है। बिलकुल तुम पर पड़ा है।"

"सच!" और फिर वे दोनों मुस्करा उठे।

तीसरी स्त्री अपनी भावज से चुपचाप बातें करके लगी। चौथी स्त्री की माँ आई थी। पूछने लगी—"डाक्टरनी क्या कहती है?"

"ठीक हो जाएगा।"

"कब तक?"

"दो-चार दिन लगेंगे।"

पाँचवीं युवती ने पति से शिकायत की—"तुम बड़े शैतान हो। मुझे किस मुसीबत मे फँसा दिया!"

पति मुस्कराया—"दो चार महीने बीत जाने दो, तब पूछूँगा।"

दोनों हँस पड़े। लेकिन इन सब से बचकर दूर कमरे में निशिकान्त अपनी पत्नी के सामने जाकर खड़ा हो गया था। सफेद चादर की तरह फूली हुई लाश के सामने सत्यभामा ने उसे आँख उठाकर ऐसे देखा जैसे अबोध बालक अपने चारों तरफ़ देखता है। उसने शायद मुस्कराना चाहा, शायद

मुस्कराया भी—चेहरे पर एक अव्यक्त-सा भाव आकर चला गया।

फिर धीरे से बोली—"तुम ..?"

निशिकान्त का दिल टूट रहा था, पर उसने अपनी सारी कोमल शक्ति बटोर कर कहा—"अब तो तुम ठीक हो।"

वह बोली नही, बाये हाथ को उठाकर जोर से पटक दिया।

"नहीं-नहीं," निशिकान्त ने कहा—"ऐसे नहीं करते।"

सत्यभामा बोली—"बच्चा . ।"

वह बोला—"हाँ, तुम्हारा बच्चा बिलकुल ठीक है।"

"झूठ।"

"नहीं-नही, वह घर पर है। उसे दूध पिलाने के लिये धाय रक्खी है।"

वह आँखे गड़ा कर देखने लगी, लेकिन उन आँखों मे क्या था, यह कोई नहीं बता सकता। निशिकान्त ने उसकी आँखों पर अपना हाथ धर दिया। कहा—"एक दिन उसे यहाँ लायँगे।"

यह कहते ही उसने महसूस किया कि उसकी आँखों की पुतलियाँ जोर से घूमी। कुछ गीला-गीला लगा। उसने हाथ उठा लिया। आँसू की एक बूँद उसके हाथ से चिपककर रह गई। उसने हठात् अपने को सँभाला। बोला—"सत्यभामा!"

"जाओ...!"

"रस पीओगी ?"

"नहीं.. !"

"कैसी बाते करती हो, पी लो..."

वाणी जैसे कुछ खुली—"तुम अभी तक गये नहीं। जाओ, नहीं तो ये नर्सें तुम्हे जहर दे देंगी !"

निशिकान्त ने कुछ कहना चाहा, परन्तु वह बाहर चला गया। बाहर फिर वही कोलाहल, बच्चों की किलबिल, स्त्रियों का धारा-प्रवाह प्रेम, स्नेह और भयभरी चिंता, पुरुषों की गम्भीर मन्त्रणा। कभी नर्सों का खटखट करते आना, दवा पिला जाना, कभी इनवैलिड चेयर पर किसी स्त्री का दर्द से कराहते हुए जाना। यह सब देखता निशिकांत अन्दर के लान मे टहलता रहा कि वक्त खत्म होने से पहले एक बार फिर पत्नी को देख आय, लेकिन जैसे ही वह अन्दर गया, सत्यभामा ने अजीब घबराहट से भरकर कहा—"फिर आ गये ?"

निशिकांत बिना बोले सिर पर हाथ फेरने लगा।

"सब मर गये—नर्सों ने सबको मार डाला !"

"नही·· !"

"जाओ ··!"

"··· ···"

"सब खत्म—बचा भी खत्म !"

"बचा बिलकुल ठीक है। तुम देख लेना।"

तभी नर्स ने कहा—"बहुत मत बोलिये, मि० निशिकांत !"

दो-चार शब्द सान्त्वना के कहकर वह बाहर चला गय। । उसका दिल भर आया। उसने आसू पोंछ डाले । सब कोलाहल समाप्त हो गया था। केवल रात का चपरासी बरामदे मे टहल रहा था। उसने निशिकांत को देखा—"बाबू जी, अब ठीक है न ?"

"कुछ है तो..."

"बस बाबू जी, अब सब ठीक हो जाएगा। मैंने इससे बढ़कर बुरे केस देखे है। एक लाला जी आये थे । उनकी लड़की सूजकर मांस का पिण्ड बन गई थी..."

रोज की तरह फिर वह अपनी कहानी सुनाने लगा जिस मे घूम-फिरकर अपनी तारीफ करना उसका लक्ष्य रहता। कहता—"आदमी की पहचान किसी किसी को होती है। सच कहता हूँ, आप है जो आदमी की कदर करते है । कभी खाली हाथ नहीं आते, हर वक्त दुआ मॉगता हूँ कि खुदाबन्द करीम इन बाबू जी का भला करना।"

पूछ बैठा—"बच्चा कैसा है ?"

"बिलकुल ठीक।"

"खुदा का शुक्र है। बहू जी भी बिलकुल ठीक होंगी।"

निशिकांत कॉप उठा, न जाने क्यों । तभी बाहर की सड़क पर खोमचे वाले ने आवाज लगाई। नर्स ने खिड़की से झॉक कर कहा—"ओ शरीफ !"

"जी हुजूर !" चपरासी भागा।

"खोमचे वाले को जरा बुलाओ। उसके पास चाट है न ?"

लेकिन वह रसगुल्ले बेच रहा था। बड़ी बड़ी आँखों वाली नर्स ने कहा—"हम चाट माँगता है!"

शरीफ ने कहा—"खाइये, मिस साहेब, बड़ा मीठा है!"

"अच्छा तो ले आओ, लेकिन पैसे तुम देना। मेरे पास इस समय नहीं हैं।"

"पैसे!" शरीफ हँस पड़ा—"मेरे पास और पैसे!"

एक क्षण सन्नाटा छा गया। खोमचे वाले ने नर्स को देखा, नर्स ने शरीफ को और शरीफ ने बाबू निशिकांत को। निशिकांत का दिल टूटा पड़ा था। उसे इन सब से नफरत हो रही थी। खोमचे वाले ने फिर कहा—"जाऊँ हुजूर ?"

निशिकांत एकदम बोल उठा—"जाओ नही, पैसे मैं दूंगा।"

"नही-नहीं," नर्स ने शीघ्रता से कहा।

"कोई बात नहीं। अरे, मिस साहब को मीठे रसगुल्ले दो।"

नर्स तब मुस्कराते बोली—"तुम बड़े अच्छे हो। सत्यभामा आज बेहतर है। आपका बच्चा कैसा है ?"

निशिकांत ने कहा—"सब ठीक है।" फिर मुड़कर बोला—"लो शरीफ, तुम भी लो!"

"अजी नही बाबू जी," शरीफ ने न-न करते हाथ फैला दिये।

नर्स थैंक्स देकर मुस्कराती अन्दर चली गई। शरीफ़ वहीं खड़ा-खड़ा खाने लगा।

चारों ओर अच्छा-खासा धुँधलापन छाया था। निशिकांत के दिमाग़ में कल्पना का ववण्डर फिर उमड़ने लगा। सोचने लगा—"बच्चे को पत्थर से बाँधकर जमुना मे डाल दिया होगा .जल के जन्तु उसे खाने दौड़े होंगे ..वह मेरा बेटा था . मेरा अंग...मेरा स्वरूप...मेरे और सत्यभामा के प्रेम का साकार प्रतीक !"

शरीफ़ बोल उठा—"अरे, आप नहीं खा रहे हैं, बाबू जी !"

निशिकात चौंका—"मैं...!"

"हाँ, आप भी खाइये न ?"

"मेरे पेट मे जोर का दर्द है, शरीफ, मैं नहीं खा सकता।"

कहकर निशिकात वहाँ से हट गया। उसकी कल्पना कभी उसे अपने निष्पन्द, निष्प्राण, जमुना के तल में समाये बच्चे को देखने को विवश करती, जिसे खाने के लिये जीव-जन्तु दौड़ पड़े है, कभी मृत्यु-शय्या पर पड़ी सत्यभामा दिखाई पड़ती जो अपनी खाली आँखें खोले खोई-सी कुछ ढूँढने की व्यर्थ चेष्टा मे लगी है और इन कल्पनाओं में डूबा वह चौंक पड़ता जैसे कोई पूछ रहा हो—"बच्चा कैसा है ?"

तभी वह मुस्कराकर यंत्रवत् उत्तर देता—"बिलकुल ठीक है !"

सारे कम्पाउण्ड मे निशिकान्त के अतिरिक्त अब और कोई नहीं रहा था। उसने गम्भीर होकर अपने आप से कहा—'सत्यभामा को बचाने के लिये मेरे अन्दर इतनी तीव्र लालसा क्यों .क्यों मैं उसे मरने नहीं देना चाहता...क्यों मैं...?"

और फिर अपने-आप इस 'क्यों' का सम्भावित उत्तर सोचकर वह बड़े जोर से चिल्ला उठा—"नहीं-नहीं...!"

लेकिन उसकी वह नहीं भी 'क्यों' के सम्भावित उत्तर की सचाई से इनकार नहीं कर सकी।

आज का अभिनय

(मोहनसिंह सेंगर)

अधनंगे, अधभूखे और अधमरे कुरूप कंकालों को सम्बोधित कर जर्मनवर्गोमास्टर चिल्ला उठा—'समझ गए न, मै फिर दोहरा देना चाहता हूँ कि यह सारा हल्का फ़ौजीक्षेत्र घोषित किया जा चुका है। अगर अपना भला चाहते हो, तो एक घण्टे के अन्दर-अन्दर इसे खाली कर दो; वर्ना इसी के साथ जिन्दा दफना दिए जाओगे। समझे !'

और यह कहकर वर्गोमस्टर ने कठोर मुख-मुद्रा बना कर इस तरह अपनी बत्तीसी भींच ली, मानो यम के जबड़े अपना भक्ष्य पाकर जुड़ गए हों। फिर उसने एक खूनी दृष्टि, जिस में से घृणा, क्रोध और क्षोभ के शोले से निकल रहे थे, उन

निरीह, निरख, निःसहाय कंकालों पर डाली। सब के सब ऐसे गुम-सुम खड़े थे, मानो मिट्टी-पत्थर के पुतले हों। उनकी आँखें इतनी नीचे झुकी जा रही थीं, जैसे पृथ्वी की परतों को भेदती हुई पाताल में धँसी जा रही हों। अधिकांश के चेहरों पर आँखों की जगह सिर्फ पुतलियों पर चढ़ी पलके ही नजर आ रही थीं।

सहसा अपनी झुकी हुई गर्दन धीरे-धीरे ऊपर उठाते हुए एक बुढ़िया ने, जिस के होठों और आँखों मे उमड़े आँसुओं में मानों कँपकँपी की होड़ सी लग रही थी, डरते-डरते मुँह खोला—'पर हेर मास्टर, मैं कई दिनों से भूखी और बीमार हूँ। मेरे दोनों बच्चे मौत की घड़ियाँ गिन रहे हैं। भला एक घण्टे मे मैं कहां और कैसे.. '

बुढ़िया का वाक्य अभी पूरा भी न हो पाया था कि बर्गोमास्टर की बगल मे साँप की तरह कुण्डली मारे बैठा चाबुक निकला और सड़ाक से शब्द के साथ बुढ़िया के ललाट, नाक, बाएँ गाल, कन्धे और छाती के खुले हुए भाग पर एक नीली सी धारी खींचता हुआ फिर अपने स्थान पर लौट आया। सब के कन्धे और झुकी हुई गर्दनें इस तरह काँप गईं, मानो कोई भूडोल या बिजली का कड़ाका हुआ हो। एक हल्की-सी चीख बुढ़िया के दुर्बल कण्ठ से निकली और वह जहाँ खड़ी थी, वहीं ढेर हो गई।

उस क्षीण आह पर एक बड़े पर्वत-खण्ड की तरह

चकनाचूर होते हुए बर्गोमास्टर का उच्च स्वर फिर गूँज उठा—'ख़बरदार, अगर किसी ने ज़बान भी हिलाई तो। मेरा हुक्म आख़िरी हुक्म है। जर्मनों के हुक्म कभी सुधार-शंकाओं के लिए नहीं होते। वे पूरा आज्ञा पालन चाहते हैं—१०० फी सदी आँखें मूँदकर और ज़बान दाँतों के बीच मे दबाकर। समझे!'

उपस्थित व्यक्ति बेत की तरह एक बार फिर काँप उठे। फिर दाहिना हाथ ऊपर उठाकर बर्गोमास्टर चिल्लाया—'हाइल हिटलर!'

काँपते हुए कुछ हाथ ऊपर उठे, कुछ आधे उठे तथा जो कुछ नहीं उठे, वे उठने-लायक रह ही नही गए थे। धम्म-से बर्गोमास्टर पिछली सीट पर बैठ गया और धूल उड़ाती हुई मोटर वहाँ से चल पड़ी। एक साथ सब की आँखे मोटर के पीछे उड़ती हुई धूल की ओर उठीं और दूसरे ही क्षण सबके चेहरों पर एक दबी हुई सी मुस्कराहट खेल गई।

गिरी हुई बुढ़िया अपने कपड़े झाड़ती हुई कराहकर उठी और एक क्रूर मुस्कान के साथ व्यंगपूर्वक बोली—'वाह रे आर्यो की बहादुरी। पता नहीं, ये शैतान कब तक हमारे सिर-आँखों मे इस तरह धूल झोंकते और हमें सताते रहेंगे? न जाने कब तक हमे ये ज़ुल्म-ज्यादतियाँ सहनी होंगी?'

'जब तक लाल-सेना नहीं आ जाती!'—पास खड़े एक ८ वर्षीय बालक ने सहज भाव से कहा और इस तरह खिल-खिला कर हँस पड़ा, मानो शान्त वातावरण मे कोई झुनझुना

बज उठा हो ! आश्चर्य और प्रसन्नता से सबके चेहरे खिल उठे और एक साथ सब की आँखे बच्चे की ओर फिरी । पर यह क्या, बच्चे के हाथ मे एक नई पॅचनली पिस्तौल देखकर सबके सब अवाक्-अचम्भित रह गए। उसकी भूरी आँखों मे सन्तोष और प्रसन्नता खौलते हुए पानी की तरह उछल रहे थे। फटे-मैले चिथड़ों से ढॅका उसका स्वस्थ गौर शरीर ऐसा दिखाई पड़ रहा था, मानों संगमरमर की कोई सुघड़ मूर्ति जहाॅ-तहाॅ मैली हो गई हो। पिस्तौल को वह अपने छोटे-छोटे हाथों मे उछाल-उछाल कर इस तरह खेल रहा था, माना कोई खिलौना हो।

सब को आश्चर्य से अपनी ओर घूरता देखकर बच्चे ने स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ कहा—'तुम सब लोग क्या इस पर ताज्जुब कर रहे हो कि यह पिस्तौल मेरे पास कहाॅ से और कैसे आई ? भई वाह, क्या यह भी कोई अचरज की बात है ? जब बर्गोमास्टर खड़ा हुआ अपना हुक्म पढ़कर सुना रहा था, सब की तरह मै भी उसे ध्यान से सुन रहा था। सहसा मेरी नजर उसके पीछे, सीट के कोने मे, पड़ी हुई इस पिस्तौल पर गई और धीरे-धीरे आगे बढ़कर मैने इसे चुपके से उठा लिया। खेद है कि यह ख़ाली मिली, नही तो बुढ़िया पर कोड़ा फटकारने के पहले ही बर्गोमास्टर का खात्मा हो जाता।'

सब के सब बड़े जोर से ठहाका मारकर हॅस पड़े और एक साथ कई लोग बच्चे को चूमने के लिए दौड़े। जर्मनों का

अधिकार होने के बाद रूज्हिन के बचे-खुचे लोग शायद आज पहली बार दिल खोलकर हँसे थे।

— २ —

'सात बरस की इस छोकरी ने तो नाक में दम कर रखा है। कभी कहती है, सारा शहर जल रहा है। कभी कहती है, लाल-सेना आ गई। कभी कुछ कहती है, कभी कुछ। है तो सात बरस की; पर बाते ऐसी करती है, जैसे सत्तर साल की दादी हो।'—कहते हुए ईगोर यारत्सेफ ने एक लम्बी जँभाई ली।

अपने भग्नावशेष घर की दीवार के साथ पीठ के सहारे बैठे-बैठे उसने न मालूम कितने दिन और राते बिता दी हैं। आसपास का मलबा हटाकर उसने अपने और अपनी एकमात्र बची सात-वर्षीया कन्या अन्या के बैठने-लेटने के लिए ठाँव बना लिया है। उसके भरे पूरे परिवार मे यही दो प्राणी और उस सुन्दर-सुखद घरमें बस इतना ही स्थान उनके लिए बचा है।

'पापा, पापा, सुना तुमने ?'—कहती हुई अन्या दौड़कर आई और ईगोर की गोदमें बैठ गई। उसकी तेजीसे चलती हुई साँस से ईगोरने महसूस किया कि वह शायद काफी दूरसे दौड़ी आई है और इसीलिए हाँफ रही है।

अपने दोनों हाथ उसके चेहरे पर फेरते हुए ईगोरने कहा—'क्या सुना ? तुझे आज यह हो क्या रहा है री ? न रात-भर सोई, न कुछ खाया-पिया। यह क्या पागलपन सूझा हैं आज तुझे ?'

अपने सिर से ईगोर की ठोड़ी रगड़ते हुए अन्या ने कहा—'पागल मै नही, तुम हो गए हो। तुम बहरे तो हो नहीं, फिर सुनते क्यों नही ? आखिर मै अकेली ही तो नहीं सुन रही—सारा गॉव सुन कर प्रसन्नता से उछल-कूद रहा है।'

'अरे, पर बता भी तो सारा गॉव क्या सुन रहा है ?'

'लाल-सेना की तोपों का स्वर, उस के बमों का विस्फोट। देखते नहीं, उसके लड़ाकू हवाई-जहाज लुफ्टवाफे को टिड्डियों की तरह मार-मार कर भगा रहे है।'

'अच्छा, जरा चुप तो रह'—अन्या के मुँह पर अपना हाथ रखते हुए ईगोर ने कहा—'मै भी तो सुनूॅ कि आखिर कहॉ लाल सेना आ रही है।'

दोनों सॉस रोककर चुपचाप बैठ गये। दो-चार मिनट तक कुछ भी सुनाई नही दिया। फिर सहसा एक जोर का धड़ाका और उसके साथ ही गड़गड़ाहट का शब्द हुआ, मानो कोई घर गिरा हो या कोई लोहे का बड़ा युद्ध-यन्त्र फटा हो। ईगोर ने कसकर अन्या को अपनी छाती से चिपटा लिया। वह कुछ कहने ही जा रहा था कि दूसरा विस्फोट हुआ, फिर तीसरा, फिर चौथा और फिर तो जैसे विस्फोटों की झड़ी ही लग गई। चारों ओर से धड़ाम्-धड़ाम्, धड़-ड़-ड़...धम्म की आवाजे आने लगीं। लाल-सेना के हवाई बेड़े की परिचित आवाज कई महीनों बाद सहसा आज फिर सुनाई पड़ने लगी। फिर तो मोटरों, लारियों, ट्रकों, टैंकों और मोटर-साइकिलों की

सम्मिलित ध्वनि से जैसे वातावरण प्रतिध्वनित हो उठा।

ईगोर ने अन्याको और भी कसकर अपनी छाती से चिपटा लिया और उसके ललाट, सिर और कपोलों पर अधीर-असंयत चुम्बनों की छाप लगाता हुआ प्रसन्नता से पागल हो चीख उठा—'अन्या, मेरी प्यारी अन्यां, वे आ गए। हाँ, सचमुच आ गए। तू कितनी अच्छी बेटी है! तूने ठीक सुना था—ठीक ही सुना था।'

'पर मुझे छोड़ो भी। मुझे जाने दो। देखो, सब लोग दौड़-दौड़ कर उन के स्वागत के लिए हर्ष-ध्वनि करते हुए जा रहे हैं।'—पाँव पटकते हुए अन्याने कहा।

'तू अकेली जायगी, अन्या? मुझे अपने साथ नहीं ले चलेगी? पगली कहीं की। चल, मैं भी तेरे साथ चलता हूँ।' यह कह कर ईगोर यारत्सेफ उठा और अन्या के सिर पर हाथ रख कर उसके साथ-साथ चलने लगा।

क्रांति चिरंजीवी हो, लाल-सेना की जय हो तथा सोवियत् संघ ज़िन्दाबाद के नारों से आकाश गूञ्ज उठा। न-जाने कहाँ से, आज फिर सबके हाथों मे, घरों के छज्जों और खिड़कियों से, लाल झण्डे फहरा रहे थे। उन अधभूखे, अधनंगे और अधमरे कंकालों मे सहसा आज फिर नये जीवन का जोश और नये यौवन का ज़ोर आ गया था। उनके दुर्बल कण्ठ आज हर्ष-ध्वनि से पृथ्वी और आकाश को हिलाए डाल रहे थे। रूज्निह-वासियों की सम्मिलित हर्ष-ध्वनि मे ईगोर और अन्या की

पृथक् आवाज़ तो नहीं सुनाई पड़ रही थी, पर ईगोर के गले की फूली हुई नसों और म्रन्या के बैठे हुए गले से यह सहज ही अनुमान किया जा सकता था कि वे दोनों कितने चिल्लाए हैं।

गाँव की सीमा पर पहुँच कर लाल-सेना के घुड़सवार घोड़ों से उतर पड़े और दौड़-दौड़कर रूज्हिन वासियों से गले मिले। इस अगाऊ-टुकड़ी में अधिकांश लोग रूज्हिन के ही थे, जो आसानी से अपने चिरपरिचित रास्तों से रात के अँधेरे में भी इतनी सफलता-पूर्वक रूज्हिन पहुँच सके थे। कइयों को उनकी माताएँ मिलीं, कइयों को पत्नियाँ, बहनें, पुत्र-पुत्रियाँ, कुटुम्ब-परिजन आदि। आज नात्सियों की बर्बरता से कराहने वाले रूज्हिन ने जैसे नया जन्म ग्रहण किया हो। दौड़-दौड़ कर सब एक-दूसरे का अधिवादन-अभिनन्दन कर रहे थे।

गाँव में पहुँचते ही लाल-सेना तीन भागों में बँट गई। एक हिस्सा शत्रुओं और उनके किराए के कुत्तों की तलाश में चारों ओर गश्त करने लगा। दूसरा हिस्सा भूखे-नंगे नागरिकों को रोटी-कपड़े बाँटने लगा और तीसरा नात्सी-पैशाचिकता के शिकार हुए लोगों की मरहम-पट्टी की व्यवस्था करने लगा। इसके जिम्मे जहाँ-तहाँ पड़ी सड़ रही लाशों और तार तथा बिजली के खम्भों पर लटकी लाशों को दफनाना भी था। लाशों के बुरी तरह सड़ जाने और माँसल भागों के पक्षियों द्वारा खा लिए जाने से यह पहचानना असम्भव था कि वे किसकी हैं।

—३—

एक मोटर आकर ईगोर के घर के सामने रुकी। मून्या द्वार के चौखटे के पास खड़ी थी। मोटर में बैठे एक भद्र व्यक्ति ने मुस्कराकर उससे पूछा—'क्या ईगोर यारत्सेफ यहीं रहते हैं?'

मून्या ने स्वीकृति मे केवल अपना सिर हिला दिया और भागकर भीतर पहुँची। बोली—'पापा, तुम्हारा नाम क्या है? लो, मैं तो भूल ही गई!'

हाथ से टटोलकर मून्या को पकड़ने की चेष्टा करते हुए ईगोर ने कहा—'क्यों री, फिर तूने अपनी शरारत शुरू की न! देख, अब लाल-सेना आ पहुँची है। अगर ज्यादा शरारत की, तो...हाँ देख लेना फिर।'

'तो क्या करोगे, तवारिश? तवारिश ईगोर यारत्सेफ!'—कहते हुए आगन्तुक ने भीतर प्रवेश किया और ईगोर का दायाँ हाथ अपने हाथ मे लेकर जोर से झकझोरते हुए कहा—'मुझे पहचाना, तवारिश?'

ईगोर हक्का-बक्का रह गया। एक क्षण को मुँह फाड़े, भावहीन मुद्रा से, इस तरह आगन्तुक की ओर मुँह किए रहा, मानो अपनी दृष्टिहीन आँखों से उसे पहचानने की कोशिश कर रहा हो। दूसरे ही क्षण कुछ झिझकते हुए उसने कहा—'तुम जरासिमोव, लाल-सेना के सर्जन जरासिमोव तो नहीं हो? आवाज तो कुछ वैसी ही, परिचित और पहचानी-सी, मालूम देती है।'

'भई, खूब पहचाना तुम ने!'—हर्षोन्मत्त हो सर्जन जरासिमोव ने कहा—'लेकिन ज़रा यह तो बताओ कि तुम्हारा यह क्या हाल हो गया? हम लोग तो तुम्हे अस्पताल में छोड़ कर गए थे न।'

'हाँ, अपस्ताल में ही। उस के बाद जो-कुछ हुआ, वह लम्बी करुण-कहानी है। फिर कभी सुनाऊँगा। मेरी जेब मे अगर लाल-पुस्तिका न मिलती, तो जान भले ही चली जाती, पर आँखे शायद न जातीं।'

'तो क्या लाल-सेना के आदमी होने के कारण ही तुम्हारे साथ यह हृदयहीन व्यवहार किया गया?'

'हाँ। जर्मन-अफसर हम पर लात-घूसों और कोड़ों की बौछार करते, अपशब्द कह-कहकर हमारे चेहरों पर थूकते, नंगा करके हमे बुरी तरह पीटते और दाँत पीस-पीसकर कहते जाते थे कि स्लाव-जाति को वे समूल नष्ट कर देंगे और लाल सेना का तो नाम भी बाकी न रहने देंगे। हमे हफ्तों भूखों मारा गया, जाड़े मे नंगा रखा गया और बग़ल मे रस्से डालकर रात-रात भर छतों से लटकाए रखा। कँटीले तारों के घेरे में, खुली जगह, कीचड़ मे रगड़-रगड़ कर न-जाने कितने स्वस्थ-सबल साथी भूख और शीत से तड़प कर मर गए। वे सब बाते मत पूछो सर्जन, कलेजा मुँह को आ रहा है। ओफ़, वे दिन!'

'सब जगह से ऐसी ही, बल्कि इस से भी भयङ्कर और

रोमांचकारी बाते सुनता आ रहा हूँ, ईगोर। मै तो यही नहीं समझ पा रहा कि क्या ये लोग भी मनुष्य हैं। बचपन मे चंगेजखॉ, बाती, मामई आदि के रोमांचकर जुल्मों का वर्णन पढ़ा था, किन्तु इन के जुल्मों ने तो उन्हे भी फीका कर दिया है। पर हॉ भाई, यह तो बताओ, तुम्हारी ऑखें कैसे जाती रही ?'

'कहा न, वे लाल-सेना का नाम तक मिटा देना चाहते थे। हम जितने आदमी पकड़े गए थे, उन्हे उन्होंने घायल होने के बावजूद अस्पताल से न केवल निकाल ही दिया, बल्कि खाइयॉ खोदने और सड़कों का मलवा साफ करने को भी मजबूर किया। जिन घायलों ने भूख-प्यास सहकर सारे दिन श्रम करने मे असमर्थता दिखाई, उन्हे पहले बर्गोमास्टर के कोड़ों से और बाद में गोलियों से मारा गया। हम मे से कुछ से न केवल मार-पीट कर ही लाल-सेना के भेद पूछे गए, बल्कि लाल लोहे की शलाखों से शरीर के कई अंग—यहॉ तक कि कइयों के गुप्तांग भी—दागे गए, कइयों की ऑखें निकाल ली गईं, हाथ, पॉव, नाक, कान तो न-जाने कितनों के काट लिए गए। पिट कर बेहोश हो गिरने वालों के पेट चीर डाले गए। कई बेहोश हुओं को टैंकों और फौजी-ट्रकों से रौंद डाला गया। मेरा बायॉ कान आप को नजर आता है ? मेरे हाथों की ॲगुलियॉ ? और मेरा सीना भी तो जरा देखिए।'
यह कहकर ईगोर ने सीने पर से अपनी जीर्णशीर्ण कमीज

को हटा दिया।

सर्जन जरासिमोव की आँखें ईगोर की बाईं कनपटी की ओर गईं। उन्होंने देखा, बायाँ कान नदारद है! उस की जगह है सिर्फ कान का छिद्र। उस के हाथों की अँगुलियाँ भी इस तरह तिरछी कटी हुई हैं, मानों कोई गँड़ासा कच्ची बालोंको एक ही बार में साफ कर गया हो। उसके सीने पर पहुँच कर तो सर्जन की आँखे बरबस छलछला उठीं। गरम लोहे के दाग़ पीप से भर कर पकते-फैलते जा रहे थे। कुछ खड्डा बना कर ज़िन्दा चमड़ी में ही सूखने लगे थे। सर्जन ने जेब से रूमाल निकाल कर अपनी आँखे पोंछीं। आर्द्र-कण्ठ से कहा—'ईगोर, मेरे साथ अस्पताल चलो। अब और देर न करो।'

सर्जन के कन्धे का सहारा लेकर ईगोर यारत्सेफ उठा और पुकारा—'ग्रून्या, इधर आ। चल, तेरे भी कान कटवाता हूँ।'

बिना हाथों की ग्रून्या, बिना कुछ कहे-सुने, मुस्कराती हुई इस तरह आगे बढ़ आई, मानों कोई बिना पहिए की गाड़ी (खिलौना) लुढ़क आई हो! सर्जन ने एक जिज्ञासा-भरी दृष्टि उस पर डाली और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उस तथा ईगोर को लेकर मोटर की ओर बढ़ गए।

तीनों को लेकर जब मोटर अस्पताल की ओर चल पड़ी, तो सर्जन ने पूछा—'तवारिश ईगोर, तुमने सब-कुछ बताया, पर यह तो बताया ही नहीं कि ग्रून्या के हाथ कैसे काटे गए?'

'ओह, वह तो मैं भूल ही गया। जर्मन गुण्डे मेरे घर में

घुस कर अन्या की माँ के साथ बलात्कार कर रहे थे और वह बेचारी तड़प-कराहकर उनके फौलादी पंजे से छुटकारा पाने की विफल कोशिश कर रही थी, अन्या ने एक आततायी जर्मन सैनिक का मुँह नोच लिया। इस पर एकने उठा कर अन्या को जमीन पर दे मारा। दूसरा उसे गोली मारने जा ही रहा था कि एक सैनिक ने कहा—इसके दोनो हाथ काट कर छोड़ दो, ताकि यह जीवन-भर किसी जर्मन पर हाथ उठाने की सजा भुगतती रहे। रूसियों के लिये यह अच्छा सबक होगा ! इसके बाद तो अन्या सात जर्मनों के प्राण ले चुकी है। मुझसे तो यही अधिक बहादुर निकली !' यह कह कर ईगोर बड़े जोर से हँस पड़ा। सर्जन ने अन्या को चूम कर छाती से लगा लिया।

—४—

अभियुक्त को सम्बोधित करते हुए विचारपति ने कहा—'कप्तान जोहान मिलर, ईगोर यारत्सेफ का बयान तुम सुन चुके हो। तुम्हें कुछ कहना है ? तुम अपने अपराध स्वीकार करते हो ?'

'मै कह ही क्या सकता हूँ ?'—कप्तान मिलर ने चमकती हुई सजल आँखों से विचारपति की ओर मुखातिब होकर कहा—'१६०७ के चौथे हेग-कन्वेशन की ७वी धारा मुझे मालूम थी। उसके विपरीत युद्ध-बन्दियों पर जुल्म करने के मै खिलाफ भी था, पर अफसरों के कठोर आदेश के सामने लाचार था। मैं अपने अपराध स्वीकार करता हूँ।'

'और तुम कर्नल फिट्ज़ साकेल ?'—विचारपतिने पूछा।

'अपनी करनी पर मैं लज्जित हूँ, विचारपति !'—हतप्रभ होते हुए कर्नल साकेल ने कहा—'पर सच मानिए, नागरिकों को लूटने, सताने, उनका अङ्ग-भङ्ग करने, अनिवार्य श्रम के लिये स्वस्थ नागरिकों को जर्मनी भेजने, कम्यूनिस्टों को गोली से मारने या उनकी आँखे निकालने, गरम चाकू से उनके चेहरों पर पञ्चकोना सितारा या स्वस्तिका का चिह्न बनाने, उन्हे भूखों मारने और छोड़ने से पहले प्रत्येक स्थान को जला कर राख कर देने के जितने भी काम मैने किये है, वे सब ऊपर के हुक्मों के अनुसार। अपनी सफाई मे मैं ये सब हुक्म पेश करता हूँ।'

यह कह कर कर्नल साकेल ने फ़ाइलों का एक पुलिन्दा सरकारी वकील की मेज़ पर ले जाकर रख दिया।

'और बर्गोमास्टर विल्हेम बौक तुम्हें क्या कहना है ?'

'मैं तो अपना मुँह दिखाने लायक भी नही हूँ, कहूँ भला क्या ? मुझे रूसी मोर्चे पर यह कह कर भेजा गया था कि वहाँ अनाज के पहाड़ लगे हैं, शराब के तालाब भरे है और परियों को मात देने वाली रूसी छोकरियों की पल्टन की पल्टन मन बहलाने को है ! तुम जो चाहो, सो करना। खूब खुल कर खेलना। पर यहाँ आने पर मुझे काम यह सौंपा गया कि मै अफसरों के लिये रूसी छोकरियाँ जुटाऊँ। जो आने या जर्मन अफसरों को सुखी-सन्तुष्ट करने में आनाकानी करे, उन्हें या तो गोली से उड़ा दूँ या उनके नाक, कान, छातियाँ, हाथ,

पाँव आदि काट लूँ। नंगा करके उन्हें बेरहमी से पीटूँ, उनके बाल जला दूँ और उन्हे अन्धा करके हमेशा के लिये कुरूप तथा वेकार कर दूँ। आखिर मैं भी आदमी हूँ, इस स्वाधीनता ने मेरी पाशव वृत्तियों को भी उभारा और फलतः न मालूम कितनी मासूम और कमसिन लड़कियों, नर्सों, अध्यापिकाओं, सामूहिक खेतों की मजदूरनियों आदि के साथ मैंने जोर-जुल्म तथा वलात्कार किया! चाँदमारी के निशानों के लिये न मालूम कितनी माताओं की गोद से मुझे उनके मासूम बच्चों को छीनना पड़ा। पर मैं अपने अफसरों के कठोर आदेश के आगे लाचार था।'

'कार्पोरल रूथ, तुम्हें क्या कहना है?'

'मुझे तो सिर्फ यही कहना है कि मुझ पर जो अभियोग लगाए गए हैं, वे मेरे असली कारनामों का दशमांश भी नहीं हैं। अधिकृत-रूस के इस भाग मे शायद ही कोई ऐसा जुल्म हुआ हो, जिसमे मेरा हाथ न हो। मुझे आदेश था कि अधिकृत क्षेत्रों की लूट मे वैयक्तिक दिलचस्पी लेना हर जर्मन का फर्ज है, क्योंकि सरकार को केवल लोहे, पेट्रोल, अनाज, गरम कपड़े, फेल्टबूट, युद्ध-यन्त्र आदि की ही जरूरत है, बाकी जो जिसके हाथ मे पड़े, उसका। स्लाव-जाति और संस्कृति को समूल नष्ट कर देने के खयाल से यह भी कहा गया कि स्वस्थ-सवल स्त्री-पुरुषों को गुलामी के लिये जर्मनी भिजवाने मे मदद दूँ और शिक्षण-केन्द्रों, पुस्तकालयों, प्राचीन संग्रहों, क्लबों, कला-भवनों,

विश्वविद्यालयों तथा अन्य समस्त संस्कृति-केन्द्रों को नेस्तनाबूद करवा दूं।'

'उराज बुजाकरोफ, तुम्हें क्या कहना है?'

'महोदय, मैं उक्रेन का एक यहूदी बनिया हूँ। जर्मनों के सविशेष अत्याचारों के डर से मजबूरन मुझे गेस्टापो मे नौकरी करनी पड़ी। लाल-सेना के दो सैनिकों—कौल्या और वास्या—को मैंने ही पकड़वाया। कई कम्यूनिस्टों और गुरिल्लाओं की हत्या के लिए भी मैं ही जिम्मेदार हूँ। गेस्टापो के आदेश से ही कई गाँवों में जाकर मैं चिल्लाया कि लाल-सेना आ गई, लाल सेना आ गई, और जब नागरिक अपने छुपाए हुए अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़ आए, तो जर्मन मशीनगनों ने उन्हें खेत की मूली की तरह काट डाला। मेरे घर से जो सामान निकला है, वह सब रूज्हिन, सामवेक, बिल्की और सोरतावाला गाँवों की लूट का ही है।

'इनोकेन्ती गब्रारिलोविच, तुम्हें क्या कहना है?'

'मैं क्रासनादोरका एक यहूदी ड्राइवर हूँ। यह सच है कि जर्मनी से पलायन करने के बाद मैं आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया और हुंगरी में रहा तथा तीन बार फर्जी पासपोर्ट से सफर करने के कारण दंडित भी हुआ। जर्मनों के अत्याचारों के डर से ही मैंने उनकी नौकरी की और लाल-सेना के सब रास्ते उन्हें बताए। जर्मनों ने मेरे सामने यह घोषणा की कि उनके टैंकों को रोकने के लिये सड़कों के

बीचोंबीच जो खाइयाँ खोदी गई हैं, उन्हें वे रूसियों के शवों से पाटेंगे। यह भी सच है कि कर्नल क्राइस्टमैन के आदेश से गेस्टापो के गुर्गे अस्पताल के सब रूसी रोगियों और कई नागरिकों को 'डूशा-गूबका' नाम की हत्याकारी गाड़ियों मे भर-भर कर ले गए और गैस से मारे गए लोगों की लाशों से कई खाइयाँ पाटी गईं।'

'डूशा-गूबका के बारे मे तुम क्या जानते हो ?'

'जी, ये ५-७ टनकी गहरे भूरे रंगकी ट्रकें थीं, जिनके पीछे जस्ता-चढ़े टीन की दोहरी दीवारों का एक बहुत बड़ा डब्बा लगा था। पीछे एक ऐसा दरवाजा था, जिसे बन्द कर देने पर उसमे हवा नहीं आ-जा सकती थी। इस डब्बे के फर्श मे छोटे-छोटे सूराख वाली लोहे की कई नलियाँ लगी थीं, जिनका सम्बन्ध ट्रक के इंजन से निकलने वाले धुँए से था। इसी के 'कार्बन-मोनोओक्साइड' से डब्बे मे बोरों की तरह चिने गए घायलों, औरतों और बच्चों को मार डाला जाता था और उनकी लाशे खाइयों में डाल दी जाती थीं।'

'दिन-भर मे ये ट्रकें कितने चक्कर करती थीं ?'

'६ से ८ तक, या फिर जितने आदमी होते थे, उनकी आवश्यकतानुसार कम-ज्यादा भी।'

'इस मृत्यु-ट्रक से ईगोर यारत्सेफ के बच निकलने का हाल तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?'

'एक दिन अन्या अपने किसी साथी से कह रही थी कि

ईगोर ने ट्रक बन्द होते ही अपनी कमीज़ का एक हिस्सा फाड़ कर अपने पेशाब से भीला किया और उसे नाक तथा मुँह पर लगा लिया। इससे वह बेहोश होने से बच गया और जब अन्य सब लाशों के साथ उसे भी एक खाई मे फेंक दिया गया, तो रात को किसी तरह वह उसमे से निकल भागा। मैंने यह बात सुन ली और कर्नल साकेल को जा सुनाई। ईगोर को ज़िन्दा या मृत पकड़ने के लिये हम लोगों ने बहुत कोशिश की, पर उसका कुछ भी पता न चला।'

'अब अदालत बर्खास्त की जाती है'—फौजी विचारपति ने अपनी कुर्सी पर से उठते हुए घोषणा की—'अगली पेशी सोमवार को होगी।'

फिर तेज़ी से कदम बढ़ाते हुए वे ईगोर यारत्सेफ की ओर गए। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उन्होंने कहा—'तवारिश, मै हूँ कर्नल म्याकोवस्की, फौजी विचारपति, तुमने मुझे पहचाना ?'

'भला, तुम्हे नही पहचानूँगा, तवारिश म्याकोवस्की ?'—कह कर ईगोर ने ज़ोर से म्याकोवस्की के हाथ को झकझोरा।

ईगोर की कनपटियों को स्थिर दृष्टि से देखते हुए म्याकोवस्की ने कहा—'बायरन के 'प्रिज़नर ऑफ शिलन' मे पढ़ा था कि चिन्ता, यन्त्रणा और आघात से रातोंरात लोगों के बाल सफेद होजाते है। अब तक इस बात पर विश्वास नही होता था। आज २७ वर्षीय ईगोर के सफेद बाल देख कर

बायरन के कथन की यथार्थता पर विश्वास कर सका हूँ। अच्छा चलो, तुम्हे पहुँचा दूँ ?'

'अस्पताल'—ईगोर ने शान्तस्थिर स्वर में कहा और दोनों मोटर पर सवार होकर अस्पताल की ओर चल पड़े।

—५—

घरों के मलबों के बीच तख्ते बिछाकर बनाई गई रूज्हिन की जन नाट्यशाला शेक्सपीयर के 'मिड-समर-नाइट्स ड्रीम' के मंच की याद को ताजा कर देती थी। रूज्हिन-वासियों के चेहरों पर आज वही स्वाभाविक मुस्कराहट थी, जिसने ज़ार के जुल्मों से मुक्ति पाने पर एक दिन उनके चेहरों को चमकाया था। आज उन्हे जिन्दगी अधिक प्यारी और जवानी अधिक स्पृहणीय लग रही थी। अभिनय आज उनके जीवन की यथार्थता के अधिक निकट था और संगीत कानों को अधिक प्रिय। आज जैसे उन्हे इनके आनन्दोपभोग का नैतिक अधिकार मिला था।

पहले 'मस्काओ-आर्ट-थिएटर के प्रसिद्ध अभिनेता वाइसिली इवान काशालोव-लिखित "Wit Works Woe" (बुद्धि से शत्रु पर विजय) और "The Forest" (जंगल) के कुछ भाग खेले गए और बाद मे 'मैकबैथ' का चौथा अंक। उसके घृणा और जुल्मों के दृश्यों को दर्शकों ने जर्मन-अत्याचारों की याद ताजा होने से विशेष पसन्द किया।

अभिनय का आयोजन रूसी बच्चों के प्रसिद्ध 'तिमूर-

संघ' की ओर से किया गया था। उसकी समाप्ति के बाद संघ के नायक विक्टर सामोखिन ने कहा—'साथियो, हमारा आज का अभिनय इस बात का सबूत है कि हम मिटे नहीं हैं, मिटेंगे भी नहीं—दुनिया की कोई शक्ति हमे मिटा नही सकती, क्योंकि हम स्वतन्त्र हैं और ज़िन्दा रहने का हमे अधिकार है। मनुष्य ने अज्ञान पर, अन्धकार पर, अन्धविश्वास पर और प्रकृति पर विजय पाई है। उसने सागर बाँधे है, नदियों के प्रवाह बदल दिए है, हवाओं को अपनी चेरी बनाया है, पहाड़ों को नापा है। फिर क्या वह बर्बर नात्सियों के कुछ दलों के आगे हार मान लेगा ?'

संघ की मन्त्रिणी सोनिया मोनोवस्किना ने कहा— 'ईगोर की आँखें अब नही लौटेंगी, अन्या के हाथ भी नही लौटेंगे, पर टूटे हुए घर एक दिन फिर खड़े होकर हवा और धूप से खेलेंगे। मुरझाए हुए फूल पौधे फिर लहलहाएँगे। बच्चों की किलकारियों से फिर यहाँ का वातावरण संगीतमय हो उठेगा। राख और लाशों से ढँकी भूमि एक दिन फिर हरे-भरे खेतों से सुजला-सुफ़ला होगी। हमारे घाव एक दिन भर जायँगे, हमारी स्वाधीनता के लिए बलि हुए बन्धु-बान्धवों का वियोग भी एक दिन हम भूल जायँगे, पर लाशों से पटी खाइयाँ, स्त्री-बच्चों के दहन से काली हुई घरों की दीवारे, माँ-बहनों का अपमान और मासूम बच्चों की हत्याएँ, स्मृति की ख़ूनी थाती बनकर सदा हमे बर्बरता के विरुद्ध लड़ने को उद्यत एवं उत्तेजित करते रहेंगे।

ख़ून के लिए ख़ून, मौत के लिए मौत, यही हमारा नारा होगा !'

मञ्च के बीच में खड़ी होकर संघ की सँगीत-सञ्चालिका एलेक्जेन्द्रोवस्काया ने अन्तिम गान आरम्भ किया। खड़े होकर सब दर्शक उसके स्वर में स्वर मिला कर गाने लगे :—

सब मिल कर बोलो जय!
आज रूस की, आज विश्व की,
आज नई मानवता की जय!—सब०
अद्भुत आज क्रान्ति की यह जय,
अत्याचार-भ्रान्ति की यह क्षय!—सब०
सब मिल जीवन की बोलो जय,
मानव औ' स्वतन्त्रता की जय!—सब०
बिगड़े भवन हँसें फिर सुखमय,
उजड़े नगर बसें फिर निर्भय!—सब०

क्या से क्या

[बलभद्र दीक्षित]

(१)

प्यारेलाल और पियारा दोनों एक ही खाट पर सोये थे। चैत्र का कृष्णपक्ष था। हल्की गर्मी हो रही थी। आधी रात के स्यार बोल चुके थे। प्यारेलाल खर्राटे भरने लगे सोने के पहले उनको सुलाने के लिये कई प्रयत्न पियारा ने

किये। बार-बार जम्हाने लगी। आले में जलते चिराग़ की बत्ती दबा कर बहुत धीमी कर आई। पति की बातों का जवाब, ऊँघती-सी अस्पष्ट भाषा मे, अन्त मे सिर्फ 'हूँ' करके दे देती, उसका सिर प्यारेलाल के कन्धे पर था, शरीर सोया-सा शिथिल, परन्तु मन अपने आगे के मनसूबों की गिरहे बाँध-खोल रहा था।

चिराग़ का पूरा तेल जल गया। फिर बत्ती जलती-जलती पेंदी पर पहुँची। अन्त मे पछुवा हवा के सिर्फ एक हल्की साँस लेने से ही वह गुल हो गया। न ज्यादा धुवाँ, न गुबार। ठीक उस बुड्ढे आदमी की तरह, जिसके कुल दुनियावी अरमान निकल चुके है और मरण-शय्या की केवल एक ही हिचकी मे शान्त हो जाना चाहता है।

पियारा ने करवट ली, बाँये हाथ की चूड़ियाँ खनकाई, सिरवे पर छागल बजाये—सिर्फ यह देखने को कि प्यारेलाल सोते है या जागते। अपना सिर प्यारेलाल की बाँह से निकाल कर, उसे चुपके से उनके सीने पर रख दिया। चारों पैरों पर पड़ी हुई चादर मे फँसे पैर निकाले और ज़मीन पर खिसक आई। खाट 'चर्र' से बोली, लोटे पर रक्खा हुआ गिलास पैर लगने से झन्नाता हुआ लुढ़क गया।

प्यारेलाल के कुनमुनाने से थोड़ा ठिठकी। फिर पैरों को चापती अपनी कोठरी की ओर चली गई। पिछवाड़े की इमली पर उल्लू बोला। वसारे मे बँधी बकरी की पठिया ने

छींक मारा।

बङ्गले की बग़ल मे कुछ दूर पियारा के बाप बलई मिसिर सो रहे थे। सिर उठा कर पियारा को एक बार उन्होंने देखा। फिर अपनी पिछौरी सिर से पैर तक तान ली।

कोठरी मे आकर पियारा ने एक बार फिर देखा, प्यारेलाल ज़ोर से ख़र्राटे ले रहे थे। चिराग़ जलाकर अपनी कपड़ों की पिटारी खोली। आइना निकाल कर कंघी से बिगड़े बाल सॅवारे। मुँह मे इधर-उधर पान की पीक लग गई थी, एक कपड़ा भिगो कर उसे पोंछ दिया। लहँगा, ओढ़नी और सलूका निकाल कर पहने। सब भड़कीले, सस्ते सिल्क के थे। ओढ़नी का कपड़ा पतला था, इस लिए कि सलूके के स्तनों की पन्नी देखने वालों को आकर्षक और सुन्दर जॅचे। उसने पॉच-छः बीड़े पान लगा कर डिबिया मे रक्खे। एक खा लिया, ऊपर से थोड़ी तम्बाकू मुँह मे डाल ली। फिर उठकर धीरे से कोठरी की सॉकल चढ़ा दी। बाप की चारपाई के पास से होती एक बार फिर प्यारेलाल के सोने की पड़ताल करती, घर से बाहर हो गई।

बलई ने सिर उठा कर देखा। जब जान लिया कि पियारा चली गई, तो एक संतोष की सॉस लेकर करवट बदल ली। फिर हमेशा की तरह, सिरकटे मुर्ग़े से, तीन-चार बार तड़प कर निर्जीव हो गये।

पियारा जब कभी छबीले के पास जाती तो बलई की यही

कैफियत होती । जब तक वह चली नहीं जाती, जाने की राह देखा करते । जब चली जाती तो सिर पीट लेते । एक बार लोढ़ा मार लिया था जिससे मत्थे का जख्म कई महीने पकता-फूटता रहा ।

यहाँ उनकी बात नही कही जा रही है, जिन्हे खाने-पीने और रहने-सोने का कष्ट नहीं होता, रोज़-ब-रोज़ ईश्वर की की दयालुता के प्रति जिन की श्रद्धा बढ़ती जाती है । वे यदि चाहे तो शिष्टाचार की पवित्र ज़िन्दगी बसर कर सकते है । न उनसे कुछ कहना है, जो परम्परा से प्रचलित विकृत रूढ़ियों की चोटे खा-खा कर चेतनाशून्य हो गये है, और उन रूढ़ियों की रक्षा के लिये बग़ैर उफ किये जघन्यतम काम करने को सदा तैयार रहते है । दरअसल यह बात है उन लोगों की जो इन कृत्यों से ऊबकर सामाजिक नियमों मे तरमीम व तंसीख़ करना अपना कर्तव्य समझते है, पर नही कर पाते—जो समझते हुए मजबूरन् पाप करते है—जो चाहकर भी सच्चरित्र नही रह सकते—फाकाकशी मे या आबरूरेज़ी मे जिन्हे हिये और कपाल से प्रकाश खोजना पड़ता है—जिनके बच्चे व्यभिचारी होने को मजबूर है और किये जाते है—जिन का हृदय कट कर रो उठता है—जिनकी गहरी निश्वासों से यह भयानक तर्क उठता है कि ईश्वर है या नहीं, यदि है तो कहाँ, यदि नहीं तो कैसे ।

गाँव के पच्छिम गोमती की छड़ान (कछार) है,

चौड़ी कम, लम्बी ज्यादा। जमीन मजबूत होने की वजह से बसन्तपञ्चमी के क़रीब लोगों ने खरबूजे और तरबूज के बीज थाल्हों में छिटका दिये है। दो-एक खेत बबूल या बेर की टहनियों से रूँधे हैं। अभी फल नहीं आये, इसलिये उन्हें रखाने को रात में यहाँ कोई नहीं रहता। गाँव से तिरछी-तिरछी रेंगती हुई पगडण्डी घाट पर जाकर समाप्त हो गई है। वहाँ एक कंकड़ीली कगार पर फूस की झोँपड़ी है।

नदी के उस पार मरघटियों मे एक मुर्दा जल रहा था। दक्षिणी और पछुवा हवा के झोंकों मे जलती हुई चर्बी की बदबू भरी थी। बिखरे हुए बेर-बबूल के काँटों और हड्डी के टुकड़ों को रौंदती हुई पियारा घाट की ओर बढ़ रही थी।

इस टिपरा घाट के पूर्व तीन सौ गज नदी की धारा के उतार पर बुढ़हा घाट है। किनारे पर चार-पाँच गूलर और दो पाकर के पेड़ खड़े है। यही आकर सरायन मिली है। संगम में बड़ा तेज भँवर है। यहाँ एक लखूड़ मगर अपनी माठ बना कर रहता है। गाँव के लोग यहाँ दिन मे आते भी डरते हैं। फिर रात के सन्नाटे का तो कहना ही क्या है।

छबीले कभी-कभी यहाँ आकर रहता था। उसके साथी-सलाही, उस पार नटिनों के पुरवे से, तैर कर आ जाया करते थे। एक टूटी मठिया थी। चबूतरा अभी मजबूत था। इस वक्त भी छबीले अपने दो दोस्तों के साथ चरस का दम लगा रहा था। लम्बी चिलम, अठन्नी-भर चरस बिठाकर, तैयार की

गई थी। पियारा का इन्तज़ार था। प्यारेलाल की वजह से दो दिन खाली चले गये थे। लेकिन आज पियारा ने सिर की बाज़ी लगा कर ठीक मौके पर पहुँचने का वादा किया था।

दिन को नदी नहाने आकर पियारा बात पक्की कर गई थी।

(२)

सन्नाटे मे पियारा मौंपड़ी की ओर बढ़ रही थी। पैरों की आहट मालूम करके छबीले ने सीटी बजाई। पियारा समझ कर उधर ही मुड़ गई। छबीले के साथी धड़ाम-धड़ाम नदी मे कूद कर उस पार के अँधेरे मे समा गये।

छबीले के पास पहुँचते ही पियारा ने चरस की चिलम लेकर कस-कस कर तीन-चार बार दम लगाई। चिलम से छः अँगुल ऊँची लपट निकल उठी। एक छोटी डिबिया से कोई सफेद पाउडर-सा, चाकू के फल से निकाल कर, छबीले ने पियारा को चटाया। फिर उसी जूठे फल से थोड़ा और निकाल कर खुद चाट लिया। ज़रा देर दोनों मुँह बन्द किये रहे। फिर पियारा ने डिबिया से पान निकाले। एक खुद खा लिया और, एक अजीब अन्दाज़ से दूसरा छबीले के मुँह मे ठूँस दिया। डिबिया के एक कोने मे चूना था। क़रीब छः-छः मारो दोनों ने मुँह मे रख लिया। फिर साँप के गर्म जोड़े की मुद्रा में दोनों आपे से बाहर हो गये।

कृष्ण द्वादशी का चन्द्रमा गाँव के पूर्व आम के बाग़ से

झाँका। छबीले की गोद में सिर रखे पियारा ने उसको देखा। गहरे नशे से डँसे रहने पर भी पियारा ने लज्जा से छबीले की गोद मे अपना मुँह छिपा लिया।

पास ही सँभालू के दरख्तों मे कुछ खड़क हुई। फिर सूखी पत्तियाँ चरमराई। छबीले ने समझा, कोई कुत्ता है। थोड़ी ही दूर कमीनों के ढोर निकलने का स्थान था। इसलिए वहाँ कुत्तों का होना बेजा न था। छबीले के जोर से दुतकारने पर, कुत्ते के बजाय, कुलाँच मार कर प्यारेलाल सामने आ गये। गुस्से में पागल और गुर्राते हुए। उनकी लुँगी चढ़ी थी। सिर कपड़े में कस कर बाँधा था। एक हाथ मे बँकिया थी, एक मे चाकू, लाठी बग़ल के नीचे। तीन-चार आवारा लौंडे भी मुख़बिरी करते साथ थे। छबीले के डर से, सामने न आकर, इधर-उधर छपटिआये थे।

प्यारेलाल ने दाँत पीसकर पियारा को एक बेहूदा गाली दी। साँस उनकी फूल रही थी। कुछ उद्वेग और क्रोध के कारण और कुछ दमे के दौरे की वजह से। छबीले प्यारेलाल को सामने देख कर और भी गुस्ताख हुआ। प्यारेलाल की वहशत का ठिकाना न था। मरने-मारने को तैयार हो गये। पीकर चले थे। पियारा को भी सोने के वक्त पिलाया था। वह एक ओर सिमटी हुई, प्यारेलाल के काँपते हुए कमज़ोर हाथ में, बहुत तेज चाकू की फजीहत देख रही थी।

छबीले ने पियारा को अपनी ओर घसीट कर प्यारेलाल

से भाग जाने को कहा, लेकिन उन पर अब चांडाली सवार हो चुकी थी। छबीले के दाहने हाथ पर बॉके का वार कर दिया। छबीले बॉके, बिछुआ, बिन्नौट, बाना-बनैठी—इन सबं का उस्ताद था। बॉका प्यारेलाल के हाथ से छूटकर गूलर की जड़ मे जाकर लगा और वह खुद अपने ही जोर से बाज़ू के बल बालू में धँस गये। फौरन् फिर उठे। इस बार चाकू से पियारा की नाक काटने को झपटे। गाली पहले से भी जोरदार थी।

छबीले ने एक हाथ घसीट दिया। चाकू छूटकर प्यारेलाल के पैर मे चुभ गया। साथ ही दो लात और तीन-चार लप्पड़ भी रसीद किये। होश ठिकाने आ गये। छबीले अब अभुआ चुका था। प्यारेलाल की बानगी और देखता, लेकिन पियारा ने उसे अपनी कसम दिलाकर रोक दिया। फिर पियारा के साथ वह एक ओर चला गया।

प्यारेलाल की निगाह दूर तक दोनों का पीछा करती चली गई। फिर टइहल कुत्ती की तरह अपने आँखों के घर में आकर पड़ रही। प्यारेलाल ने आँखें बन्द कर ली। जीवन में पहली बार उनकी निगाह उनके जीवन पर पड़ी। बेइज्जती का कॉटा अंतरतम में खरक उठा। शरीर मे कोई खास चोट न आई थी, लेकिन दुर्बल आत्मा इस कदर घायल हो गई थी कि पागलों की तरह कई दफे उन्होंने अपना मुँह पीट लिया, पड़े-पड़े अपने सिर पर बालू उलीच ली। फिर ढह गये, जैसे अंतिम क्षणों की प्रतीक्षा कर रहे हों।

—३—

प्यारेलाल के साथ के लड़के छबीले की पहली ही तड़प मे रफूचक्कर हो गये थे। इस वक्त उन्हे कोई पानी तक देने वाला न था। चार-पॉच गीदड़ घेरा बनाकर बैठे थे, मगर चूॅकि अभी सॉस चल रही थी, इसलिए करीव नहीं आ रहे थे। कुछ देर वाद प्यारेलाल करवट लेकर ॲगड़ाये, फिर ऑखे खोल दीं। नदी के उस पार एक बबूल पर भुजंगा "ठाकुर जी ठाकुर जी" चिल्ला रहा था। वह उठ बैठे। उनके अब तक के हर साल, हर महीने और हर दिन के जीवन मे नशे के वाद व्यभिचार और व्यभिचार के बाद नशा हुआ करता था। सुवह वाग मे, दोपहर को दालान मे, शाम को कोठे मे, गर्ज़ कि किसी न किसी तरह, किसी न किसी मात्रा में, कहीं न कहीं होता जरूर था। शहर भर की गोरी, गन्दुमी और सॉवरियों का पता और हुलिया उनकी और उनके तमाशवीनों की जवान पर लिखा था। यन्त्र वनते, तावीज़ लिखे जाते, वशीकरणमन्त्र सिद्ध किये जाते, सिर्फ एक गिरे हुए मॉ-बाप की गिरी हुई लड़की को और गिराने के लिए। अमीर हो या ग़रीव, जौहर हर जगह हो सकता है। ऐसे टुकड़खोरों का आदमी न पहचान पाना कोई वड़ी वात नही। यदि हो जाते कहीं सती की आग के दर्शन तो दुम दबाकर भागते दिखाई देते। फिर घर पहुॅच कर उसके नाम पर एक खास किस्म का व्यभिचार करके मिथ्याचार करते। ऑखिर मे नशा खाकर ग़म गलत किया

जाता। बैंकों के ब्याज से, लेन-देन के फँसाव से और जाली प्रोनोट और दस्तावेजों की तहरीर से हजारों रुपये, केवल इसी ध्येय की पूर्ति के लिये पैदा किए जाते। शहर और मुहल्ले में सब कोई घी-पूत धराये थे। सब कोई सदाचार और ब्रह्मचर्य का मूल्य समझते थे। अपनी कमजोरियों को अपने बच्चों में न आने देने का शक्ति भर सब कोई प्रयत्न करते थे।

प्यारेलाल ने गोमती में जाकर मुँह-हाथ धोया। एक बार फिर वही कमजोरों का सा गुस्सा, बिना कुछ आगा-पीछा सोचे आया कि बाट की ओर चले और छबीले से अपमान का बदला ले। गूलर पर एक बन्दर बैठा था। प्यारेलाल की ओर देखकर उसने खीसे निपोर दीं। प्यारेलाल ने बीच धारा में एक डुबकी लगाई। भीगे कपड़े पहने, नदी का जल हाथ में उठाकर छबीले से बदला लेने की कसम खाई। फिर तैर कर नदी पार कर गये।

मिसिरपुर, अपने ससुराल वाले गाँव में, प्यारेलाल को मुँह दिखाने की हिम्मत न हुई। नंगे सिर, नंगे पैर, पागल की तरह आधी धोती ओढ़े, गलियों में दुबकते, अपने घर पहुँचे।

ड्राइंगरूम में एक आलमारी थी। उसमें कई क़िस्म की शराब गँजी पड़ी थी। छ पेटियाँ डन-क्रैगन ह्विस्की की थीं। ससुराल जाने के पहले एक दावत दी गई थी। तमाशबीन दो बजे तक डटे रहे थे। नाच हुआ था, भाँड़ भी आये थे। एक नौची की नथ प्यारेलाल ने उतारी थी। कमरा बिना साफ़ किये

ही बन्द कर दिया गया था। इसमें और बग़ल के खाने के कमरे में भभक और दुर्गन्ध भरी पड़ी थी। प्यारेलाल ने दरवाज़ा खोला। बड़ी बदबू आ रही थी। फिर भी अपना किया देखने के लिये अन्दर घुस पड़े। जहाँ रंडियाँ नाची थी, चारों ओर के फर्श, कालीन, गाव-तकिये और किसी-किसी गिरदे पर पित्त से भरी शराब पीकर की हुई पीली-पीली क़ै पड़ी थी। एक सफ़ेद चाँदनी पर टोमैटो की चटनी का भरा हुआ शीशे का जार टूट गया था।

नशे की तीसरी अवस्था के पहले खोली हुई शराब की बोतले कुछ खाली, कुछ भरी, तीन-चार सोडावाटर की बोतलों के ऊपर लुढ़की पड़ी थी। बीच कमरे की गोल संगमरमर की मेज़ पर एक नगी वेनिस की औरत की स्टैच्यू थी। किसी तमाशबीन ने उसे अपनी दुपल्ली ज़रदोज़ी की टोपी पहना दी थी। वह अब भी आधा मुँह ढके खड़ी थी! बड़ा पीकदान जाजिम के ऊपर औंध गया था, जैसे वकारा काट दिया हो। दो जनानी शलवारे तबदील की हुई पड़ी थीं। एक इजारबन्द मे दो मसकी हुई चोलियाँ बाँध कर, प्रमाद की हालत मे लैप स्टैंड के ऊपर किसी ने कुछ तमाशा बनाया था।

प्यारेलाल खाने के कमरे मे घुसे। यहाँ की हालत और भी अजीब थी। मेज़ों पर कुर्सियाँ, कुर्सियों पर मेज़े, फूलदानों पर जूते और जूतों पर गुलदस्ते रख-रख कर शराबियों ने अपने दिल के अरमान निकाले थे। कुल्ली करने के ताश, चिलमचियाँ,

तश्तरी और रकाबियाँ जूठन मे सनी इधर-उधर तितर-बितर पड़ी थी। खाना ज़्यादातर हिन्दोस्तानी था, लेकिन नक़ल अँगरेज़ी डिनर की की गई थी। छुरी और काँटे बिना इस्तेमाल किये हुए पड़े थे। लोगों ने हाथों से नोच-नोच कर खाया था। चिड़ियों की हड्डियाँ, मछलियों की पसलियाँ और काँटे, गूदा निकालने के लिये तोड़ी हुई पोंगियाँ, मेज़पोशों और फ़र्श पर गिरी पड़ी थीं। तीन-चार जगह ख़शी के पुट्ठे इतने बड़े थे कि बछड़े के से जान पड़ रहे थे। दावत की शाम को प्यारेलाल के कुछ शिकारी दोस्त, एक बहुत बड़ा गोन (बारहसिंगा) नेपाल तराई से मार कर लाये थे। छोटे मोटे बधिया बैल-सा था। कुल्हाड़ियों से काट-काट कर बावर्चियों ने उसकी लाश पर क़ाबू किया था। प्यारेलाल नंगे पैर थे। उनके पैर में एक हड्डी चुभ गई। उसे निकाल कर बाहर निकले।

बावर्चीख़ाने की बग़ल के गोदाम मे दो ज़िन्दा बकरे बँधे मिले, जो इस्तेमाल न हो सके थे। प्यारेलाल और ताला लगाने वाला नौकर दोनों नशे की हालत मे थे। बकरे वही बँधे रह गये। एक ढाबली मे कुछ बटेरे बिना दाना-पानी के मर गई थी। इस वक़्त उन्हे बिमते और चींटे चाट रहे थे। बकरों मे एक अभी मरा था। दूसरा प्यारेलाल को देख कर मिमिआया। वह घबरा कर पानी लाये। तजुर्बा था नहीं। भरा ताश सामने रख दिया। उसने कसकर पी लिया और ढेर हो गया। प्यारेलाल बकरे को आँखे उलटते न देख सके। बाहर

भाग आये।

कई रोज़ तक प्यारेलाल घर की हवेली से बाहर नहीं निकले। एक-दो खास नौकरों को छोड़ कर किसी को अन्दर आने की इजाज़त न थी। बाहर दफ्तर का काम हमेशा बड़े मुनीम जी करते थे। अब भी कर रहे थे।

प्यारेलाल उच्च कुल के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। शाही ज़माने से इस घर का लेन-देन का व्यवसाय मशहूर था। शहर के सेठ लोग रोज़गार के मामले मे इस घर से कभी बाज़ी न मार सके। नवाबी में इनके परदादे बरदी रखने वाले बनजारों को, जो ऊँट की खाल के कुप्पों मे घी भरते थे और सोने की सिलों में भुगतान करते थे, भरती (लागत) उधार देते थे। प्यारेलाल के बाप रेलवे के बहुत बड़े ठेकेदार थे। उन्होंने अपनी ज़िन्दगी मे प्यारेलाल को अफसरान से इतना मिला-जुला दिया कि रेलवे से घर का सा मामला रहा करता था। डाली की सजावट इनका पुश्तैनी हुनर था। पढ़े-लिखों और धनिकों में प्यारेलाल की साख मानी जाती थी। ऊँच-नीच की भावना और विश्वासप्रथा क़ायम करने मे इनके पुरखों का बहुत बड़ा हाथ था। इनके दादा के परदादा के आजा उस वक्त कन्नौज के राजा के यहाँ दीवान थे।

शहर के बाहर एक बाग़ था। प्यारेलाल यहीं रहने लगे। आदमी बहुत-सी कमज़ोरियाँ छोड़ देता है, सिर्फ एक नई कमज़ोरी को पकड़ने के लिए। प्यारेलाल भी मिट्टी से सोना

हो रहे थे, छबीले से बदला लेने के लिए। वह अपने कस और बल की जॉच करते और जब अपने हिसाब से अपने को छबीले से कम पाते तो फिर साधना मे मग्न हो जाते।

(४)

पियारा ब्याह मे ससुराल न गई थी। गौने मे बिदा होकर बह प्यारेलाल के घर गई, लेकिन पन्द्रह दिन मे ही फिर मिसिरपुर आ गई। इसकी वजह थी—'कुछ कानी चर्खी, कुछ गीली कपास।' न प्यारेलाल वहॉ उसे रखना चाहते थे, न खुद ही वह वहॉ रहना चाहती थी। उन दिनों पियारा चौदहवे साल मे चल रही थी। किशोरपन दूर हो रहा था। वह भरी हुई गाय की कलोर-सी थी, जो बछड़ों को दूर से ही देखकर भड़-भड़ाने लगती है। वह घबराकर घंटों इकली बैठना चाहती। किसी से कुछ कहने की हिम्मत न होती, न बोलने को जी चाहता।

प्यारेलाल कच्ची उमर मे स्कूल से ही आवारा हो चुके थे। इस वक्त तो अपनी पूरी जवानी मे थे। जब पियारा से पहली बार मिले, मुँह से शराब की बदबू और हाथ से सिगरेट की हीक आ रही थी। पियारा जब मिसिरपुर मे थी, नित अक्षत और जल चढ़ाकर शंकर महादेव की पूजा किया करती थी कि तमाम कुलीन और उच्चाभिलाषिणी लड़कियों की तरह उसे भी सुन्दर-से-सुन्दर घर और वर मिले। लेकिन पियारा की निगाह मे जो सबसे पहला बेहया आदमी आया, वह उसका

पति प्यारेलाल था। पियारा के नागिन-जैसे फन मे सब से पहला धक्का यहीं लगा।

दो महीने के साथ मे पियारा प्यारेलाल की हरकतों से आजिज़ आ गई। अंत में अपने मायके मिसिरपुर जाते वक्त वह पीली-पीली छः महीने की बीमार-सी जँचती थी। घृणा का उद्रेक तो उसे तब हुआ, जब वह दो साल मिसिरपुर रहकर, कुछ तो अपने हाथ और बहुत कुछ अपनी भावज से सीख-समझकर, प्यारेलाल-जैसे मर्द की औरत बनकर उसके घर आई। पहली दफे प्यारेलाल के साथ ग़ैर औरत को मौके-बे-मौके देखकर वह जलने लगती थी। लेकिन अब उसने ऐसी औरतें पाल रक्खी थीं, जो उसके इशारे पर प्यारेलाल को नरक तक घसीट ले जाने का दम रखती थीं। प्यारेलाल इस बार कहते थे कि उनके घर म अब पहले से बहुत समझदार हो गई है। अब वह काले साँप की तरह विषपूर्ण, प्यारेलाख के सामने, 'मउहर'-सी बजने लगती। उसका एक-एक अंदाज़ बाँकपन से भरा था। इधर-से-उधर और आगे से पीछे झूमते हुए प्यारेलाल ने जिस दिन पहले-पहल अपने जूठे पैमाने से पियारा को शराब पिलाई, वह नाक के सुरों से कह रहे थे, उस समय उसकी एक-एक अदा लाख-लाख रुपये की थी। अब वह प्यारेलाल की साक़ी बनने के क़ाबिल हो गई थी।

सिर्फ़ पंद्रह दिन मे ही पियारा ने प्यारेलाल को अपनी मुट्ठी में कर लिया। यारों के बहुत उखाड़ने पर भी उसने अपने

पैर ऐसे जमाये कि थोड़े ही दिनों में लोग घर की मालकिन का लोहा मान गये। जो नहीं माने, प्यारेलाल को घुमा-फिराकर उनसे ऐसा खिलाफ़ किया कि भागते ही बन पड़ा। आने के साथ ही पियारा ने थोड़े दिन तक कुंजी-ताली, रुपया-पैसा, कागज़-पत्तर घर मे ऐसे रखना शुरू किया कि देखने वाले उसकी क़ाबिलियत पर दंग रह गये। लेकिन फिर, जिस तरह घरौंदे को पूरा करते-करते बच्चों में अपने हाथ ही से उसे बिगाड़ देने की प्रकृति जाग उठती है, वही हाल उसका भी होने लगा। वह यह सब कुछ सिर्फ़ प्यारेलाल को अपने वश में रखने के के लिए कर रही थी। उसके अन्दर एक अतृप्ति थी, जो उसे हर समय और हर काम मे बेचैन बनाये रहती थी। खाने-पीने, हँसने-बोलने और कपड़े पहनने मे भी उसे कभी आसूदगी न होती थी। मिठाई खाती तो खाती ही चली जाती। मिर्चे उस वक़्त छोड़ती जब आँख, नाक और मुँह से आग-जैसी निकलने लगती। जो बहुत सुन्दर सारी होती, बदलते वक़्त उसमें या तो सूराख़ कर देती अथवा पान की पीक और रोशनाई से उसे बर्बाद कर देती। सुन्दर फूल की ओर वह इतना देखती कि थक जाती। फिर लोगों की आँख बचाकर उसे मरोड़कर मसल देती।

पियारा को प्यारेलाल से आंतरिक घृणा हो गई थी। जब वह अपने से असंतुष्ट होती तो विचार करती कि प्यारेलाल ने ही उसकी यह गत बनाई है। उस समय उसे अपनी सोहाग

रात की याद आ जाती। प्यारेलाल के अनाचार से कचे तोड़े हुए उसके अंग जैसे फिर दर्द करने लगते। पति को देखते ही पियारा का जी होता कि उसे विनष्ट करके फिर न जाने कहाँ खुद भी वह अपने को मिटा दे। वह प्यारेलाल को ही क्या, आदमी के बच्चे भर को तरसा-तरसाकर मारना और अन्त में खुद भी तरस-तरसकर मरना चाहती थी।

—५—

पियारा ससुराल से मायके चली आई। उसका गाँव मिसिरपुर किसी समय मिसिरों की ही जमींदारी मे था। अब क़सबा बाड़ी के पठानों की मिल्कियत है। बलई मिसिर (पियारा के पिता) के एक बाबा को यह गाँव पाठकों से दहेज मे मिला था। इनका खानदान एक अरसे से बड़ा शौकीन गिना जाता था। घर की औरतें बाहर पानी भरने न निकलतीं थीं। बलई मिसिर के एक चाचा को गाँव-जवार के लोग लखनऊ के नवाब कहा करते थे, कोई-कोई योगिराज भी कहते थे। जब गाँव-भर के लोग सो जाते, तब वह जागते और जब सब जागते, तब उनका आराम शुरू होता। चार बजे सुबह रात का भोजन होता। जमीदारी और अमीरी बहुत दिन तक चली, लेकिन उसके बिगड़ने और ग़रीबी के आने में भी बहुत दिन न लगे। दिन चले तो फिर चलते ही गये। पियारा के ब्याह के दिनों में रही-सही जमीन भी गिरवी हो गई। यद्यपि घर में खाने और खर्चने वाले ज्यादा न रहे थे—पूत, पतोहू, पियारा और मिसिर

जी खुद—फिर भी कुछ पूरा न पड़ता। चार-छः महीने में सब पुरानी अञ्जी-बञ्जी साफ हो गई। मिसिरवंश ने कमा-कर खाना सीखा ही न था। छोटे मिसिर (पियारा के भाई) पठित मूर्ख थे। जब दिन अच्छे थे, उनके चचा ने जिला सीतापुर की गुमानीगंज की चौखट से, जो देहात में संस्कृत व्याकरण-शिक्षा का केंद्र मानी जाती है, उन्हे लघुकौमुदी का पंडित कराया था। लेकिन शुष्क व्याकरण घोखने के बजाय वह एक साहित्यरसज्ञ निकले। श्रीमद्भागवत का अध्ययन उन्होंने स्वयं किया, अतः टीका भी मनमानी ही की। दशमस्कन्ध के शृंगार रस मे डूब कर छोटे मिसिर बह निकले। दिन में कोठरी बन्द किये गोपियों के सुन्दरतम चित्रों से बातें किया करते। श्री जयदेव के गीतगोविंद के कृष्ण से तो उन्हें डाह-सी होने लगती। उनकी स्त्री अपने बाप के तीसरे ब्याह की चौथी लड़की थी। कुछ पढ़ी भी थी। सारंगा-सदावृक्ष और तोता-मैना के किस्से जबानी शुरू होते। भाई खुद पढ़े थे और इसे पढ़ाया था। छोटे मिसिर अपनी स्त्री को गोपी बनाते, स्वयं श्याम सुन्दर बनते। कवि थे ही, कभी उस की आँखों को आम की फाँकें बतलाते तो कभी चिबुकाधर को किसी अनूठी उपमा पर तोल कर लाल कर देते। जब तक खाने को अन्न और शरीर मे रक्त रहा, यह विलास-लीला दिन दूनी रातचौगुनी चलती रही।

वह पियारा के ब्याह का साल था, जब छोटे मिसिर

को अपनी स्त्री क्या, चित्र की गोपियों से भी नफरत हो चुकी थी। साहित्य और दशमस्कंध का पाठ बन्द हो गया था। जिस दिन घर में पहला फ़ाक़ा हुआ, छोटे मिसिर इधर कहीं, उत्तर मे भाँभर की ओर, भाग कर भीख मॉगने लगे।

बलई मिसिर भी कुछ 'त' 'म' कर लेते थे, पर इतना नही कि कुछ पढ़-लिख सकते। इन के बचपन मे तुलसीकृत रामायण की कोई खास प्रति घर में थी। उसके क्षेपक मे श्रीराम-जानकी का विवाहोत्सव बड़े रोचक ढंग से लिखा गया था। बलई मिसिर के एक चचाजाद भाई रामायण के उस अंश को रोज़ नियमित रूप से पढ़कर प्रेमाश्रु बहाया करते थे। बलई को अपने किशोरपन मे रामायण मे वर्णित सलहज और सालियों का राम से खुला हुआ मज़ाक़ बड़ा प्यारा लगता था। इस कारण कथा का वह अंश कंठ हो गया था। जब तङ्गदस्ती बढ़ी, तब बलई को जीविकोपार्जन की एक युक्ति सूझी। वह बहुत तड़के नदी में नहाकर टीका-चन्दन कर लेते। पास-पड़ोस के पुरवा से निकल जाते। वहाँ दुपहरी काटते वक़्त लोगों को रामायण सुनाते। पुस्तक सामने रेहल पर रख लेते और जहाँ तक हो सकता खूब गा-गा कर ध्यानमग्न भक्तगणों को सुनाते। यह दिखाने को कि पुस्तक से कथा पढ़ रहे है, वह थोड़ी-थोड़ी देर मे पन्ना भी उलटते जाते।

इस व्यवसाय से कई महीने तक बलई के कुटुम्ब का खाना-पीना और लोन-तम्बाकू चलता गया। जब पैसा था, घर

भर पान में बना हुआ ज़र्दा-तम्बाकू खाते थे। जब डली-कत्था लाने की भी ताब न रही तो चूना और सस्ता तम्बाकू मीज-कर औरत-मर्द दिन-भर फाँका करते। परन्तु बुरे दिनों ने बलई को यहीं से न छोड़ा। छोटे मिसिर एक दिन क़सबे के क़स्साब से नीलगाय का गोश्त ले आए। घर में हिरन का बता दिया। गोश्त पकाया गया और खाया भी गया। अन्त में बात खुल गई। पठानों को क्या गरज़ कि वे नीलगाय के गोश्त को बकरे या हिरन का बतलाते। इस दिन से बलई मिसिर का लोटा बन्द हो गया। कथा बाँचने का व्यवसाय भी समाप्त हुआ और सब के सब भूखों मरने लगे।

जिस दिन पहले-पहल पियारा छबीले की ओर खिंची, उस दिन का अजीब और पुरदर्द किस्सा है। वह महुआ बीनने गई थी, जिन्हें खा-खा कर चार दिन से घर के तीनों प्राणी पानी पी रहे थे। अस्ताचल की ओर जाने वाला चैती का पूरा चाँद गाँव के एक छप्पर पर अटक-सा रहा था। पियारा ने महुए बीनकर कॉछ में भर लिये थे। फिर जड़ पर बैठ कर, थकी-सी, कुछ सोच रही थी।

छोटे मिसिर घर छोड़ कर भाग चुके थे। लोटा बन्द हो गया था। बलई दिन भर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते थे। पठानों का कर्ज़ा खाया गया था, इस लिये दो तगादगीर घर घेरे बैठे थे। छबीले के पैग़ाम पर पैग़ाम आ रहे थे। घर का सारा कर्ज़ अदा और सब के खाने-पहनने का इन्तजाम

कर देने को कहता था। पियारा की भावज एक अहीरिन के साथ बैठ कर पवित्रता और पतिपरायणता का मखौल उड़ाया करती—पियारा की कोमल स्त्रियोचित भावनाओं को उखाड़ फेंकने के लिए।

(६)

बलई मिसिर ने एक बार फिर मूछें चिकनाई। धोती और मिरजई चुन कर पहनने लगे। पठानों का कर्ज़ा अदा कर दिया गया। गाँव-भर में उनका मुँह उजला हो गया। टूटे खँडहर घर की एक बार फिर लेसपोत हुई। अफीम का मजा दुगना करने के लिए एक गाय खरीद ली गई।

पियारा अब बड़ी शौक़ीन हो गई थी। प्यारेलाल के छबीले के हाथ पिटने के बाद जैसे हया का बाँध टूट गया था। यह छबीले के अच्छे दिन थे। घाट के ठेके से आमदनी तो बँधी-टकी थी, जिले के डाकुओं मे उसकी धाक अलबत्ता थी। लोगों से उसने चौथ वसूल करना शुरू किया। जङ्गल मे मङ्गल हुआ करता। अन्धेरी रातों का जलसा लोग डरते-डरते देखते और खुश होते। वे नटिनें और बेड़िने, जिनके मुँह से पान और पैर से जूती कभी न निकलती, छबीले का नाम सुन कर सूखती। तालू और मुँह का मोह छोड़ कर नँगे पैर धूल मे नाचने दौड़ती। जुए की फड़ पर वह छिन-भर मे सैकड़ों रुपया दान कर देता था। देहाती पण्डित उसे जीतने का मुहूर्त बतलाते और सफलता के लिये "बगलामुखी" का अनुष्ठान

करके अपनी जीविका जुटाते। दूर की न सोच पाने वाले लोग उसे बिना राज-पाट का राजा कह कर अपना उल्लू सीधा करते।

मिसिरपुर के पठान ज़मींदारों को पियारा और छबीले का रवैया अच्छा न लगता था। चौहद्दी में बलई मिसिर की शहर में ब्याही लड़की मशहूर हो गई। कभी कभी भोले किसानों के नौजवान लड़के भी उसके साथ बेकायदा उठते-बैठते देखे गये। पूरी जवार छबीले के ख़िलाफ़ हो गई। दूसरे साल, कोशिश करके, लोगों ने उसे घाट का ठेका न लेने दिया। एक डाके में चालान कराके जवार के तेज़ लोगों ने, उसका बहुत-सा रुपया बरबाद करा दिया। पुलिस की तेज़ निगरानी और गाँव वालों के विरोध से छबीले की ऊपरी आमदनी बन्द हो गई। दूसरे साल के अन्त तक वह करीब-करीब मुफ़लिस हो गया। पियारा और बलई के साथ किसी तरह निर्वाह करता जाता था।

जब दिन फिर से पतले पड़ने लगे, तब एक रात छोटे मिसिर की स्त्री, पियारा की ले भागने वाली चीज़ें लेकर, एक अहीर के साथ बम्बई भाग गई। बलई को क्षणिकोन्माद हो गया। एक दिन सुबह तालाब में डूब कर उन्होंने जान दे दी। छबीले और पियारा की हालत जब बद से बदतर हो गई तो एक दिन गाँव वालों ने उन्हें गाँव से निकल जाने के लिए मजबूर कर दिया। घाट के करीब एक झोंपड़ा डाल दिया गया। वहीं

दोनों रहने लगे।

\+ + +

प्यारेलाल अपनी साधना मे लीन थे। जब अपनी समझ से छबीले को पछाड़ लेने योग्य बन चुके, तब एक बरसात की अँधेरी रात में छुरा लेकर घर से निकले। रातों-रात शहर से चल कर वह गोमती के किनारे पहुँचे और बुढ़हा घाट के पास नदी पार की। चलते-चलते वह अचानक ठिठक गये। यह वह जगह थी, जहाँ छबीले ने उनकी दुर्गति की थी। खून दूने जोश से खौलने लगा। वह आगे बढ़े कि हवा को चीरती हुई कहीं से तेज कराहने की आवाज उन्हे सुनाई दी। वह आगे बढ़ना चाहते थे, लेकिन वह आवाज, अजीब दर्द से भरी हुई, सन्नाटे को भेद कर, बार-बार उन तक पहुँचने लगी। वह अटकल से उसी ओर चले। वह आवाज उन्हे एक झोंपड़े के पास तक खींच लाई और फिर एक दम स्पष्ट और दारुण होकर, एकाएक बन्द हो गई। झोंपड़ी के फड़के को लात मार कर बौछार की तरह वह भीतर दाखिल हो गये। मिट्टी के तेल की डिबिया के प्रकाश मे उन्होंने देखा, एक ओर पियारा वेहोश पड़ी है। खून और मांस के लोथड़ों के बीच एक नव-जात शिशु झोंपड़ी मे अकेला पड़ा शब्द कर रहा था। एक ओर किसी चीज की भयानक दुर्गन्ध उठ रही थी। बावी के आवलों से छबीले का बदन तिल-तिल सड़ कर बह रहा था।

स्तब्ध प्यारेलाल ने क्षण-भर यह दृश्य देखा, फिर घृणा

से एक ओर छुरा फेंक कर सोचने लगे आदमियत के नाते अब उन्हें क्या करना चाहिए!

चमेली

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

उतरता बैसाख। खलिहान में गेहूँ, जव, चना, सरसों मटर और अरहर की रासें लगी हुई हैं। गाँव के लोग मड़नी कर रहे हैं। कोई-कोई किसान, चमार-चमारिन की मदद से माड़ी हुई रास ओसा रहे हैं। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है। शाम पाँच का वक्त। सूरज इस दुनिया से मुँह फेरने को है। एक जगह, घने आम के पेड़ के नीचे, सब जगहों से ज्यादा लॉक रक्खी है। एक रास भी, माड़ी लगी हुई, एक अच्छा पलंग और एक चारपाई, चारपाई पर लट्ठ रक्खे एक सिपाही। बख्तावर सिंह थैली से तैयार किया रक्खा दोहरा निकाल रहा है। पलंग पर पटवारी, लाला शहनाई लाल श्रीवास्तव खेतों की पैदावार लिख रहे हैं, बहुत कुछ अन्दाजन।

देखने पर मालूम देता है, यह जमींदार का खलिहान है। जमींदार के खलिहान की बग़ल में पटवारी के खेत की लॉक लगी है। जमींदार ने तीन बीघे का एक खेत पटवारी को दिया है। गाँव वाले जानते हैं—क्यों दिया है। फिर भी लाला शहनाई लाल सौ से ज्यादा दफ़े, जब गाँव आते हैं,

रास्ता चलते गाँव वालों को बुलाकर कहते हैं—"किसानों के अच्छे खेत से बीघा पीछे दो रुपये ज्यादा लगान उनके खेत पर लगाया गया है। "पुलिस और जमींदार अपने बाप को भी नहीं छोड़ते।"

लाला शहनाई लाल पैदावार लिखते हुए रह-रह कर, अपने खेत की लॉक देख लेते हैं, सन्तोष की साँस छोड़कर फिर लिखने लगते हैं। सुखलाल अपने गधे से समझौते की बात-चीत करता हुआ बग़ल के गलियारे से निकल गया। पुरवा की अदालत से लौटने वाले लोग, कन्धे पर अघारी डाले, एक के बाद दूसरे, चले गए, गम्भीर भाव से कुछ मनन करते हुए। लॉक की तरफ लपकते हुए भैंसे को भीखू चमार का नाती खेद ले गया।

सूरज डूबने को है। किरनें ठंढी हो आई हैं। आम की डाल पर कोयल बोली। आँख उठा कर चमेली ने उस तरफ देखा। कोयल न देख पड़ी। लदे आमों की कतार दिखी। देख कर जैसे बड़े प्यार की चीज हो, कुछ देर तक अनमनी सी होकर, औंगी उठाकर फिर बैल हाँकने लगी। शरमा कर सर झुका लिया, जैसे सर उठाते वक्त सीना कुछ ज्यादा उठ गया हो।

बख्तावर सिंह उस की ओर देख रहा था, आँखों में जैसे मज़बूत इरादा लिए हुए। पास के मड़नी वाले कोई कोई चले गए हैं, दूसरे कामों से। पटवारी शहनाई लाल भी चलने

वाले हैं। ज़मींदार के मोड़इत से घोड़िया कसवा रहे है। गॉव डेढ़ मील दूर है। रात को नदी नाले से होकर गुज़रते डरते है। सिपाही खलिहान के अहाते के बाहर तक छोड़ आने के लिए लट्ठ सॅभाल कर बैठा है।

इसी समय लाला बनिया कन्धे पर दोहर रक्खे खलिहान में आए। चमेली की रास देखकर मुस्कराते हुए पूछा, 'यह रास कब ओसाई जायगी ?' फिर आप ही उसके ओसाए जाने का दिन सोच कर दूसरी रास की ओर बढ़े। पटवारी को देख कर राम-राम किया। पटवारी घोड़िया पर सवार थे। साथ में ज़मींदार का सिपाही। चमेली उसी तरह गर्दन झुकाए औंगी लिए बैलों को चलाती रही।

सिपाही पटवारी को छोड़ कर लौटा। सूरज डूब चुका है। दूर, गॉव के दूसरी तरफ आसमान पर ढोरों की खुरी की धूल दिखाई दी। खलिहान कुछ सुनसान है। कुछ दूर एक मड़नी चल रही है। चमेली के नज़दीक के लोग, दिन रहते-रहते, बैलों को बॉधकर चारा-पानी कर आने के इरादे से गॉव गए हुए हैं। मुँह ॲधेरे तक आ जायँगे—ताकने के लिए। तब तक दूसरी मड़नी वाले लॉक और रास देखे रहेगे। ये सब अकेले आदमी हैं। कोई लड़का या लड़की किसी के घर है तो वह ढोर चराने गई है। घरवाली शाम तक भोजन पका रखती है। सवेरे का पकाया हुआ अगर रखा है तो गृहस्थी का दूसरा काम करती है, जैसे कभी सीला बीनती रही या बगीचे के आम

ताकती रही, या बैलों के चारा पानी का इंतज़ाम करती रही। दिन भर के चले-थके बैल जब आएँगे तो उनके आगे रखेगी।

बख्तावर सिंह चमेली के पास आकर खड़ा हुआ। एक दफ़ा इधर उधर देखा, जैसे सब की रक्षा कर रहा हो। फिर लाठी का गूला रास की बग़ल में दे मारा। खँखार कर पूछा—'तेरा बाप कहाँ है, चमेली ?'

हाथ की औंगी धीरे से बैल की पीठ पर मार कर, निगाह बैलों पर गड़ाते हुए, चमेली ने कहा—'लकड़ी काटने गया है।'

'लकड़ी काटने ?' बख्तावर ने हमदर्दी में तअज्जुब करते हुए कहा।

'हाँ', बेमन चमेली ने जवाब दिया।

'लादता है क्या ?'

'नही।'

'फिर ?'

'मजूरी करता है।'

'मजूरी करता है और इतना चलकर। हम कई मर्तबा कह चुके कि तू हमें दूसरा न समझ। हम से जहाँ तक होगा, हम तैयार हैं। तू उसे समझा। वह खरीदे तो गाँव के दस-पाँच बबूल हम दिलवा दें—आसामियों के, नहीं तो रुपया हम अपनी गाँठ से देंगे। वह चाहे तो लौट कर, माल बेच कर रुपया चुका सकता है। यह मजूरी छुट जायगी। हाँ, गाड़ी

का किराया भी न देना होगा। हम सरकारी गाड़ी दे देंगे।' बख्तावरसिंह भेद-भरी निगाह से चमेली को देख कर मुस्कराया।

इस कहने का कोई जवाब हो सकता है, चमेली की समझ में न आया। वह चुपचाप बैल हाँकती गई। एक एक दफे गलियारे की तरफ देख लेती कि उसका बाप आ रहा है या नहीं।

बख्तावर सिंह ने इधर-उधर देखा और फिर अपनी लाठी का गूला रास पर रक्खा। बैलों के साथ चमेली के घूम कर आते ही कहा—'चमेली, तीसरी दफे कह रहा हूँ।'

चमेली कुछ न बोली। बैलों के साथ चक्कर घूमती हुई चली गई। बख्तावर वैसे ही खड़ा रहा। चमेली का मौन उसे बड़ा सुहावना मालूम दिया।

चमेली वैसी ही शांत, बैलों के साथ, फिर आई। अबके ठाकुर से न रहा गया। बढ़ कर चमेली का हाथ पकड़ लिया।

'महादेव भैया रे—ओ महादेव भैया !' चमेली ने आवाज़ दी।

चमेली देख चुकी थी कि महादेव मड़नी कर रहा है। वह कुछ दूर था।

'क्या है ?' महादेव ने मदद के गले से पूछा।

'जल्दी आ', चमेली जैसे अपनी ज़ुबान पर ही उसे ले आई।

महादेव जल्दी से बढ़ा। चमेली की पुकार सुनते ही ठाकुर सनके।

महादेव जब चमेली के पास आया, तब ठाकुर चिल्लाने लगे—'दौड़ो गाँव वालो, महादेव चमेली की रास में क्या कर रहा है।"

ठाकुर की आवाज़ बुलंद थी। गाँव की दीवारों से टकराई। गाँव और बाहर के लोगों ने सुना। कुछ दौड़े भी। महादेव को ठाकुर की आवाज़ से ही चमेली के साथ वाली हरकत मालूम हो गई।

'घबरा न' चमेली से कह कर महादेव ठाकुर की तरफ़ बढ़ा।

ठाकुर लाठी लिये थे। महादेव के हाथ में थी सिर्फ़ अँगी। लेकिन वह पट्ठा था और लड़ता था। ठाकुर के देह में सिर्फ़ दाढ़ी और मूँछों के बाल थे और हाथ में एक तेलवाई लाठी।

महादेव के आते ही ठाकुर ने वार किया। महादेव वार के साथ भीतर घुसा और कमर पकड़कर उठा कर ठाकुर को दे मारा। इसके बाद ठाकुर की बुरी हालत की। ठाकुर को कई जगह चोट आई।

अब तक गाँव के लोग पहुँच गए। मनराखन ने ठाकुर और महादेव को देखते हुए पूछा—'क्या हुआ?'

सीतलदीन मनराखन के बाद पहुँचे। महादेव और

ठाकुर को देख कर ताअज्जुब मे आ मनराखन से पूछने लगे—'क्या है ?'

माधो सुकुल पहुँचने वाले तीसरे थे। देखकर सीतलदीन और मनराखन से कहा—'इन्हें छुड़ाना चाहिए।'

बदलू कुम्हार पहुँचे। देख कर बोले—'जब मालिकों का यह हाल है, तब हमाना कैसा होगा !' और ताअज्जुब में भरे हुए दुःख में वहीं डूब कर रह गए।

महादेव ने अब तक हुब्र भर कर मार लिया था। रद्दे पर रद्दे और घूँसे पर घूँसे चलाये थे। मार कर गालियाँ देता हुआ, अपनी मड़नी की तरफ चला। गालियों मे ही लोगों को समझा दिया कि माजरा क्या था।

चमेली अपनी जगह खड़ी थी। बैलों को खड़ा कर दिया था। वही से देख रही थी।

महादेव के चले जाने पर, सर झुकाए, हमदर्दी से ठाकुर बख्तावर सिंह को पकड़ कर गाँववाले अपने-अपने अँगोछे से उनकी गर्द झाड़ते रहे, और जो कुछ कहा, वह महादेव की तरफदारी मे बिलकुल न था। फिर भी ठाकुर नाराज़ थे कि वक्त पर नहीं छुड़ाया। बैठे हुए, फटी निगाह से इधर-उधर देखते रहे। गर्द झाड़ कर लोग अँगोछे से हवा करने लगे। ठाकुर कुछ होश में आए, होश आने पर जोश आया। बोले—'हम बचाते थे सोचते थे, कि कौन हाथ छोड़े—कौन हाथ छोड़े, लेकिन साले सूद ने अपमान कर ही दिया।

अच्छा देख लिया जायगा, ठकुराइन ने दूध पिलाया है, तो—'

'तुम्हारी उसकी कोई जोड़ है, मालिक ?' सीतल ने ठाकुर को ठंडा करते हुए कहा, 'सेर और स्यार की बरनी।'

ठाकुर कुछ और जोश मे आए। बोले—'अब तुम्हीं लोग देखोगे। और यह जो छोलहट चमेलिया है······ख़ैर, देखा जायगा।'

लोग चमेली के नाम से सन्न हो गए। ठाकुर की बात सही मालूम दी। सब लोग एक-दूसरे को देखते रहे।

बात गॉव के चारों ओर फैल गई। चमेली का बाप दुखिया लकड़ी काट कर गॉव के किनारे आया कि सुना, 'खलिहान मे आफत मची है। चमेली के बारे मे, ठाकुर बख्तावर सिंह को मारा है महादेव ने, ठाकुर पहले चिल्लाए थे कि रास मे महादेव और चमेलिया—'

एक दूसरे ने कहा—'मुँह अँधेरा था। अरे हॉ, कौन कहे, उतनी बड़ी बिटिया।'

दुखिया सूख गया। सीधे खलिहान पहुँचा। मालिकों के खलिहान के पास लोग इकट्ठा थे। वही गया। लोगों को जमींदार की तरफ़दारी करते देखा। गॉव मे भी जैसा सुना था, वह चमेली के खिलाफ़ था। मारे डर के कॉपते हुए दुखिया ने, सर पर बॅधा ॲगोछा उतार कर, ठाकुर के पैरों पर रख दिया। फिर हाथ जोड़ कर बोला—'मालिक, मेरा कोई कसूर नहीं है। दुखी रियाया हूॅ। किसी तरह जीता हूॅ तुम्हारी जूठी

रोटी तोड़ कर। मुझ पर नेक निगाह रक्खो। मर जाऊँगा-नहीं तो, कहीं का न रहूँगा।'

गर्म साँस छोड़ कर बख्तावर बोले—'तेरी वह जुवंटा बिटिया समझती है, देस के धिंगरों को बुलाने के लिये रख छोड़ा है उसे घर में ? भतार को तो चबा गई ब्याह होते ही, इससे नहीं समझ मे आया कि कैसी है ? बैठा क्यों नही दिया किसी के नीचे अब तक ?'

लोगों ने दुखी को पकड़ कर कहा—'तुम अभी जाओ। ठाकुर की तबियत ठीक नही है। बोलते है तो दम फूलता है।'

दुखी अपने खलिहान गया। चमेली बैलों को खड़ा किए चुपचाप खड़ी थी। यह पहला मौका था कि दुनिया अपनी असली सूरत मे उसकी निगाह के सामने आई थी। इस दुनिया को वह सच समझती थी। इस दुनिया के लोगों को सही भाव से उसने काका, दादा, भैया कहना सीखा था। बदले में वैसे ही भाव जसे वह पाती आ रही थी। पर आज कैसा छल है। महादेव को वह भैया कहती थी, पर इस बात को कोई आज मानने के लिये तैयार नहीं।

चमेली को देखते ही दुखी ने कहा—'क्यों री, नाक काट ली न तूने ?'

'अँधेरे मे तुझे अपनी नाक न देख पड़े तो मेरा क्या कसूर है ?' चमेली ने बाप को जवाब दिया।

दुखी हैरान हो गया। कहा—'अरी, जमीन पर पैर

रख कर चल।

'तो तू क्या देखता है—किसी के सर पर पैर रख कर चलती हूँ, जमींदार के सिपाही की तरह ?'

दुखी डरा। फिर जमींदार के प्रताप का सहारा लेकर बोला—'अरी, आँख में माड़ा न छाए—कुछ देख।'

'मैं खूब देखती हूँ। माड़ा छाया है लोगों की आँखों में और तेरी भी।' चमेली रुख बदल कर खड़ी हुई, दूसरी तरफ मुँह करके।

दुखी इस सचाई के सामने अपने आप दबा। फिर उसने गिरते सुर में पूछा—'फिर बात क्या हुई, बता। लोग क्या कहते हैं।'

'लोग कहते हैं अपना सर।। लोग उसी ठकुरवा की ठकुरसुहाती कहते है।'बात यह हुई कि ठाकुर मुझ से कहता था कि तेरा बाप मजूरी क्यों करता है। हम बबूल दिला देंगे। दाम न हों तो अपने पास से दे देंगे। मालिकों की गाड़ी भी देंगे। काट कर कंपू से बेच लाए। दाम फिर—लकड़ी बेच कर—अदा कर दे।'

'तो फिर मालिक रियाया पर और कैसे दया करें ?'

'तेरा सर करे', चमेली की मा ने पीछे से कहा।

चमेली की माँ पास के दूसरे गाँव न्योते गई थी। महादेव को सूझा। ठाकुर को मार कर सीधे उस गाँव पहुँचा। महादेव की माँ भी वहीं थी। चमेली की माँ सुनते ही वहाँ से

चल दी। और समझी, ठाकुर की सरासर शरारत है। चमेली ठाकुर की पहले भी दो दफे की छेड़ माँ से कह चुकी थी।

ताव मे भरी चमेली की माँ चमेली को साथ लेकर घर में चली गई। दुखी दीन भाव से मुस्कें खोल कर वहीं अपने बैलों को बाँधने लगा।

ठाकुर के पास गाँव की करारी भीड़ जमा हुई। चौकीदार पलटू पासी ने रपोट कर देने के लिये कई मर्तबे कहा—गाँव के सब लोग जानते है। गवाही देंगे। थानेदार साहब के आने भर की देर है। मारे जूतों के महादेव के सर के बाल उड़ा दिये जायँगे। सजा तो बाद को होगी ही।

कुछ देर मे जमींदार साहब आए। ठाकुर जमींदार साहब के भैयाचार थे। सूद्र ने पीट लिया, सब से बड़ी चिंता उन्हें यह थी। रिपोर्ट कर आने के लिये चौकीदार से कह कर ठाकुर को चारपाई पर गाँव उठवा लाए। फिर रातों रात कुल बातें मालूम कर मामले को मजबूत करने की तरकीबें सोचने लगे।

(२)

इसी गाँव मे एक पण्डित जी रहते है। नाम शिवदत्त त्रिपाठी। उम्र पचपन के उधर। पेशा अदालत—झूठी गवाही देना, किसी के नाम झूठे तमस्सुक लिखना-लिखवाना, मुकद्दमा लड़ना-लड़वाना, किसानों को अधिक सूद पर रुपये कर्ज देकर ब्याज खाते रहना। गाँव के समाज के एक मुखिया (सर-

कारी नहीं)। अपनी भी काफ़ी ज़मीन कर ली है, दूसरे दूसरे गाँवों मे हिस्सा लेकर। लड़का लखनऊ मे पढ़ाता है। घर के तीन भाई है। ये सब से बड़े हैं। इनसे छोटे नही रहे। इनकी बेवा है, लावारिस। यही मकान की मालकिन है। पं० शिवदत्तराम की धर्मपत्नी नही है। बेवा भयाहू मकान मे थी, उन्हे दोबारा ब्याह करने की ज़रूरत नही हुई। लड़का समझदार है, इसलिये चाची से और बाप से कम पटती है। पंडित जी के छोटे भाई अपनी स्त्री और बच्चों को लेकर कानपुर रहते है। घर मे एक बेवा बहन भी है। दो लड़कियाँ थी। वे अब ससुराल है।

पं० शिवदत्तराम का कहना है, सुबह सोकर उठने के बाद जब तक कुछ कमा न लो, पानी न पियो। गाँव वाले यह जानते है। शिवदत्तराम की आमदनी मे कभी रुकावट नहीं पड़ी। कोई न कोई हाज़िर हो जाता है।

सुबह का वक़्त है। शिवदत्तराम नहा कर पूजा कर रहे है। कुशासनी पर बैठे है, रामनामी ओढ़े। मस्तक पर चन्दन, चोटी सँवार कर बाँधी हुई। गम्भीर मुद्रा, सामने ठाकुर जी। चन्दन और फूल चढ़ाए हुए, ताँबे के बर्तन मे पानी दाँईं ओर रक्खा हुआ। जंपटी से कभी कभीं मुँह मे छोड़ लेते हैं। माला लिये हुए जप रहे हैं।

जगह, उन्हीं की चौपाल, काठ के नक़्क़ाशीदार खम्भों की, पुरानी चालबाली। तिसाही दरवाज़ा, वैसा ही नक़्क़ाशीदार।

बाहर से देखने पर एक दफ़ा निगाह रुक जाती है। पक्का मकान; बड़ा सहन, तीन-चार नीम के पेड़, पक्का कुआँ।

लतखोरे के एक बग़ल, चौपाल मे, शिवदत्तराम जी जप रहे है। दूसरी बग़ल लड़का मनोहर बैठा उन्हें देख रहा है। इसी समय दुखिया आया। चौपाल पर चढ़ कर, भक्ति-भाव से माथा टेक, पंडित जी को प्रणाम किया। फिर उकड़ूँ बैठ कर, हाथ जोड़े हुए, दीनता की चितवन से देखता रहा। शिवदत्तराम जी और गम्भीर हो गए।

कुछ देर बाद, संपटी से पानी चीख कर बहुत ही ठंढे सुरों में पूछा—'कैसे आए, दुखी ?'

पूछने के साथ हाथ की माला चलती गई। फिर होंठ भी हिलने लगे।

दुःखी ने कुछ कहने से पहले रीढ़ सीधी की, फिर एक तरफ़ गर्दन टेढ़ी करके टेट से कई पर्तो मे लपेटा एक रुपया निकाला और कुछ गम्भीरता से सामने रख कर वैसा ही दीन होकर बोला—'तिवारी भय्या, मै तो मरा अब !'

प्रसन्नता को दबाते हुए, दुःखी से हमदर्दी दिखाने के विचार से कुएँ के भीतर से जैसे तिवारी जी ने पूछा—'क्या हुआ, दु.खी ?'

'बड़ी आफत है, भय्या !'

मदद-सी करते हुए तिवारी जी ने पूछा—'बात तो बताओ, महतो ! तुम तो बस ·······'

'पुलिस में रपोट हुई है।'

'किस बात की ?'

'अब क्या कहूँ भय्या !

'पुलिस के आगे तो कहोगे ?,

हाँ, पुलिस के आगे तो कहना ही होगा। तभी तो आया हूँ।'

'तो बताओ, क्या रपोट हुई है, और माजरा क्या है, और तुम्हारा क्या कहना है।'

'मेरा क्या कहना है, मालिक, मैं तो किसान आदमी हूँ। कहना तुम्हे है। जो कुछ है।' दुःखी ने गर्दन उठा कर अपने मुख्तारआम को जैसे देखा।

फटके से दरवाजा खोल कर मालकिन ने डाँटा—'इन्हे कुछ नहीं कहना। चल यहाँ से, बड़ा आया।'

फिर जेठ की तरफ मुँह करके पर्दे के विचार से कान के पास की धोती में हाथ लगाती हुई अपनाव से बोलीं—'तुम्हे नही जाना वहाँ, जिमींदार का मामला है। इस की बेटी चमेलिया को महदेवना के साथ दोख लगा है। सिपाही बख्तावर सिंह ने देखा था। महदेवना ने मारा है। जिमींदार ने रपोट लिखवाई है। कल थानेदार की अवाती है।'

कह कर, कोई बाहरी आदमी देखता न हो, इस विचार से सहन के इधर उधर झाँकने लगी। फिर देहरी पर पैर चढ़ा कर खड़ी हो गई।

पं० शिवदत्तराम जी ने हाथ बढ़ा कर रुपया उठाया, और टेंट मे करके पुजापा समेटने लगे। पुत्र गंभीर भाव से देखता रहा।

'अच्छा, दुःखी अभी जाओ। अभी हमें काम है। दुपहर को बाग मे मिलो, हमारे खलिहान में। ये सब एकांत की बाते है।' कह कर, पुजापा उठा कर, पंडित जी घर के भीतर चले। चलते समय हिम्मत बँधाते हुए कहा—'घबराओ मत।'

घर के भीतर साथ साथ उनकी भैहू भी गई। आँगन में जाकर पंडित जी ने स्नेह की दृष्टि से भैहू को देखते हुए कहा—'औरत का कलेजा बेबात की बात मे दहलता है। अरे, वहाँ जैसा मौका देखेंगे, कहेंगे। सूद है, घबराया है। इनसे ऐसे ही मौके पर रुपया मिलता है। आती लच्छिमी को कोई लात मारता है? वहाँ दो बातों में इसे समझाएँगे कि थानेदार आए है, बस एक रुपये से पार है। जितना दूध होगा, निकलेगा।' रुपए थानेदार को काटते नही। नही तो मामला कौन है। बाव-पट्टी चढ़ गई है। हाथापाई के मामले मे थानेदार का कौनसा काम। सीधे अदालत खुली है। इस लोध को भरोसा है कि हमारी तरफ से चार कहेंगे। हमारा काम भी निकल रहा है। थानेदार से तो खुल्लमखुल्ला बातें होती है। यह अदालत थोड़े ही है कि जिमीदार के खिलाफ चढ़ कर गवाही देनी पड़ेगी। जैसा रुख देखेंगे, लोध को समझा देंगे कि ऐसा हो। मुमकिन

है, लोध के भी अच्छे गवाह हों । मामला लड़ जायगा तो बाहर से लड़ा देंगे । लेकिन यह कमज़ोर है ।'

पंडित जी ने फिर स्नेह की दृष्टि से भैहू को देखा । भैहू अपनी बेवकूफी के ख़याल से लजा कर बोलीं—'ऐ, इतना कौन जानता था ? हमने कहा, कहीं बैठे बैठाए एक बला न गले लगे । हमारे कोई दूसरा बैठा है ?'

फिर कुछ रोनी सूरत बना कर उसी आवाज़ में बोलीं—'कोख का लड़का होता तो कोई एक बात न कहता । तुम्हारा भी होता तो...।'

फिर गंभीर होकर बोली—'दीदी का सुभाव अच्छा न था । तुमसे आज तक मैंने नहीं कहा । यह मनोहरा तुम्हारा लड़का नही है । दीदी मायके से ही बिगड़ी थीं । कभी-कभी वह आता था उस पिछवाड़े वाले बाग मे ।'

फिर शांत होकर बोली—'एक दिन पहर भर रात बीते दीदी बाहर निकलीं । मैंने कहा—क्या है कि हफ्ते मे एक रात इस तरह दीदी अकेली बहिरे जाती हैं । वे निकलीं कि पीछे से दवे पॉव मैं भी चली । ऐन वक्त पर पकड़ ही तो लिया । वह तो भगा, दीदी पैरों पड़ने लगी । आज तक मैंने नहीं कहा । देखो न, तुम्हारा जैसा मुँह थोड़े ही है । न बाप को पड़ा है, न माँ के । उसी का जैसा मुँह है । उजाली रात थी । मैंने अच्छी तरह देखा था उसे ।'

इसी समय बहन बाग़ से आई । भैहू हँस कर दूसरी

दालान की तरफ चलीं।

पं० शिवदत्तराम भाव में डूबे हुए बोले—'बाग़ जल नहीं गया।'

बहन ने सोचा, छींटा उस पर है। उनकी दाल में काला था। बोलीं—'बाग़ क्यों जले, जले घर, जहाँ रोज आग लगाती है।'

भैहू बगुलिन की तरह ननद पर टूटी। दोनों हाथ फैला कर बोली—'अरी रॉड, अपना टेंटर नहीं देखती, दूसरे की फूली देखती है। बहेतू कहीं की, सवेरे से जब देखो धोती उठाए बाहर भगी, कभी बाग़, कभी खेत, कभी इन के घर, कभी उन के घर। यह सब बहानें हैं। क्या मैं समझती नहीं ?'

फिर जेठ की तरफ कनवाँ घूँघट काढ़ कर देखती हुई—'कहे देती हूँ तुम से, यह अब रहेंगीं नहीं घर। खोदैया बिसाते से इसकी आसनाई है। सीधे तुम्हारे मुख मे लगाएँगी कालिख और होंगी मुसलमानिन।'

फिर धमाधम एक कोठरी को चलती हुई—'यह इतना बड़ा सीसा खोदैया के यहाँ से आया है—रोज मुँह देखती है।'

'सुनो, सुनो,' पं० शिवदत्तराम ने बुलाया।

'क्या ?' बदल कर भैहू बोलीं, कुछ नजर बचा कर देखती हुई।

'घर की बात घर ही मे रहने दो।' पं० शिवदत्तराम पूरे विश्वास से बोले—'कोई कुछ करे, दोख नहीं, धर्म न छोड़े।'

फिर भैहू से कहा—'जरा यहाँ तो आओ।'

कह कर बाहर दहलीज की तरफ चले। पीछे से भैहू चलीं, गम्भीर भाव से। दहलीज के एक सिरे पर खिड़की या जनाना रास्ता है, बाहर जाने को। वहीं गए। वहाँ, दरवाजा कुछ खोल कर, खड़े हो गए। भैहू भी जेठ से विश्वास की आँखे मिला कर खड़ी हो गई।

'सुनो,' पंडित जी ने आदर से कहा।

भैहू एक कदम बढ़कर बिलकुल सट कर खड़ी होगई।

'वह दवा जो तुम्हे दी थी, इसे भी पिला दो।' पंडित जी ने शंका और लापरवाही से कहा।

'तुम निरे वह हो,' जेठ की छाती पर धक्का मार कर भैहू ने कहा, 'ब्राह्मण ठाकुरों के यहाँ कोई बेवा वह दवा बिला खिलाए रक्खी भी जाती है। वह गावदी होगी जो रक्खेगा। एक आध के हमल रह जाता है, लापरवाही से। यह सब कर चुकी है।' कह कर स्वस्ति की साँस छोड़ी।

'तो ठीक है, चलो,' पीठ पर हाथ रख कर थपकियाँ देते हुए जेठ ने कहा और सिर ऊँचा उठाए, दरवाजे की तरफ बढ़ गये।

———

नेशनल सर्विस

[नरोत्तमप्रसाद नागर]

—:o:—

"कहिए पण्डित जी, आजकल कैसे चल रहा है ?"

"चल तो सब ठीक रहा है," पण्डित जी ने कहा—"लेकिन यह मेहतरानी का सत्याग्रह बरदाश्त नही होता।"

"मेहतरानी का सत्याग्रह !"

"हाँ, मेहतरानी का सत्याग्रह। पगार कई महीनों से मिली नही है। और सब के तकाजे तो बरदाश्त हो जाते हैं, वे मान भी जाते है, लेकिन मेहतरानी का प्रसंग टेढ़ा है। आज सुबह से वह घर पर धरना दिए बैठी है।"

पत्र-कार्यालयों का—खासकर हिन्दी पत्र-कार्यालयों का—गुरुकुल के विद्यालंकारों और देशी विद्यापीठ के स्नातकों के लिए वही स्थान है, जो विधवाओं के लिए आश्रम का तथा भटके हुओं के लिए सराय का। 'मुझे और न तुझे ठौर' वाला मजमून रहता है। विदेशी सरकार होने के वजह से सरकारी नौकरी मिलती नहीं। बाकी रह जाते है पत्र-कार्यालय तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाएँ। वही उन्हे लाद दिया जाता है और नवाब-बेमुल्क की तरह वे वहाँ गद्दीनशीन होते है।

शशि ऐसे ही एक कार्यालय में काम करता था। यतीन की मृत्यु पर उसने कालेज छोड़ कर घरवालों को नाराज और कालेज के प्रोफेसरों को निराश कर दिया था। घरवालों

को शशि से बहुत-बहुत आशाएँ थी और प्रोफ़ेसर उसे कालेज का नाम चमकाने वाला समझते थे। लेकिन हुआ कुछ नहीं। यतीन की मृत्यु पर कालेज मे हड़ताल हुई और इस हड़ताल ने शशि को नेशनल सर्विस का उम्मीदवार बना दिया।

घर वाले इस पर बहुत नाराज़ हुए। उनकी नाराज़ी उस समय और भी बढ़ी जब शशि गिरफ्तार हुआ। घर-वालों को जब इसका पता चला तो उन्होंने बड़ी मेहनत से जमा की हुए राष्ट्रीय-अराष्ट्रीय, सभी प्रकार की, पुस्तकों को अग्नि के सुपुर्द कर दिया।

शशि को जब इसकी सूचना मिली तो उसे बड़ा दुःख हुआ। साथ ही उसे कुछ सन्तोष भी हुआ। उसने अपने मन मे सोचा—"अच्छा हुआ जो मैने घर छोड़ दिया। ऐसे लोगों के साथ मेरे लिये एक दिन भी टिकना सम्भव नहीं।"

जेल से छूटने के वाद राष्ट्रीयता का द्रुतगामी प्रसार देख शशि स्तब्ध रह गया। बीड़ी के बण्डलों से लेकर चरखा-सङ्घ-द्वारा प्रस्तुत खादी के दूध से सफेद थानों तक—शायद ही कोई चीज़ बची हो जिस पर गांधी जी की 'छाप' न पड़ी हो।

तकली चलाते-चलाते शशि के कतिपय बन्धु कपड़े की मिलों का सञ्चालन करने लगे थे। एक ओर देश, राष्ट्र और त्याग-तपस्या के बल पर व्यवसाय करने वाले लोग थे और दूसरी ओर त्याग-तपस्या की भावनाओं से ओत-प्रोत राष्ट्रीय बेकार।

शशि भी इन्ही राष्ट्रीय बेकारों में से एक था। सरकारी नौकरी वह कर नही सकता था। करना चाहता भी तो शायद मिलती नही। इधर-उधर भटकने के बाद उसने एक कार्यालय की शरण ग्रहण की।

'जागरण' नाम का पत्र इस कार्यालय से निकलता था। मेहतरानी के सत्याग्रह से परेशान पण्डित जी इस पत्र के प्रमुख सम्पादक थे। शशि था उनका सहकारी। साथ में दो विद्या-लङ्कार भी थे। शशि को वे इस प्रकार देखते थे मानो वह किसी दूसरे लोक का जीव हो।

अनायास ही कार्यालय मे दो ग्रुप बन गए थे। एक विद्यालङ्कारों का और दूसरे कालेज के विद्यार्थियों का। शशि अपने को बी० ए० लिखता था वे, अपने को वी० ए०—विद्या+अलंकार। पत्र-कार्यालय उनके लिए जैसे जन्मभूमि था और शशि जैसे एक बे-बुलाया मेहमान—एक दम ग़ैर जिन्स।

लेकिन एक समानता सब मे थी। पैसा न मिलने की वजह से सभी परेशान थे और कम-से-कम इतना तो चाहते ही थे कि यह परेशानी किसी तरह कम हो जाए। मतभेद उपस्थित होता था इस चाह को आगे बढ़ाने के समय।

पैसा मिल नही रहा था। असंतोष और परेशानियाँ बराबर बढ़ती जा रही थी। मेहतरानी के सत्याग्रह से, कम व बेश रूप मे, सभी का पाला पड़ रहा था। आखिर एक अल्टीमेटम लिखा गया। पर विद्यालङ्कारी ग्रुप ने अल्टीमेटम पर दस्तखत करने से

इन्कार कर दिया। कहा—"पैसा मारा थोड़े ही जाता है। मिल जाएगा—आज न सही, कल।"

मतभेद की उपेक्षा कर आखिर शशि ने इन लोगों के दस्तखत भी खुद ही अल्टीमेटम पर बना दिए। अल्टीमेटम मालिक के पास भेज दिया गया।

तीसरे पहर सब को बुलाया गया। शशि सतर्क था और उसने इरादा कर लिया था कि विद्यालंकारी ग्रुप को बोलने न दिया जाएगा। लेकिन इसकी जरूरत न पड़ी। बोलने का काम मालिक महोदय ने स्वयं अपने लिए ही रिजर्व कर लिया। खुद ही वह सवाल करते और खुद ही उसका जवाब भी दे लेते। इससे पहले कि कोई कुछ कहे, वह कहीं-का-कहीं बढ़ जाते।

दुनिया उन्होंने देखी थी। आदमी-आदमी के स्वभाव को पहचानते थे। स्वयं सिद्धहस्त पत्रकार भी थे। प्रभावपूर्ण भूमिका बाँधने के बाद उन्होंने पत्रकार-जीवन के अपने अनुभव सुनाने शुरू किए। उन्होंने बताया कि पैट्रोल और पैसों के अभाव मे अनेक बार जमीन पर चलने में उन्हे कितनी-कितनी दिक्कतों का सामना करना पड़ा है। एकाध बार थर्ड क्लास मे सफर करने की मजबूरी आ पड़ने पर किस बेचैनी के साथ उन्होंने रात काटी, यह भी जाना। पूरे न हो सकने वाले पत्नी के तकाज़ों की सूची भी शैतान की आँत से कम नही थी। उनके फाकों का विवरण तो प्रगतिशील साहित्य की

अमूल्य चीज़ हो सकता।

"आप लोगों को विश्वास नहीं होगा," सिगार से धुआँ छोड़ते हुए मालिक महोदय कह रहे थे—"आज सुबह से मुझे भोजन नहीं मिला है। सिगार के धुएँ में भूख की वेदना को उड़ाने का प्रयत्न करता हूँ, लेकिन......!"

नब्ज़ पहचान कर वह बोल रहे थे। करुणाजनक प्रभाव उत्पन्न करने के बाद उन्हें गुदगुदाने की ज़रूरत महसूस हुई। कहने लगे—"आप लोग युवक है, ब्राह्मण हैं, ब्रह्मचारी हैं, ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि हमारे और आपके सब संकट दूर हो जाएँ।"

चलते-चलाते, शीघ्र ही पैसा दिलाने के आश्वासन के साथ साथ परेशानियों को दूर करने का भी उन्होंने एक उपाय बताया। कहा—"जब दिमाग़ अधिक परेशान हो तो रोटेरी मशीन के पास जाकर खड़े हो जाइए। मशीन की धड़धड़ में सारी परेशानियाँ डूब जाएँगी।"

"ठीक ही कहा है आपने" अन्त में शशि ने कहा—"दफ्तर में परेशानियों को डुबाने वाली धड़धड़ ही नहीं, और भी बहुत कुछ है। मेज़ है, कुरसी है, बिजली का पंखा है और आवाज़ देने पर रामजीवन ठण्डा पानी भी पिला जाता है। इन सब से भी बढ़कर यह कि दफ़्तर में आने पर, आठ घंटे के लिए ही सही, मेहतरानी के सत्याग्रह से भी पीछा छूट जाता है।"

अपने एक मित्र के साथ शशि उन दिनों रहता था। मित्र का नाम था सुशील। नेशनल सर्विस—पी० सी० सी—में वह काम करते थे। त्याग-तपस्या और कम-खर्ची की कसौटी पर कसा-कमाया उन्हें वेतन मिलता था पैंतीस रुपया। इन पैंतीस रुपयों को लेकर रहना होता था—प्रान्तीय सरकार की राजधानी में। -

मेहतरानी के सत्याग्रह और अल्टीमेटम को लेकर शशि और सुशील में काफ़ी देर तक बातें होती रहीं। अन्त में शशि ने अपना निश्चय प्रकट किया—"जो भी हो, मैंने तय कर लिया है कि भविष्य में नौकरियाँ नहीं करूँगा। बेकार रह कर ही जो मुझ से हो सकेगा... ।"

सुशील ने कुछ कहा नहीं। चुपचाप शशि के मुँह की ओर वह इस प्रकार देखते रहे मानों उसने कोई बहुत बड़ा काम किया हो। सुशील को इस तरह अपनी ओर ताकते देख शशि बीच में ही अवाक होकर रह गया।

सुशील विवाहित थे। अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ वह रहते थे। नेशनल सर्विस के पंतीस रुपयों से गुज़र हो नहीं पाती थी। अनेक बार इरादा कर चुके थे कि नौकरी छोड़ दें, लेकिन बीबी और बच्चों की ओर देखकर रह जाते थे। जिस काम को वह पूरा नहीं कर पाते थे, उसे शशि ने पूरा कर दिया—अपनी नौकरी छोड़ कर।

साथ में एक साहब और थे जो रहते थे। मिस्टर कान्त

सब उन्हें कहते थे। सोशलिस्ट वह थे। 'देशी विद्यापीठ के ग्रेजुएट यानी शास्त्री बनने में कसर इतनी रह गई थी कि अभी तक वह अपना थीसिस नहीं दे पाए थे। यह नहीं कि थीसिस वह तैयार नहीं कर सकते थे, वरन् यह कि थीसिस तैयार करने के लिए समय नहीं मिल पाता था।

समय की तंगी से मिस्टर कान्त सदा परेशान रहते थे। सोशलिस्ट वह थे और समाज को बदलने की स्कीमों में इतना व्यस्त वह रहते थे कि थीसिस तैयार करने के लिए समय नहीं मिल पाता था। मातृभूमि उनकी भारत थी और पितृभूमि रूस। ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद कराने के बाद रूस और भारत का गठ-बन्धन कराने की फिक्र में वह रहते थे।

रात के आठ नौ बजे का समय होगा। नेशनल सर्विस से छुट्टी पाकर सुशील घर पर आगए थे। मिस्टर कान्त उनके पास बैठे थे। इधर उधर की बातें करने के बाद मिस्टर कान्त ने कहा—"भाभी से कहना, सुबह ही सुबह उठ कर जब वह अन्दर कमरे में जाएँ तो मुझे जगा दें।"

लगे हाथ यहाँ एक कामरेड का परिचय और दे दें। शून्यचित्त उसका नाम था। मिस्टर कान्त ही उसे कहीं से पकड़ लाए। नौकरी की खोज में देहात से भाग कर वह चला आया था। कई जगह काम करने पर भी पैसा उसे नहीं मिल सका था। कुछ दिन ट्रायल पर, वह काम करता और फिर निकाल दिया जाता। मिस्टर कान्त की एक दिन उससे मुठभेड़

होगई और पूंजीवाद के शोषण से उबारने के लिए उसे वह अपने साथ लेते आए।

तभी से शून्यचित्त भी इस घर का एक अंग बन गया। कह सुन कर एक जगह सात रुपये की नौकरी भी उसे दिला दी गई। विवाह उसका हो गया था। बीबी देहात में रहती थी और खुद यहाँ। साल छै महीने मे एकाध चक्कर-घर का लगा आता था। मजबूरियों ने उसे भी सामूहिक जीवन विताने के लिए बाध्य कर दिया था।

सुबह-ही सुबह जगाने का काम कामरेड शून्यचित्त भी कर सकता था। लेकिन उस समय मिस्टर कान्त को शून्यचित्त का ध्यान नही आया। सुशील से वह बातें कर रहे थे, और सुशील के सामने रहने पर भाभी का जितना ध्यान रह सकता था, उतना शून्यचित्त का नहीं।

सुबह-ही-सुबह अँधेरे-मुँह जगाने की बात सुनकर सुशील ने पूछा—"क्यों कल क्या बात है ?"

"कुछ नहीं," मिस्टर कान्त ने कहा—"नवयुवकों का यहाँ एक ग्रुप संगठित करना है। उसी के लिए एक स्कीम बनानी है। समाज को बदलने के लिए कुछ-न-कुछ करना होगा ही।"

अगला दिन। साँझ का समय। भाभी अपने बच्चों को सँभालने में लगी थी, शशि और सुशील बैठे बातें कर रहे थे तभी कांत ने बाहर से आकर कमरे मे प्रवेश किया। दिन-भर

के कार्य-क्रम के बारे में बातें करने के बाद सुशील ने कान्त से पूछा—"भाभी ने आपको जगा दिया ?"

"हाँ, उन्होंने तो जगा दिया था," मिस्टर कान्त ने कहा—मगर मैं जागा हुआ भी सोया पड़ा रहा।"

"तो फिर तुम्हें जगाना व्यर्थ गया।" सुशील ने कहा।

"हाँ, ऐसा ही समझिए," कान्त ने कहा—"भाभी ने कुछ जगाया ही इस तरह कि जागने से अधिक सोने को जी चाहता रहा। मुझे ऐसा लगा मानो भाभी बेगार काट रही हो। मेरे पास तक आईं और जाने क्या गुनगुनाकर चली गईं।"

भाभी ने दोबारा-तिबारा जगाने का कष्ट नहीं किया, इस लिए उस दिन का जागरण अधूरा ही पड़ा रह गया। मिस्टर कान्त को इससे बड़ी निराशा हुई कि भाभी में उत्साह नाम की वस्तु जरा भी नहीं है। उन्होंने अनुभव किया कि युवकों का संगठन करने से पहले भाभी-सम्प्रदाय को—अर्थात स्त्रियों को—चेतन करना होगा।

मिस्टर कान्त लगन के पक्के थे। भाभी-जागरण को पूरा करने के लिये क्रम से नारी-जागरण-सम्बन्धी अनेक पुस्तकों को जमा करना उन्होंने शुरू कर दिया। जहाँ भी जाते थे, स्त्रियों के जागरण को लेकर वह बातें करते थे और कदम-क़दम पर उन्हें समाज को बदलने की जरूरत महसूस होती थी।

एक दिन आकर शशि से वह कहने लगे—"कोई ऐसा काम बताइये जो औरतों के उपयुक्त हो।"

शशि ने पूछा—"क्यों, ऐसे काम की आपको क्या जरूरत पड़ गई ?"

कहने लगे—"आचार्य जी की पत्नी से मैंने कहा था कि आपके पति तो देश-समाज के लिए इतना कुछ करते हैं और आप कुछ भी नहीं करती है। आपको भी कुछ करना चाहिए। जब उन्होंने पूछा कि क्या करें तो मै कोई भी काम उन्हें नहीं बता सका। कुछ न कुछ तो करना होगा ही।"

\+ + + +

समाज को बदलने के लिये मिस्टर कांत के मस्तिष्क में कोई-न-कोई स्कीम हर समय तैयार होती रहती थी। समय-असमय की चिन्ताओं से युक्त हो कर कुछ न-कुछ करने के लिये मिस्टर कांत सदा व्यग्र रहते थे। अड़चनों की भी उनके मार्ग मे कमी नहीं थी। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक—किसी-न-किसी क्षेत्र की कोई-न-कोई बाधा उनके पीछे लगी ही रहती थी।

दिन-भर इधर-उधर घूमने के बाद रात के बारह-एक बजे कुछ लिखने-पढ़ने का उन्हें समय मिलता। रोशनी करने के लिए दीपशलाका नाम की वस्तु की खोज शुरू होती। जैसे-तैसे सब कुछ खोज-खाज कर जब काम करने बैठते तो मालूम होता, लालटेन का तेल अब धोखा देने जा रहा है। मजबूरन शून्य-चित्त अथवा भाभी को सुबह-ही-सुबह जगाने का आदेश देकर सो जाते।

सुबह होने पर जागे-सोये पड़े रहते। कैसे कुछ किया जाए, यही वह सोचते रहते। समाज को बदलने के लिए कुछ न कुछ करने की जो फिर धुन सवार होती तो एकाएक उठ खड़े होते। उतावली में हाथ-मुँह धोते, उल्टे-सीधे कपड़े बदन पर डाल बाहर निकल जाते। खाने-पीने का समय इधर-उधर घूमते बीत जाता। हैरान-परेशान तीसरे पहर के करीब बड़-बडाते हुए लौटते बाहर से—"क्या जीवन है हमारा। न खाने का समय मिलता है, न पीने का, न ही जीवन मे कोई सरसता रह गई है।"

एक दिन, बाहर से लौटने के बाद, शशि के पास आ कर कहने लगे—"भाई शशि, कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे जी बहले, जीवन मे कुछ सरसता आए।"

"कहा तो आप से," अनेक बार दिए गए अपने परामर्श को शशि ने फिर दोहराया—"आप शादी कर लीजिए। इससे अधिक सस्ता, सुविधाजनक, निष्कण्टक नुस्खा आज के समाज के पास नही है।"

"इसीलिए तो समाज को बदलने की जरूरत है" मिस्टर कान्त ने कहा—"आप ही बताइए, ऐसी हालत मे हम क्या करे। किसी के घर मे घुस जाएँ, राह चलते किसी को पकड़ लें, अथवा अपने दिल पर 'किराये के लिए खाली है' की तख्ती लगा कर चले।"

जीवन को सरस बनाने की योजनाओं के मिस्टर कान्त

कोई आकार-प्रकार दे भी न पाए थे कि इसी बीच, बराबर वाले मकान में, आकर बस गई मिस भट्टाचार्य। स्थानीय फिल्म कम्पनी में वह काम करती थी। साथ में उसके एक खूसट संरक्षक और एक लड़का भी था। रोज सुबह के समय वह गाने-बजाने का रियाज करती थी, तबला और हार्मोनियम खड़कता था, घुँघरूओं की झंकार से वातावरण गूंज उठता था।

मिस्टर कान्त को मिस भट्टाचार्य जितनी अच्छी लगी, उतना उसका गाना और तबला खड़कना नहीं। स्थिरचित होकर समाज को बदलने वाली योजनाओं को आगे बढ़ाना अब मिस्टर कान्त के लिए कठिन हो गया। हार्मोनियम और तबले का स्वर बाधा बन कर सामने आने लगा।

"यह तो बहुत गड़बड़ है," मिस्टर कान्त ने कहा—यही वक्त तो कुछ सोचने-समझने-करने का होता है और इसी वक्त यह गाना शुरू कर देती है। क्या किया जाए। एक चिट्ठी लिख कर ही मना कर दिया जाए इसे।"

"नहीं, मकान-मालिक से कहना चाहिए कि इन्हें मना कर दे" शशि ने कान्त के प्रस्ताव में संशोधन पेश करते हुए कहा—"मकान-मालिक को साफ-साफ बता देना चाहिए कि यदि किसी दिन कोई दुर्घटना हो गई तो हम जिम्मेदार न होंगे।"

मकान-मालिक से कहा गया तो वह मुस्करा कर रह

गया। इस बीच महाजन-महाव्याधि ने भी कुछ जोर पकड़ा। पैसों के अभाव ने आटे-दाल का भाव बिगाड़ दिया और सप्ताह में तीन दिन चूल्हा ठण्डा रहने लगा। जब-तब मित्रों के यहाँ खाना शुरू किया, उधार का दौर भी चला और नेहतरानी के सत्याग्रह के अनेक रूप फिर-फिर सामने आने लगे।

"इस तरह कब तक चलेगा, मिस्टर कान्त ने कुछ खीज कर एक दिन शशि से कहा—"बेकार रह कर नहीं, वरन् बैंक में कुछ बेलेंस रख कर......!"

अपनी बात को बीच में ही अधूरा छोड़ मिस्टर कान्त ने फिर कहा—"भाई, शशि, चाहे जैसे हो, कहीं-न-कहीं से पैसों का प्रबन्ध करना ही होगा।"

किस-किस से कितना उधार लिया गया, बताते हुए मिस्टर कान्त ने कहा—"पड़ोसी तक को मैं रुपयों के लिए लिख चुका हूँ कि एक पड़ोसी के नाते आपको मेरी मदद करनी चाहिए। इस से तो यह मिस भट्टाचार्य अच्छी है जो नाच-गा कर..."

"तो तुम्हारे पत्र का उन्होंने क्या उत्तर दिया?" बीच में बात काट कर शशि ने पूछा।

"यही कि हम खुद परदेसी है। हम आपकी क्या मदद कर सकते है।" मिस्टर कान्त ने कहा।

जीवन की नीरसता फिर उभर कर आने लगी। बड़ा

सूना-सूना सा लगता। इधर कुछ दिनों से, मिस भट्टाचार्य का रियाज भी बंद हो गया था। हम में किसी का इस ओर ध्यान ही नहीं गया था। मिस्टर कान्त ने सब से पहले इस ओर ध्यान दिया। कहने लगे—"मिस भट्टाचार्य के आने से जीवन मे कुछ सरसता आई थी। वह भी बंद हो गई, न जाने क्या बात है ?"

बाद में पता चला कि वह बीमार है। फिर वह दिन भी आया जब उसकी नौकरी छूटने और सामान लदने की खबर सुनी। वह कम्पनी ही फेल होगई थी जिसमें मिस भट्टाचार्य काम करती थीं। दिन-भर गायब रहने के बाद मिस्टर कान्त ने सब बातों का पता लगाया कि किस प्रकार कम्पनी का रुपया रास रंग मे बरबाद किया गया और किस प्रकार ये लोग मारे गये जो उस कम्पनी मे काम करते थे।

मिस भट्टाचार्य भी उन्हीं मे से एक थीं। कम्पनी के अभिनेता-अभिनेत्रियों को जमा करके मिस्टर कान्त ने एक सभा भी की। कान्त के साथ उस सभा मे शशि भी गया। अभिनेत्रियों की ओर लक्ष्य कर मिस्टर कान्त पूंजीवादी दोहण और शोषण की व्यापकता का दिग्दर्शन करा रहे थे और वे कान्त को इस दृष्टि से देख रही थीं मानो वह..

उस दिन मिस्टर कान्त दिन-भर बाहर रहे। अभिनेत्रियों को यूनियन मे संगठित करने के लिए कैनवेसिंग करते रहे। रात को बारह बजे के क़रीब घर लौटे। आते ही अपने

कागजों को उल्टा-पल्टा। फिर शून्यचित्त को पुकारा—"अमुक कागज़ कहाँ गया?"

"यार बहुत गड़बड़ है। किसी चीज़ का कुछ पता नहीं चलता!" मिस्टर कान्त ने कहा और फिर जैसे सब कुछ भूल कर पहुँच गए सुशील के कमरे में।

सुशील ने पूछा—"कहो, आज कहाँ-कहाँ हो आए?"

"अच्छा, आप सो रहे हैं!" सुशील के प्रश्न का उत्तर न दे, दूसरा प्रसंग शुरू करते हुए मिस्टर कान्त ने चकित स्वर में कहा—"और भाभी भी यहीं हैं। एक दिन रात को आकर मैं देखूँगा कि आप लोग कैसे सोते हैं।"

"इसमें क्या है। यह तो आप अभी देख सकते हैं", अपने संकोच को सहज-स्वाभाविक रूप देने का प्रयत्न करते हुए सुशील ने कहा।

"नहीं, रात को लालटेन लाकर मैं खुद अपनी आँखों से देखूँगा कि आप लोग कैसे सोते हैं।"

इसके बाद सुशील ने मास्टर की तरह बताना शुरू किया—"आधे से ज्यादह पलंग बच्चे घेर लेते हैं, इधर तुम्हारी भाभी सोती है और मैं", आड़े-तिरछे होकर अपने सोने के स्थान, गुञ्जायश और दिशा बताते हुए सुशील ने कहा—"मैं इतने में आजाता हूँ।"

\+ + + +

भाभी के दो बच्चे हैं। दोनों लड़के। एक तीन-चार साल

का, दूसरा दस-बारह महीने का। मिस्टर कान्त दोनों को खिलाते है—छोटे को अधिक। खिलाते खिलाते जब थक जाते हैं अथवा खिलाते-खिलाते, भूली बात की तरह, समाज को बदलने की किसी योजना का कोई सूत्र जब याद आजाता है तो उठ खड़े होते हैं और भाभी के बड़े लड़के को पुकारते है— "आनन्द कहाँ गया ?"

"क्यों, बाहर गया है ?" प्रश्नसूचक दृष्टि से भाभी कान्त की ओर देखने लगती है।

"कुछ नहीं," मिस्टर कान्त कहते है—"इसे नहीं खिलाता।"

भाभी मुस्करा कर छोटे बच्चे को मिस्टर कान्त की गोदी से ले लेती है।

इधर वातावरण में फिर कुछ खिचाव-सा दिखाई पड़ रहा है। दिखाई क्या पड़ रहा है, बल्कि महसूस किया जा रहा है। शून्यचित्त ने सब से पहले इसे प्रकट किया। आकर शशि से कहा—"सुशील बाबू मुझ से नाराज़ हैं। भाभी भी मुझ से नहीं बोलती। कहते है अपना और कान्त बाबू का खाना अलग बनाया करो। मकान बदलने को भी कहते है।"

"हाँ, मकान बदलने को भी कहते है", "शशि ने कहा—"यह तो हम सभी चाहते है कि अलग अलग रहें। लेकिन......?"

"लेकिन मेरा क्या होगा ?" शून्यचित्त ने बीच में

ही बात काट कर कहा और नीची गरदन कर धरती कुरेदने लगा।

इस आशा के सहारे सब ने सामूहिक जीवन अपनाया कि एक दिन आएगा जब सब अपना अपना घर लेकर अलग अलग रहेंगे। महीनों से अलग रहने की कोशिश कर रहे थे, मकान बदलने का प्रसंग भी जब तब उठता रहता था, मगर मकान बदल नहीं पाते थे।

इस बार सामूहिक जीवन पर जो खिंचाव पड़ा था वह पहले से कहीं अधिक तेज था। शून्यचित्त की बातें सुनने के बाद शशि ने सुशील से बातें कीं।

"कान्त की और आपकी बात और है," सुशील ने कहा—"लेकिन यह शून्यचित्त भी वाइफ के साथ मजाक करता है। पास आकर पलंग पर बैठ जाता है। मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता?"

सामूहिक जीवन के दिन क़रीब आ लगे थे—कहें कि खत्म हो चुके थे। पहली को मकान छोड़ने का पक्का तय कर दिया था। लेकिन इस इरादे को अनायास ही बदल देना पड़ा।

एक दिन शशि बाहर लौटा तो उसने देखा मिस्टर कान्त और सुशील किसी बात को लेकर उद्विग्न हो उठे है। उनकी मुख-मुद्रा देखते ही शशि का माथा ठनका। मन मे सोचा—"कही शून्यचित्त ने भाभी के साथ······?"

निकट पहुँचने पर सुशील ने शशि के हाथ में एक

कागज़ दे दिया। शशि ने उसे देखा और वह भी उद्विग्न हो उठा। उसने कहा—"अरे, उसका इतना साहस!"

वह कागज़ मकान-मालिक की ओर से नोटिस था—पहली से मकान छोड़ दो।

"नहीं, यह नहीं हो सकता?" सुशील ने कहा और मिस्टर कान्त के मुँह की ओर देखने लगे?

"हाँ, यह कभी नहीं होगा," मिस्टर कान्त ने कहा—"अब हम किराया भी नहीं देंगे और इसी मकान में रहेंगे। उसे क्या हक है कि……!"

यह सुन कर सब से अधिक प्रसन्नता हुई शान्यचित्त को। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके सिर पर से संकट टल गया हो। मन ही मन उसने तय किया: भाभी से अब वह कभी मज़ाक नहीं करेगा।

——:०:——

खेल, तमाशा और व्यंग

[नरोत्तम प्रसाद नागर]

"बनारस वाली भाग गई!"

श्रीमती जी आज-कल नहीं हैं और बहुत-दिनों के बाद, अस्त-व्यस्त जीवन बिताने तथा उल्टी-सीधी बातें सोचने का अवसर मिला है। श्रीमती जी जब तक रहीं, घड़ी की टिक-टिक की तरह। यह जीवन बँधी गति से चलता रहा। समय

पर खाना, समय पर सोना—गरज यह कि समय पर ही सब कुछ होता था। नपे-तुले जीवन क्रम में जरा व्यतिक्रम होता नही कि श्रीमती जी का माथा ठनक उठता।

"तुम्हारा क्या है," झुँझला कर श्रीमती जी कहती—"तुम तो बीमार बन कर मजे से चारपाई पर पड़ रहोगे मुसीबत तो मेरी है जो.... ।"

मायके के लिए विदा होते समय जितनी अधिक हिदायतें श्रीमती जी दे गई थी, उतना ही अधिक उनका व्यतिक्रम शुरू हुआ। अब न सोने का ठीक था, न जागने का, न खाने का और न पहरने का। मन ही मन यह सोच कर प्रसन्न होता कि यदि श्रीमती जी इस समय आकर देखे तो...!

कभी-कभी यह प्रसन्नता आशंका में भी परिवर्तित हो हो उठती। सोचने लगता सपने में भी यदि श्रीमती जी को यह दिखाई पड़ गया कि मैंने चारपाई थाम ली है तो तुरन्त दौड़ी चली आएँगी। मुझ से विवाह न कर श्रीमती जी को किसी अस्पताल मे नर्स बनकर जीवन बिताना चाहिए था।

लेकिन इस समय रात के दो बजे के करीब, श्रीमती जी की नही, वरन् याद आ रही है बनारस वाली की। न जाने मस्तिष्क की कौनसी अचेतन तह मे से निकल कर गूंज उठा है यह वाक्य—"बनारस वाली भाग गई।"

स्मृति-पटल पर अंकित धुँधले चित्र आज उभर आए है।

वह सरापा लचक थी। चलने-फिरने मे लचक, बातचीत

मे लचक। स्वर अपवाद रूप मे सुन्दर और कामोत्तेजक। बड़ी चंचल। छरहरा बदन और सॉवला रंग। आकृति कोई विशेष सुन्दर नही। उसका समस्त आकर्षण उसकी लचक और कामोत्तेजक स्वर मे था।

वह चलती थी तो सैंकड़ों बल खाती हुई। लगता था कि उसकी दुबली-पतली टॉगे उसके दुबले-पतले शरीर का भार सम्हाल नही पा रही हैं। चुरमुर कर छुहारा और अमचूर हुए हृदय रिमार्क कसते—"यह क्या अटेरन-चाल चलना सीखी है!"

"मुँह तो देखो जैसे कुल्हिया हो," रिमार्कों मे और भी वृद्धि होती—"और उसमें ज़ुबान समायी है गज भर की। पता नही, लौंडो के साथ क्या-क्या फुसफुस किया करती है।"

फिर हम पर ललकार पड़ती—"चले कि नहीं इधर, जब देखो उसी के पास घुसे रहते हैं। इतने बड़े होगए, मगर...!"

भाग्य की वह खोटी थी। अपने लिए ही नही, दूसरों के लिए भी। भाग्य के इस खोटेपन का पता चला उसके विवाहित होने पर।

माता-पिता ने अच्छा घर देख कर ही उसे ब्याहा था। घर भी अच्छा था और लड़का भी। रेशमी कपड़ों की दूकान मज़े मे चल रही थी।

पर वह मनहूस ऐसी आई कि द्विरागमन होते न-होते लड़के को ही खा गई। लड़के की माँ छाती पीट कर रो उठी। जवान-जवान लड़के का गहरा दाग़ था। लेकिन उसकी—बनारस

वाली की—आँखों से एक आँसू तक न निकला। चुपचाप अपने हाथों की चूड़ियाँ तुड़वा, माँग का सिंदूर पुछवा, अपने कमरे मे जाकर पड़ रही। न हिली, न डुली। मोहल्ले भर की औरतें रोने के लिए आयीं, रोते-रोते और आँसू पोंछते पोंछते उनकी चादरों के पल्ले तर हो गए, पर उसकी सूखी आँखों में नमी न दिखाई दी।

"हाय राम, यह कैसी बहू है जो...!" पड़ोसिनें कहना शुरू करतीं और फिर, कहते-कहते, दाँतों तले जीभ काट कर रह जाती।

फिर दुकान में घाटा आया। घर में चोरी भी हुई।

उसके पास निज के काफी गहने-पत्ते थे। चोर आए, घर की सब चीज़ें उठा ले गए, पर उसके गहने-पत्ते बच गए।

लेकिन नहीं, उसके पास फिर भी कुछ न रहा। घर वालों ने उसे घेरा और घेर कर सब कुछ हथिया लिया। उसके पास कुछ भी नहीं रहने दिया गया।

घर में कितने ही देवर थे। व्याहे और बे-व्याहे। उनके लिए वह एक खिलौना थी। वे उस से खेलते थे और खेलना चाहते थे। आँखें उठा कर वह एक बार उनकी ओर देखती और फिर मन मसोस कर रह जाती।

× × × ×

कुछ याद नहीं पड़ता कि क्यों, पर वह मेरठ आई थी। तभी उसे देखा-जाना।

उसके पास घंटों बैठे रहते। जी नहीं भरता। बोलती तो सुना करते, चलती तो देखा करते।

अपना, अपने विवाह और पति का, देवर-देवरानी और सास-ननद का ज़िक्र कर अन्त में कहती—"मैं अपनी एक किताब लिखूँगी।"

"हाँ-हाँ, लिखो न, बड़ी अच्छी किताब होगी तुम्हारी।" मैं कहता।

"नहीं, तुम लेखक हो, तुम्हीं लिखना।"

कुछ देर रुक कर फिर कहती—"लिखोगे न?"

"हाँ।"

"ज़रूर...?"

"हाँ ज़रूर...लेकिन मैं सोचता हूँ.. !"

"क्या सोचते हो तुम?" बीच में ही बात काट कर वह कहती।

"यही कि तुम सचमुच मे एक जीती-जागती किताब हो। तुम्हें देख कर लिखने को नहीं, पढ़ने को.. !"

"चलो हटो, मज़ाक करोगे तो मैं तुमसे नहीं बोलने की।

कहना नहीं होगा कि ऐसा गजब नही हो पाता था।

एक दिन की बात है। देखा कि वह अकेली कमरे मे बैठी है। कुछ उद्विग्न-सी है और आँखों मे आँसू भरे हैं।

"अरे, यह क्या है?"

मेरी आवाज़ सुन वह कुछ चौंकी। फिर जल्दी से उठ

खड़ी हुई और कमरे से बाहर जाने लगी।

"सुनो तो!"

मेरी आवाज़ सुन वह रुकी, एक क्षण मेरी आँखों की ओर देखा, फिर मेरी तरफ बढ़ी—बढ़ती ही आई। सट कर खड़ी हो गई। बोली—"यह लो, मैं आगई।"

"हाँ, तुम आगई," मैंने कहा और फिर कहते-कहते रुक गया। उसकी आँखों के घनीभूत शून्य में मैं जैसे खोया जा रहा था।

सहसा मैं चौक उठा। उसके दोनों हाथ मेरे कंधों का स्पर्श कर रहे थे।

"अरे नही...नही .।" उसके दोनों हाथ अपने कंधे से हटाते हुए मैंने कहा—"नहीं...नहीं.. ।"

एक क्षण उसने मेरे मुँह की ओर देखा। फिर चली गई। कमरे में मेरे मुँह से निकले शब्द गूंजते रहे—"नहीं... नही ..नही...!"

उसका बोलना-चालना अब बहुत कम हो गया। वह मुझे देखती और कतरा कर निकल जाती।

× × × ×

रात के दस बजे होंगे। अपने कमरे में मैं था और श्री थीं। विवाह हुए अभी अधिक दिन नही हुए थे। श्री उन दिनों ज़ोरों पर थीं। पति को अपना बना कर रखने के अनेक नुस्खे न जाने कहाँ कहाँ से सीख कर आई थीं। मैं भी कम नहीं था। सोचता

था, यदि श्री को अभी से दाब कर नहीं रखा तो फिर...!

हाँ तो श्री विद्रोह पर उतरी थीं और मैं हिंसा पर। शब्द-प्रहार को श्री व्यर्थ सिद्ध कर चुकी थी। पाद-प्रहार की बात मैं सोच रहा था। सोच क्या रहा था, कर चुका था।

सहसा किसी के थपथपाने की आवाज़ आई।

"कौन है? मैंने झुँझला कर कहा।

"दरवाज़ा खोलो!"

बनारस वाली की आवाज़ थी। मैंने दरवाजा खोल दिया।

"इस वक्त यहाँ कैसे?"

"अभी बताती हूँ। मैं नहीं जानती थी कि तुम...!"

"हाँ तो क्या नहीं जानती थीं तुम!" बीच में ही बात काट कर किंचित तेज़ स्वर में मैंने कहा।

"कुछ नहीं," नम्र पड़ कर उसने कहा—"बात यह है कि कल मैं जा रही हूँ। तुम से एक बात कहना चाहती हूँ।"

मैं चुप रहा।

"बात नहीं," कुछ रुक कर उसने कहा—"तुम से मैं एक वचन लेना चाहती हूँ। कहो, उसे पूरा करोगे?"

मैं ने स्वीकृति दे दी।

"तो वचन दो कि तुम इन्हें भविष्य में नहीं मारोगे।" संकेत करते हुए उस ने कहा।

मैं अब चुप था।

"मेरा तुम से यही प्रथम और अन्तिम अनुरोध है,"

कुछ क्षण रुक कर उसने फिर कहा—"स्वीकार न करोगे तो मेरी आत्मा को चैन नहीं पड़ेगा।"

भर्राये हुए गले से मैंने वचन दे दिया। दूसरे दिन वह चली गई।

× × × ×

एक वर्ष बाद।

तय हुआ कि इस बार बनारस का ट्रिप लगाया जाय। मैं था और भाई साहब थे। विश्वनाथ जी का दर्शन करने के लिए साथ में नानी भी हो ली।

पर यहाँ हम भाई साहब का कुछ परिचय दे दें।

भाई साहब बड़े हैं। डाँटने-डपटने का उन्हें पूरा अधिकार है और एक दिन था जब वह इस अधिकार का कस कर प्रयोग करते थे। बड़प्पन की लाठी घुमाना उनका काम था और अपने पास तक किसी को नहीं फटकने देते थे। कहते—"जाओ, उधर जा कर खेलो। बड़ों के बीच तुम्हारा कोई काम नहीं।"

आज भी मैं उनके पास जाता, उनका बड़प्पन उभर कर सामने आता। वह मुझे अपने से दूर रखने का प्रयत्न करते और मैं लुक-छिप कर, उनके चारों ओर मँडराया करता। साँझ को, कपड़े-लत्ते से लैस हो कर जब वह बाहर जाते तो एकटक दूर तक, देखता रहता। फिर सोचता—"कहाँ जाते हैं यह ?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर न पा भाभियों के पास जा पहुचता। उनकी आँखें भी जैसे इसी प्रश्न को दोहराती मिलती—"कहाँ जाते हैं यह?"

भाई साहब के कई मित्र थे। सभी विवाहित। सब की पत्नियाँ मिल कर बैठतीं और यह निश्चय करने का प्रयत्न करतीं कि किसके पति ने किसको बिगाड़ा है। एक कहती—"पहले तो 'वे' ऐसे न थे। जब से उन्होंने तुम्हारे 'उनका' साथ पकडा, तभी से...!"

"जी हाँ, बड़े दूध-पीते बच्चे हैं न, तुम्हारे 'वह' जो सहज में ही उन्हें कोई बहका लेगा। अगर ऐसा ही है तो क्यों नहीं सम्भाल कर रखती हो उन्हें...!"

"लेकिन वे जाते कहाँ हैं?" अन्त में सारा वाद-विवाद इस एक प्रश्न पर आकर केन्द्रित हो जाता।

"तुम्ही जाकर कुछ पता लगाओ," और कोई मार्ग न देख भाभी ने मुझ से कहा—"चुपचाप जाकर देखना, कहाँ जाते हैं ये लोग?"

भाई साहब को जब इसका पता चला तो बहुत नाराज़ हुए। कहने लगे—"हम ऐसी जगह जाते हैं जहाँ तुम्हारे फरिश्ते भी नही पहुँच सकते!"

बात सही थी। लेकिन इसी बीच एक ऐसी घटना हुई जिस ने मुझे बड़े भाई साहब के दल में पहुँचा दिया। वह घटना थी मेरा विवाह। स्वयं भाई साहब ने लड़की को पसन्द

किया था।

श्री के आते ही भाभियों ने उसे घेरा। बहुत कुछ वह मायके से सीख कर आई थी। जो कसर रह गई थी उसे भाभियों ने पूरा कर दिया।

"देखती हो न हमारे उनको। साँझ को जाते हैं और आधी रात के बाद लौटते हैं। अभी से देख-भाल नहीं करोगी तो फिर देवर जी भी...।"

खटपट शुरू हुई और मैं भाई साहब के तथा श्री भाभियों के दल में जा मिली। भाई साहब और मेरे बीच 'बड़प्पन' की जो दो दीवार थी वह टूट कर गिर गई। डाँटते-डपटते वह अब भी हैं, इसका पूरा अधिकार उन्हें है, लेकिन यह अधिकार मिस बाजपेयी, श्यामा, चन्द्रा, मोहिनी या माधवी अथवा आशालता के झिलमिलाते ईयरिंग को देखने और देखते रहने में कोई बाधा नहीं देता। वर्जित और अवर्जित, सभी प्रदेशों का पासपोर्ट बा-आसानी मिल जाता है।

× × × ×

हाँ तो बनारस में हम एक धर्मशाला में ठहरे—मैं, बड़े भाई साहब और नानी। मेरा उद्देश्य था घूमना—नयी नयी चीज़ों के साथ-साथ नयी-नयी जगहों को देखना, नानी का उद्देश्य था विश्वनाथ के दर्शन करना, बड़े भाई साहब थे पथ-प्रदर्शन करने के लिए।

धर्मशाला क्या थी, अन्तर्प्रांतीय जीव-जन्तुओं का

घरौंदा था। पास के कमरे मे दो युवक और तीन युवतियाँ टिकी थीं। खूब हा-हा-ही-ही रहती थी, पर किवाड़ बन्द रहते। मानो छुप कर हँसने-खेलने का अवसर उन्हें पहली बार ही मिला है। लेकिन उनकी यह स्वच्छंदता उन्ही तक सीमित थी। कोई दूसरा पास पहुँचता तो कतरा कर रह जाते।

हमारे आकर्षण के लिए उनका कतराना ही पर्याप्त था।

धर्मशाला के पण्डित जी बहुत घूर-घूर कर उन्हें देखते थे। उन पर कुछ नाराज भी थे। और सब कुछ तो बरदाश्त कर लेते थे, पर युवतियों का सिगरेट पीना और दिन भर किवाड़ बंद किए अन्दर पड़े रहना उन के लिए नाकाबिले बरदाश्त था। कहते—"इन सालों से आज ही कोठरी खाली कराता हूँ।"

लेकिन जब तक हम रहे, कोठरी खाली नहीं हुई।

सामने के कमरे मे एक रईस-पुत्र थे और बड़ी दूर से आए थे। उन की अस्वस्थ वृद्ध माता ने काशी में ही प्राण त्यागने की इच्छा प्रकट की थी इसलिए।

उन की मातृ-भक्ति धर्मशाला-निवासियों की चर्चा और व्यस्तता का विषय बनी हुई थी।

दिन बड़े मज़े मे बीत रहे थे। सब से अधिक आकर्षण था उन युवक-युवतियों को कतराते देखने और इसके लिए बराबर अवसरों का निर्माण करते रहने में। यह चीज़ हमारे लिए एक व्यसन मे परिणत हो गई।

विश्वनाथ जी के मन्दिर में घाट पर, बाजार और सिनेमा में—उन्हें हम पकड़ ही लेते थे।

एक दिन शाम के समय नानी ने कहा—"जाकर एक सुराही तो ले आओ।"

सुराही लेने के लिए सौंदर्य के हाट को पार करना पड़ा। सही सलामत गुज़र गए। लौटे तो भाई-साहब ने इधर-उधर देखा और बोले—"चलते हो?"

"चलो" मैंने कहा—"शरबते दीदार के लिए सुराही भी पास में है।"

इसी मनोरंजक व्यस्तता और निरे आनन्द के बीच यकायक ध्यान आया—बनारस वाली को पकड़ें।

इधर इरादा किया और उधर चल पड़े। बनारस वाली के लिए बनारस की गलियों की खाक छानी—खूब छानी, यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ। कई घण्टे बीत गए, पर बनारस की गलियों की भुल-भुलैयाँ में मकान का पता नही चला। एक गली को पार करके जो निकले तो शाही मस्जिद दिखाई पड़ी और देखा कि धर्मशाला की रौनक - वे युवक और युवतियाँ—मीनार पर चढ़ने की तैयारी कर रहे है।

बनारस वाली दिमाग के किसी पिछले कोने में जा पड़ी।

× × × ×

बनारस से लौटने के कई मास बाद—

"कुछ सुना तुम ने ?"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"जिसके पीछे फिरते थे वह भाग गई।"

"कौन ?"

"बनारस वाली।"

"बनारस वाली...?"

"हाँ बनारस वाली," भाई साहब ने कहा—"सुनते हैं, किसी कहार के साथ भागी है।"

कहार के साथ भाग गई—एक-एक करके सब चित्र आँखो के सामने घूम गए। उसकी बातें, किताब लिखने का उसका अनुरोध, उस दिन की विचित्र भावपूर्ण आँखे, श्री पर कभी हाथ न उठाने का आदेश।

मैं उद्विग्न-सा हो चला।

"भाई साहब अलमारी के पास गए। अलमारी को खोला और दो गिलासों में ह्विसकी उँडेली।

"यह लो," मेरी ओर एक गिलास बढ़ाते हुए उन्होंने कहा।

यन्त्रवत् गिलास मैंने ले लिया और उसे गले के उतार गया।

इतने मे देखा, भाई साहब चैस्टर और टोपी लिए खड़े हैं।

चैस्टर और टोपी मैंने उनके हाथ से ले ली और बदन पर डाल उनके साथ चल पड़ा।

"था वह बड़ा खुशकिस्मत।"

"किस की बात कह रहे हो?"

"उसी कहार की।"

"कहार की?"

"हाँ, अच्छी चीज़ पर उसने हाथ मारा।"

वह भी चुप।

मैं भी चुप।

वाञ्छनीय स्थान पर पहुँच कर भाई साहब ने कहा—"श्यामा, दुर्गा या इकबाल, बोलो कहाँ चलते हो?"

"जहन्नुम में!"

"तो जहन्नुम में ही आओ!"

भाई साहब ने मेरा हाथ पकड़ा और खींचते हुए ऊपर ले गए।

वर्जित प्रदेश

[नरोत्तम प्रसाद नागर]

संसार को सुखी बनाने के लिए लोगों ने अनेक कल्पनाएँ की हैं। सर टामसमूर से लेकर एच०सी० वेल्स तक, अनेक लेखकों ने, सुखी संसार के विचित्र स्वप्न अपने शब्दों में अंकित किए हैं। अपने अनुभव से मनुष्य को सुखी बनाने का मैं ने भी एक उपाय सोचा है। अत्यन्त सरल—न क्रान्ति करने की

आवश्यकता पड़े, न डण्डे खाने की। सहज ही विश्व में भारी परिवर्तन हो जाए। वह यह कि राज्य की ओर से मुनादी करा दी जाए कि कोई भी पहला लड़का पैदा न कर सके। गर्भ मे आते ही पहली सन्तान किसी प्रकार नष्ट कर देनी चाहिए। यह उन लोगों के लिए है जो आधुनिक सन्तति-निरोध से भय खाते हैं। जो निरोध में विश्वास करते हैं, उनके लिए मार्ग और भी सरल है। विवाहित अथवा अविवाहित जीवन की प्रारम्भिक दशा में प्रथम पुत्र उत्पन्न करने की गुंजायश जरा भी नही रहनी चाहिए। उत्तेजित इन्द्रियों की पहली उष्णता के शान्त होने पर ही योग्य—सच्चे अर्थ मे धर्मज-सन्तान उत्पन्न हो सकेगी।

अपने पिता का मैं पहला पुत्र हूँ। इस छोटे-से जीवन मे अनेक पिता के पहले पुत्रों से मै मिल चुका हूँ। सदा ही उन मे एक साम्य का मैं ने अनुभव किया है। अधिकतर उनका चरित्र पिता के विपरीत मुझे मिला है। उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानों यौवन के विकार, पिता के हृदय को हलका करके, माता के गर्भ में विलीन हो गए हैं। इन्हीं विकारों से जड़ जमती है—पहले पुत्र के विष-वृक्ष की। पिता के बीज-रूप विकार पुत्र मे वृक्ष-तुल्य दिखाई देते है। यौवन के उत्ताप के सिवा पिता के पास उस समय और रहता भी क्या है। इसी लिए प्रथम पुत्र का निषेध।

पुत्री का निषेध जान-बूझ कर नहीं किया। प्रथम

पुत्रियाँ संसार के अधिक सुख का कारण होती हैं। यदि किसी वैज्ञानिक प्रक्रिया से यह जाना जा सके कि किस-किस के पहली पुत्री उत्पन्न होगी—तो उससे पहली पुत्री ही उत्पन्न कराई जाए। फिर चाहे वह आजन्म के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत ही क्यों न धारण कर ले। पिता की पहली पुत्री जब विषैली नागिन की तरह पुरुष को डसेगी तो वह पानी माँगने योग्य भी न रहेगा। इस मे मुझे जरा भी सन्देह नहीं है। मेरी माँ यदि अपने पिता की पहली पुत्री होती तो उसका इतना शोचनीय अन्त कभी न होता।

माँ की बहुत धुँधली सी याद मेरे हृदय में बनी है। ढाई तीन वर्ष का तब मैं रहा हूँगा। मुझे रात को उनके पास सोने न दिया जाता था। अलग एक पालने मे माँ मुझे दूध पिला कर सुला देती थी। दूध से फूले माँ के गरम स्तनों के पास अपना सिर रख मैं सोने के लिए मचल पड़ता, लेकिन पिता की एक ही डाँट में सीधा हो जाता। मुझे ठीक याद नहीं, पर अनुमान करता हूँ, पिता ने कभी मुझे दो-चार झापड़ जरूर मारे होंगे। मेरे हृदय में उनका ऐसा भय बस गया था कि दूध आदि न पीने पर उनका नाम लेकर माँ मुझे डराया करती थी। माँ के मुँह से उनका नाम सुनते ही मैं भय से काँपने लगता था।

एक दिन कुछ आवाज सुनकर मैं जाग पड़ा। देखा, माँ किसी बात के लिए पिता को मना कर रही थीं और हाथों से उन्हें पीछे धकेल रही थीं। परन्तु एक बार मुँह से शब्द निकलते

ही पिता ने माँ का मुँह बन्द कर दिया। विरोध में उठे हुए माँ के हाथ शिथिल पड़ गये। इसके बाद जो हुआ उसे मैंने कुछ क्षण देखा, परन्तु अकस्मात हृदय मे भय हुआ कि अगर पिता ने देख लिया तो मार पड़ेगी। मैंने चुपचाप आखे बंद कर ली और दम साध कर पड़ रहा।

माँ छरहरे बदन की थी। सुन्दर, सुकुमार, अमीर घर की पली हुई। पिता थे नवजवान, तगड़े बदन के। मुझ पर माँ के व्यक्तित्व की छाप गहरी पड़ी थी। मैंने बोलना बहुत जल्दी सीखा था और तुतलाना बहुत जल्दी छोड़ दिया था। तीसरा बरस बीतते न बीतते मैं साफ साफ बोलने लगा था। दूर से ही फाँद कर माँ को पिता जी की बैठक का सब हाल बता दिया करता था।

दूध पीना मेरा सब छूट गया था। मैंने देखा, माँ धीरे-धीरे रोगी सी होती जा रही है, हर समय वह उदास सी रहतीं। खाना दिन मे एक बार, वह भी बहुत कम, खाती और पिता जी के सामने रोया करतीं। एक रात को माँ जोर से चिल्ला उठीं। मैं सोते से जाग उठा। मैंने देखा, वह गुड़मुड़ी सी खाट पर पड़ी थीं। पिता जी खाट के पास हक्के-बक्के से खड़े थे। उनकी घबराहट देख कर मुझे मन ही मन कुछ प्रसन्नता हुई। परन्तु उन्होंने नौकर को बुलाकर शीघ्र ही मुझे दूसरे कमरे में सुला आने को कहा। दूसरे कमरे में मैं कितनी ही देर तक लोगों के आने-जाने की आहट सुनता रहा। फिर मुझे नींद आगई। यह

आख़िरी रात थी जब माँ को मैंने देखा था।

तीन चार वर्ष की आयु में ही माँ मुझे छोड़कर चली गई थी। इस बात को बीते एक मुद्दत हो गई, किन्तु अब तक मैं उसे भुला नहीं सका हूँ। अभी तक एकाएक सोते-सोते माँ की उस चीख़ को सुनकर जाग पड़ता हूँ। माँ की चीख मेरे हृदय के अन्तरतम प्रदेश में समाकर रह गई है और अवसर पाकर जब-तब प्रकट होती रहती है। पिता के विरोध में उठे हुए माँ के हाथ मेरे जीवन का सन्देश बन कर रह गए हैं। उस समय मैं नहीं समझ सका था कि माँ किस बात के लिए पिता जी को मना करती थी, अपने दुबले-पतले हाथ उठा कर क्यों पिता जी को ढकेलती थी। माँ के उस विरोध का रहस्य अब मेरी समझ में आया है। माँ पिता जी को नहीं, वरन अपनी मृत्यु के दिन को पीछे ढकेलने का प्रयत्न करती थी।

माँ की मृत्यु के बाद मेरे मामा मुझे आकर लिवा ले गए। पिता से छुट्टी पाने पर मुझे प्रसन्नता हुई। मामा जी उसी शहर के रहने वाले थे। शीघ्र ही मैं उन के घर पहुँच गया। मामी ने दरवाज़े पर आकर मुझे अपनी गोदी में उठा लिया और प्यार से कई बार मेरा मुँह चूमा। घर के भीतर एक चटाई पर बिठा कर मेरे आगे कटोरे मे बहुत-सी मिठाई रख दी। वह सब मैं थोड़ी देर में खा गया। मामी के इस व्यवहार से मैं उन के बहुत निकट पहुँच गया।

मामी के बच्चे न होते थे, इस लिए उनका स्नेह मुझ पर और

भी अधिक था। उनका बार-बार अपनी छाती से भींच-भींच कर दबाना मुझे अभी तक याद है। इस छोटे-से जीवन में सुख के इने-गिने दिन ही आए हैं। उन में मामी के साथ बिताए वर्ष अलग, एक लम्बी रोशनी में, झलमलाते दिखाई देते हैं। दोनों ओर उनके अन्धकार है और बीच मे वे। दुनिया सब अपनी थी और मैं उसका राजा था। नियंत्रण क्या है यह मैं भूल गया था और स्वेच्छाचार को ही संसार का नियम मान बैठा था। उस स्वर्ग मे कभी-कभी, यमराज की तरह, पिता की मूर्ति दिखाई देती थी, किन्तु...।

मामा मेरे पिता से बहुत असन्तुष्ट थे। उनका बस चलता तो वह कभी पिता का मुँह न देखते और मुझे सदा उनकी छाया से दूर रखने का प्रयत्न करते। मेरी ओर देखते ही मामा को अपनी बहिन—अर्थात मेरी माँ—की याद हो आती थी। मामा के रोष का पारावार नहीं था। पिता को लक्ष्य कर स्पष्ट शब्दों मे वह कहते थे—"मुझे क्या पता था कि हत्यारे के हाथ में अपनी बहिन का ब्याह कर रहा हूँ। न जाने इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये कितनी योनियों मे मुझे जन्म लेना पड़ेगा।

"अरे नहीं, ऐसी बातें नहीं करते," मुझे अपने हृदय से और अधिक सटाती मामी कहतीं—"तुम्हारी जुबान में तो लगाम नहीं है। जो मन में आता है, कह डालते हो। अगर वह सुन लेंगे तो एक दिन के लिए भी छोटे बाबू को अर्थात मुझे.

यहाँ नहीं छोड़ेंगे।"

"कहने को अब बाकी रहा ही क्या है," मामा कहते—"बहिन जब तक रही, छाती पर पत्थर रख कर सब कुछ देखते रहे। इस डर के मारे कभी कुछ नहीं कहा कि कहीं बहिन को वे और अधिक तंग न करने लगें। लेकिन अब...मैं पूछता हूँ, बहिन के मरते ही उसने जो यह रास-रङ्ग शुरू कर दिया है, वह क्या है। मेरा तो पक्का विश्वास होता जा रहा है कि मेरी बहिन अपनी मौत नही मरी, वरन उसे...।

मामी पूरी बात सुनने का साहस नहीं करती थी। वह सदा इस बात का ध्यान रखती थी कि मामा की बातें मेरे कानों में न पड़ें। एक-दो बार इसमें वह सफल भी हो गईं, लेकिन मामा की अधूरी-पूरी बातों ने मेरे हृदय में एक विचित्र प्रकार की उथल-पुथल मचा दी थी। पिता को लेकर भारी आतंक और साथ-ही-साथ प्रबल उत्कण्ठा मेरे हृदय मे घर करती जा रही थी।

"मामा जी क्या कह रहे थे आज ?" एकान्त मिलने पर मामी के हृदय के निकट खिसकते हुए मैं पूछता।

"कुछ नहीं, पागल हो गए हैं तेरे मामा जी," मामी कहती, "जाने क्या-क्या बकते रहते है। उनकी बातें मेरी समझ में भी नहीं आतीं।"

मामी से जितना ही अधिक मैं अनुरोध करता, उतनी ही अनसमझी वह प्रकट करती। अन्त मे मामी की गरदन में अपनी दोनों बाहें डाल कर कहता—"तुम सब जानती हो, मामी। मुझे

तुम नहीं बताओगी तो मैं खुद पिता जी के पास जाकर...!"

"नहीं-नहीं," मुझे अपनी गोदी में खींचकर कसकर भींचते हुए मामी कहती—"तुझे मैं कहीं न जाने दूंगी।"

मामी के हृदय की धड़कन उस समय और भी तेज हो जाती। बड़े मनोयोग से कान लगा कर मामी के हृदय की उस धड़कन को मैं सुनता था। मेरे जीवन के एक से अधिक सुख के क्षण वही होते थे जब मामी आतंकित होकर मुझे अपने हृदय से लगाती थी और मैं जहाँ तक होता था, मामी के हृदय को और अधिक आतंकित करने का प्रयत्न करता था।

मामी की इच्छा तो यही थी कि मुझे अपने पास से कभी कहीं न जाने दे, लेकिन एक दिन अचानक पिता जी आगए। मामा से उनकी खूब कहा-सुनी हुई और अन्त मे मुझे वह अपने साथ लेते गए।

× × × ×

अपने पिता को मैंने बड़े होने पर पहचाना। बड़े होने पर क्या, उनकी मृत्यु के बाद ही पहचाना। ग़लत हो चाहे सही, अपनी बात पर वह जमे रहते थे। 'न' सुनना उनके स्वभाव के विपरीत था। बचपन में ही उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। बड़े भाई ने, खुद छोटा बनकर, उनका पालन-पोषण किया। बड़े भाई के सब काम बड़े ही बड़े होते थे। अपने छोटे भाई को, छोटी अवस्था से ही, बड़े बाबू कह कर वह पुकारते थे। शिक्षा-दीक्षा भी उन्हों ने बड़े ढंग से ही की और अन्त में पिता के

व्यक्तित्व को जैसे फिनिशिंग टच देने के लिए, बड़े भाई ने उन्हें विलायत भेजा।

विलायत में रहकर पिता का स्वभाव और भी स्वच्छन्द हो गया। इच्छा तो उनकी यही थी कि जहाँ तक हो सके अपने विलायत-प्रवास को दीर्घकालीन बनाते जाएँ, लेकिन इसी बीच, एकाएक, हृदय की गति रुक कर बड़े भाई की मृत्यु हो जाने के कारण, उन्हे वापिस लौट कर घर-गृहस्थी को सम्भालना पड़ा। विवाह उनका पहले ही हो गया था। पर विवाह की बात जाने दीजिए। बंधन नाम की वस्तु को वह कभी स्वीकार नहीं करते थे। चाहे वह विवाह का बंधन हो अथवा अन्य किसी प्रकार का।

विलायत से लौटने पर पिता ने माँ को इस प्रकार देखना शुरू किया, मानो संसार की अन्य लड़कियों की तरह, वह भी एक लड़की हो। वह जैसे भूल गए थे कि विवाह नाम की भी कोई वस्तु होती है। विवाह का नाम लेने पर वह इस प्रकार चकित होकर देखने लगते थे मानो वह कुछ समझ न पा रहे हों—अथवा किसी दूसरे लोक की भाषा में उनसे बात की जा रही हो।

माँ के साथ उनका सम्बन्ध था, लेकिन ऐसा सम्बन्ध तो उनका न जाने कितनी लड़कियों से था। माँ ने यह सब देखा और अन्त में हार कर अपनी आँखे नीची कर लीं। निरीह बन-माँ ने पिता को भी निरीह बना दिया। पिता के विरोध मे उठ-कर नीचे गिर जाने वाले माँ के दुबले-पतले हाथ मेरे हृदय पर

जैसे सदा के लिए अंकित होकर रह गए हैं। पिता और मृत्यु की काली छाया इन दोनों को, एक-दूसरे से अलग करके देखना मेरे लिए जैसे सम्भव नहीं रहा है। रह रह कर मामा के वे शब्द मेरे कानों मे गूंज उठते है—"मुझे क्या पता था कि हत्यारे के साथ मैं अपनी बहिन का विवाह कर रहा हूँ। न जाने इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए कितनी योनियों मे मुझे जन्म लेना पड़ेगा।"

आतंकित हृदय मे, आँखों में आँसू भर कर, पिता के साथ मामी ने मुझे विदा किया। मामी के हृदय की वह धडकन मुझे अभी तक याद है। मैं उनके हृदय से सट कर खडा था और वह, अपने सम्पूर्ण स्नेह से, मेरे सिर पर हाथ रखे, शून्य की ओर देख रही थीं। पिता के साथ चले आने के बाद भी, कई दिन तक, मामी के हृदय की उस धड़कन को, एक विचित्र आनन्द के साथ, मैं सुनता रहा। सच तो यह है कि वह मामी की ही नहीं, स्वयं मेरे हृदय की भी धड़कन थी। मामी की तरह मेरा हृदय भी आशंकित हो उठा था। मुझे प्रतीत हो रहा था कि मैं पिता के नही, वरन किसी ऐसे आदमी के साथ जा रहा हूं जो . ?

पिता के साथ घर आने पर मुझे एक बात और मालूम हुई। वह यह कि केवल मैं ही ऐसा नहीं हूँ जिस पर पिता का भय छाया है, वरन् स्वयं पिता पर भी, और किसी का नहीं वरन मेरा, भय सवार है। यह मुझे बाद में मालूम हुआ। वह मुझ से

अलग-ही-अलग रहते थे। पास आते भी तो इस तरह मानो वह पिता न होकर कुछ और हों। जिस कमरे में मैं रहता था, उसमें माँ का एक बहुत बड़ा, लाइफ-साइज, चित्र लगा हुआ था। माँ के अतिरिक्त कमरे में और भी बहुत से चित्र लगे हुए थे—सभी महान आत्माओं के। अपनी छाया में नहीं, वरन् जैसे इन चित्रों की छाया में पिता मुझे रखना चाहते थे!

एक-एक करके मैं इन सभी चित्रों को देखता और अन्त में माँ के चित्र पर जाकर मेरी आँखें टिक जातीं। मुझे ऐसा प्रतीत होता मानो माँ का यह चित्र दीवार पर टँगे ढेर-सारे महान पुरुषों पर व्यंग की हँसी हँस रहा हो। सहसा मेरे हृदय मे एक झटका-सा लगता। मन में होता कि सब भावनाओं को छिन्न-भिन्न कर एक ओर फेंक दूँ और पिता से जाकर कह दूँ—"आप दुनिया भर को धोखा दे सकते हैं, लेकिन मुझे धोखे मे नहीं डाल सकते। मैं जानता हूँ कि मेरी रगों में इन महान पुरुषों का नहीं, आपका रक्त दौड़ रहा है। यह एक ऐसा सत्य है जिसे आप. . ।"

× × × ×

ऐसा प्रतीत होता है मानो अंधकार में रखने के लिए ही परमात्मा ने मेरा निर्माण किया था। पिता की आकस्मिक मृत्यु ने मेरे चारों ओर के अंधकार को और भी घना कर दिया। लेकिन नहीं, पिता की मृत्यु एकदम आकस्मिक ही हुई हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। शायद स्वयं पिता ने यह आदेश दे दिया

कि उनकी बीमारी का हाल मुझ से न बताया जाए। मुझे कुछ भी पता न चलता यदि पिता, अपना अन्तिम समय आने से कुछ पूर्व, मुझे बुलवा न भेजते।

संध्या का समय था। कमरे के वातावरण मे मेरा दम घुट-सा रहा था और मेरा हृदय भी भीतर ही भीतर, छटपटा रहा था। इतनी बेचैनी का अनुभव मैंने पहले कभी नहीं किया था। तभी पिता का बुलावा आया। मेरे लिए यह एक अनहोनी सी बात थी। लेकिन मैंने कुछ कहा नही। झटपट उठा और नौकर के साथ हो लिया। पिता के कमरे मे पहुँचा। संकेत से बुला कर पिता ने मुझे पलंग पर अपने पास बिठाया। कुछ देर तक मेरे मुँह की ओर एकदम देखते रहे। मामी की आँखों में भी उस समय ठीक ऐसा ही सूनापन-सा था जब कि उन्होंने मुझे पिता के साथ किया था। ऐसा प्रतीत होता था मानो कुछ कहने के लिए वह साहस बटोर रहे हों।

"तुम्हें जब मैं देखता हूँ," आखिर पिता ने कहना शुरू किया—"तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो बीते जीवन का पाप मेरी आँखों के सामने आकर मूर्त्त हो उठा हो। सच तो यह है कि तुम्हें सच्चरित्र बनाने के लिए नहीं, वरन् उस पाप की स्मृति को अपनी आँखों से परे रखने के लिए ही मैं तुम्हें अपने से अलग रखने का प्रयत्न करता था। तुम्हारी माँ...!

पिता का यह अधूरा वाक्य पूरा नहीं हो सका। मृत्यु जैसे इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी। अपने अन्त समय में

जिस सत्य को पिता प्रकट करने जा रहे थे, वह शायद इतना भारी था कि उनके गले में अटक कर रह गया और प्रयत्न करने पर भी प्रकट होकर न रहा। सच तो यह है कि मृत्यु ने पिता की रक्षा कर ली। ठीक समय पर आकर मृत्यु ने पिता को उस कष्ट से बचा दिया जिसका सामना करने का साहस वह जीवन-पर्यन्त नही कर सके थे।

मृत्यु ने पिता के भौतिक शरीर का ही अन्त किया था, उनकी आत्मा का नहीं। अत्युक्ति न होगी यदि यह कहा जाए कि पिता का वास्तविक जीवन उनकी मृत्यु के बाद से शुरू होता है। पिता के छोड़े हुए सूत्र को आगे बढ़ाने के लिए मैं जीवित हूँ। निषिद्ध फल के समान मेरे जीवन की वक्रगति को स्थिरता प्रदान करने वाली सोमा जीवित है। पिता ने कभी स्वप्न मे भी यह न सोचा होगा कि उनके जीवन का चक्र इस प्रकार पूर्ण होगा। यदि आज वह होते ।

अपनी छाया से अलग रखने का पिता ने जितना ही अधिक प्रयत्न किया, उतना ही अधिक मैं उनके रंग में रँगता गया। जब तक वह जीवित रहे, बराबर सतर्क बने रहे और उनकी यह सतर्कता अपनी परम परिणति पर पहुँची उनकी वसीयत मे। पैसा पतन के मार्ग मे सहायक हो सकता है, इसलिए उन्होंने मुझे अपनी सम्पत्ति से वञ्चित कर दिया था। उनकी सारी सम्पत्ति की अधिकारिणी बनी थी सोमा और एक पहाड़ी पर स्थित उसका नर्सिङ्ग होम !

सोमा का कुछ परिचय मुझे अनायास ही प्राप्त हो गया था। पर उस समय मैं इसकी कल्पना भी न कर सका था कि मेरे जीवन को उद्भ्रान्त बनाने मे वह एक निश्चित पार्ट अदा करेगी। पिता की मृत्यु के बाद मेरी मनस्थिति विचित्र हो गई थी। घर जैसे काट खाने को दौड़ता था। अन्त में तय किया कि कुछ दिन बाहर भ्रमण कर आऊँ। सोचा, पिता जिस पहाड़ पर गर्मियों मे चले जाते थे, मैं भो क्यों न कुछ दिन वहाँ रह आऊँ।

पिता का कमरा उनकी मृत्यु के बाद से वंद पड़ा था। यात्रा के लिए जरूरी सामान, होल्डाल आदि, लेने के लिए मैंने पिता का कमरा खोला। एकाएक मेरे पॉव, मंत्रवश, पिता के लिखने-पढ़ने की मेज की ओर बढ़ गये। मेज के पास एक कुर्सी पड़ी थी। इसी पर मैं बैठ गया। दोपहर का परिपूर्ण आलोक खिडकी की राह अन्दर कमरे में बिखर रहा था। सहसा मेरी दृष्टि मनीऑर्डर के एक कूपन पर पड़ी। रुपया पाने वाले की रसीद थी। उठाकर देखने लगा। पाने वाली का नाम लिखा था— सोमा देवी।

सोमा देवी – मन ही मन इस नाम को मैंने कई बार दोहराया और सोचने का प्रयत्न करने लगा कि आखिर वह कौन हो सकती है। सोमा नाम लेते ही मुझे माँ का और पिता के विरोध मे उठे हुए माँ के दुबले-पतले हाथों का ध्यान हो आया। निश्चय ही सोमा उन युवतियों मे से एक होगी जो माँ को पीछे धकेल पिता के जीवन मे अग्रिम स्थान पाने मे समर्थ

हो सकी।

सोमा के प्रति मेरे हृदय में प्रबल उत्कण्ठा ने सिर जमाया। मेज की दराज, अलमारी, सन्दूक, सभी कुछ देखना शुरू किया। पिता की अलमारी में बिदेशों से लाई हुई कई एक बहुमूल्य वस्तुएँ रखी थीं। मैंने एक-एक को उठा कर देखा और फिर पूर्ववत, उन्हें यथास्थान सँभाल कर रख दिया। लेकिन एक ग्रीक प्रतिमा को जैसे ही मैं सहेज कर रखने लगा तो उसके पैरों के नीचे मुझे तीन चिट्ठियाँ मिलीं। काँपते हृदय से मैंने चिट्ठियों को उठाया, इस आशा से कि हो न हो, सोमा की होंगी। पर चिट्ठियाँ सोमा की नहीं, माँ की थीं। पिता जब विलायत में थे, तब माँ ने इन चिट्ठियों को लिखा था। साँस रोक कर मैं पढ़ गया—

दुराचार की भी एक सीमा होती है। देखती हूँ, तुम्हारे बड़े भाई की आँखें अब मुझ पर पड़ी हैं। अब समझ में आ रहा है कि तुम्हें विदेश भेजने का उनका मतलब क्या था। एकमात्र ईश्वर ही रक्षा करें तो करें, नहीं तो और कोई उपाय नहीं है। सामने ही, कुछ दूर पर, यमुना का जल छलछला रहा है। कहो तो, उसी में डूब मरूं। नहीं तो फिर तुम्हीं सोचो कि मैं, तुम्हारी वाक्‌दत्ता, उनके किस काम आ सकती हूँ।

दूसरा पत्र

"सुनती हूँ, तुम ने वहाँ रह कर किसी गोरी लड़की से विवाह कर लिया है। मैंने जब यह सुना तो माथे पर दुःख का

आकाश टूट पड़ा। एक ओर तुम्हारा यह हाल है और दूसरी ओर बड़े भाई अपने डोरे डालने मे लगे हैं। पता नहीं विधाता ने मेरे साथ यह कैसी खिलवाड़ शुरू की है और इस का अन्त क्या होगा। मैं जब कभी कुछ सोचने लगती हूँ तो आँखों के सामने अन्धकार के सिवा और कुछ सुझाई नही देता। एक तुम्हारा ही भरोसा है, लेकिन तुम......।" /

तीसरा पत्र

"एक दुःखदायी खबर सुन लो। तुम्हारे बड़े भाई अचानक हार्टफेल होकर स्वर्गधाम सिधार गए हैं। घर पर अब कोई नहीं है। नौकर-चाकरों के हाथ में सब कुछ मटियामेट हुआ जा रहा है। अपनी नयी बीबी से कहना, अभी भी वह तुम्हें यहाँ न आने दे तो अकेली मैं ही भिखारिन नहीं बनूँगी, साथ ही साथ वह भी बनेगी।"

माँ के इन पत्रों को पढ़ कर मेरा हृदय कसक उठा। वेदना के इतिहास की रचना करने के लिए ही माँ ने जैसे जन्म लिया था। पिता विलायत से लौट आए. पर माँ की वेदना का अन्त नही हुआ। मानसिक सन्ताप ने माँ को एक दम खोखला कर दिया था।

माँ की वेदना की साक्षी देने वाले इन पत्रो को, अगले ही क्षण, मैंने टुकड़े-टुकड़े कर खिड़की की राह बाहर फेंक दिया। इस के बाद, अनायास ही मुझे उस गोरी युवती की याद हो आई जिस का माँ ने अपने पत्र में ज़िक्र किया था। वह अब

कहाँ होगी। पिता के साथ क्या वह भी यहाँ चली आई थी। कौन जाने, पिता अपने चारों ओर इतना अंधकार छोड़ गए हैं कि कुछ सुझाई नहीं पड़ता।

लेकिन सोमा ...?"

मैंने मनी आर्डर की रसीद उठाई और सोमा की खोज का निश्चय कर घर से चल पड़ा। एक सोमा ही अब ऐसी रह गई थी जिस के सहारे मैं अपने अतीत के छिन्न-भिन्न सूत्रों को एकत्र कर आगे बढ़ने का प्रयत्न कर सकता था।

× × ×

रास्ते भर एक विचित्र प्रकार के आनन्द तथा उत्सुकता से डूबता-उतराता जब मैं सोमा के नर्सिंग होम के द्वार पर पहुँचा तब संध्या हो चुकी थी। अपना सम्पूर्ण प्रकाश समेट कर सूर्य देवता अन्धकार के आवरण मे मुँह छिपाने की तैयारी कर रहे थे। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मैं किसी ऐसे लोक मे पहुँच गया हूँ जहाँ सूर्य देवता को भी अधिक देर तक टिकने का साहस नहीं होता। विधाता का सम्पूर्ण विधान जैसे इस लोक को अन्धकार के आवरण मे छिपा कर रखने के लिए कटिबद्ध हो गया है।

इस प्रकार के अनेक भावों मे उलझा, अस्त-व्यस्त सा, अपने चारों ओर के वातावरण से परिचित होने का प्रयत्न कर रहा था। तभी शुभ्रवेशा महिला मूर्तिमती संध्या-सी मानो आकाश से उतर कर आगे बढ़ आई और अभिवादन करते

हुए बोली—"चलिए,. अन्दर चल कर पहले नाम लिखाना होता है…।"

मेरी भावनाओं को जैसे एक झटका-सा लगा । इस प्रकार के निर्देश के लिये मैं तैयार नहीं था । मुझे कुछ सट-पटाया सा देख वह आप ही आप कह चली—"घबड़ाइये नहीं सब प्रबन्ध हो जाएगा । यह एक ऐसा प्रदेश है जिस का नाता बाहरी जगत से नहीं है । आप कतई चिन्ता न करें। यहाँ उन पुरुषों को बिल्कुल मुक्त कर दिया जाता है जो इनके नायक होते हैं। भूल-चूक तो सभी के जीवन के साथ लगी रहती है। माता जी ने इसी लिये क्षमा का आश्रय लिया है।"

सहसा मेरी आँखों के सामने पिता की मूर्ति घूम गई। साथ ही साथ पिता के विरोध मे उठे हुए माँ के दुबले-पतले हाथों का भी ध्यान आया और फिर, दूसरे ही क्षण, एक दृश्य एकाकार हो गया। मेरे कानों मे कुछ क्षण तक यही शब्द गूञ्जते रहे—"भूल-चूक तो सभी के जीवन के साथ लगी रहती है। इसी लिए माता जी ने क्षमा का 'आश्रय' लिया है।"

"भूल-चूक…… क्षमा का आश्रय !" मैंने मन ही मन दोहराया—"मैं स्वयं भी तो किसी ऐसी ही एक भूल का परिणाम हूँ। पिता अगर ऐसी भूल न करते तो मैं कहाँ से होता, यह संस्था कैसे जन्म लेती और माता जी को, क्षमा का दामन पकड़ कर, इस प्रकार ऊँचा उठने की सुविधा कैसे प्राप्त होती !"

शब्द गले तक आए और वहीं उलझ कर रह गए। मैं कुछ कह नहीं सका, किन्तु मेरे पाँव, अनायास ही यंत्रवत उसके साथ-साथ आगे बढ चले।

चलते-चलते वह बोली—"अच्छा तो वार्ड मे भरती कराने के लिए 'उन्हें' कब तक ला रहे हैं। 'उन्हें' से मेरा मतलब है—कोई बाल-विधवा, कोई कुँवारी कन्या या...!"

अंधकार की काली छाया घनी होती जा रही थी। मैं अनुभव कर रहा था कि यदि अपने को तुरत संभाल न लिया तो इस काली छाया से भिन्न मेरा कोई अस्तित्व नही रह जाएगा। अपनी सारी शक्ति को बटोर कर मैंने कहा—"आप ग़लती पर हैं सिस्टर। मैं कोई असद् उद्देश्य लेकर यहाँ नही आया हूँ। सोमा देवी मेरी रिश्तेदार होती है। उन्हे ज़रा खबर कर दीजिए, बस!"

"ओह", सिस्टर ने चौंक कर कहा। फिर हम दोनों उसी गेट पर आकर खड़े हो गए।

वह बोली—"सामने जो सफेद बंगला दीख रहा है, वहीं माता जी का निवास स्थान है। अपनी लड़की सोमा देवी के साथ वह इसी मे रहती हैं।"

एकाएक किसी महिला के सामने जाने का मुझे साहस नहीं हो रहा था। सिस्टर की तरह यदि उस ने भी इसी तरह की बाते करनी शुरू कर दी तो...!

"संस्था का परिचालक कौन है—कोई मैनेजर आदि...?"

कुछ खिसियाते हुए मैंने पूछा।

सिस्टर बोली—"परिचालक कहिए या मैनेजर, सब काम सोमा देवी ही देखती हैं। सिर्फ बैंक का काम देखने के लिए सेक्रेटरी देसाई हैं।"

मैं अपना हैंडबैग उठा कर चल पड़ा। अँधेरा काफ़ी हो गया था। जैसे-जैसे मैं निकट होता गया, सफ़ेद दूध-सा बंगला जैसे जैसे मेरी दृष्टि के सामने स्पष्ट दीखता गया। मेरे हृदय की धड़कन भी उसी अनुपात में तेज़ होती गई। जी में हुआ कि भाग जाऊँ, सोमा से बिना मिले भी जीवन चल सकता है, लेकिन...!

मैं आगे बढ़ता ही गया और एक चीड़ के वृक्ष के नीचे जाकर खड़ा हो गया। माता जी के बंगले का द्वार आ गया था। कुछ तिरछे से दालान के छोर पर, आराम कुर्सी पर अधमरी, एक महिला भी दीख पड़ी। मेरे पाँव की आहट पा वह लेटे-ही-लेटे बोली—"अरे मंगल, देख तो कौन है?"

लेकिन मंगल का कुछ पता नहीं था। वह नहीं आया। मैं ही साहस कर आगे बढ़ा। बोला—"नमस्कार!"

अस्त-व्यस्त महिला कुर्सी पर सीधी बैठ कर बोली—नर्सिंग होम तो आप उधर छोड़ आए। ख़ैर, बैठिए। कुछ कहना हो तो कहिए।"

फिर उन्होंने मंगल को पुकारा—"अरे, एक लालटेन तो ले आ भले आदमी।"

बरामदे मे और भी कुर्सियाँ पड़ी थी। एक पर अपना बैग रख दूसरी पर धप से बैठ गया। फिर एक लम्बी साँस लेकर बोला—"रात काटने के लिए यहाँ कोई दूसरा इन्तज़ाम नहीं है?"

"नहीं, यहाँ पुरुषों का काम भरती कराने भर का रहता है। बस, आए और गए। प्रसव के बाद जिन को यहाँ रहना नहीं होता, वे अपने-आप चली जाती हैं।"

इतने मे मंगल लालटेन लेकर आगया। उसके प्रकाश मे चौक कर मैंने जो मुँह ऊपर उठाया तो देखा, महिला आपाद-मस्तक, अनिमेष दृष्टि से, मेरी ओर देख रही है। मैं उस स्थिर दृष्टि को बरदाश्त नहीं कर सका। किसी अज्ञात भय से मेरी दृष्टि अपने-आप नीचे को झुक गई।

महिला उठ कर खड़ी होगई। फिर मंगल से बोली—"मगल, लालटेन लेकर इन्हें होम तक पहुँचा देना, अच्छा?"

यह 'अच्छा' मेरे लिए था, मैं समझा। महिला अन्दर जा रही है, यह भी मैं समझा। लेकिन मेरा गला रुँध-सा गया था। इच्छा होने पर भी मैं कुछ कह न सका।

मंगल लालटेन उठाकर बोला—"चलिए साब!"

प्रयत्न करने पर भी मैं महिला के सामने मुँह न खोल सका था। किन्तु मगल का स्वर सुनकर मेरी खोई हुई वाक् शक्ति जैसे फिर से लौट आई। मैं बोला—"लेकिन मैं तो मोना देवी से मिलने आया हूँ, मंगल।

"अच्छा तो बैठिए साहब," कह कर मंगल चला गया। वह महिला भी छाया-सी बॅगले के भीतर लुप्त होगई थी। अब दालान में केवल मैं था और मेरी अस्त-व्यस्त भावनाएँ। शंका, घृणा, लज्जा और रोमांच से भरा मैं वही एक बात सोच रहा था जिसे प्रकट करने का साहस मे कभी नहीं कर सका। सिस्टर का प्रथम सभाषण अभी तक मेरे कानों में गूंज रहा था। प्रत्येक आगन्तुक केवल वही एक उद्देश्य लेकर आता है, यह कहने पूछने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती।

चर-चर चप्पलों की आवाज सुन कर मे सचेत हो गया। सत्रह-अठारह साल की एक युवती सामने आई और नमस्कार करने के बाद बोली—"मैं सुनती हूँ, आप मुझ से मिलना चाहते हैं।"

"हाँ," मैंने कहा—"तुम से मिलने के लिए मैं राज नगर से आया हूँ।"

"राज नगर......!"

युवती अब सन्न-सी होकर कुर्सी पर बैठ गई। लालटेन का प्रकाश उस के मुख पर पड़ रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो पिता की मूर्ति, हूबहू, मृत्यु के बाद नारी बनकर, मेरे सामने आकर बैठ गई है।

परिपूर्ण आवेग से मैं कह उठा—"मेरी हार्दिक आकांक्षा है कि मेरे सामने जो बैठी है, वह मेरी बहिन हो। सोमा, क्या म यह सम्बन्ध अस्वीकार कर सकती हो ? क्या तुम यह

कहोगी कि मेरी बहिन नहीं हो ?"

सोमा पत्थर की प्रतिमा की तरह निश्चल, बिना कुछ करे, बैठी रही। उसे इस प्रकार कुछ न करते देख मेरा हृदय क्षुब्ध हो उठा। मेरे मुँह से निकला—"पिता ने मेरे साथ बहुत अन्याय किया है। तुम सब लोगों के रहते उन्होंने मुझे इस तरह पाला मानो इस संसार में मेरा और कोई न हो। और तो और, उन्होंने यह तक नहीं अनुभव होने दिया कि मैं उन का पुत्र हूँ। अपने से अलग रख कर, महान पुरुषों के चित्रों की छाया में, उन्हों ने मुझे भूत-प्रेतों की तरह जीवन बिताने को मजबूर किया। पता नहीं, तुम्हें ऐसा क्या भय था जो..... !"

सोमा की मुख-मुद्रा मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह उसी प्रकार, जड़वत, बैठी रही। मेरे शब्द उस के कानों तक पहुँच कर पहले ही मानो शून्य में खोए जा रहे थे। अन्त में खीज कर मैंने कहा—"मरने के बाद पिता एक ऐसी काली छाया छोड़ गये हैं जिस से छुटकारा पाने के लिए मेरा हृदय हर घड़ी धड़कता रहता है। तुम्हे देख कर मेरे हृदय में क्षीण आशा जाग्रत हुई थी कि तुम्हें पाकर उस काली छाया को मैं प्रकाश से भर सकूँगा ?"

सोमा के शरीर ने कुछ हरकत की, ऐसा प्रतीत हुआ मानो उस के ओंठ अब खुलने जा रहे हैं, लेकिन उस ने कुछ कहा नहीं। एक क्षण के लिए अस्थिर होकर वह फिर, पूर्ववत, स्थिर हो गई।

"लेकिन तुम चुप क्यों हो," सोमा की स्थिरता को एक बारगी भंग करने के लिए मैंने कहा—"क्या तुम यह कहना चाहती हो कि मेरी बहिन नहीं हो ?"

सोमा ने अपनी आँखों पर अब अंचल दबा दिया था। रूद्ध से स्वर में सिर हिला कर बोली—"नहीं, मैं आप की बहिन नहीं हूँ...मैं किसी की कोई नहीं हूँ...केवल इतना जानती हूँ कि मैं सोमा हूँ।"

सोमा के यह शब्द सुन कर मैं स्तब्ध रह गया। तभी मैंने अनुभव किया कि अंचल की ओट में मुँह छिपाए सोमा सिसक सिसक कर वह रो रही है। मुझे यह समझने में देर न लगी कि पिता के जीवन का सम्पूर्ण रहस्य, मौन और क्षमा का आश्रय लिए, सोमा के रूप में सिसक-सिसक कर रो रहा है। इसे अब उघाड़ कर क्या होगा, इसे अब देख कर क्या होगा।

"अच्छा तो मैं अब चलता हूँ।" अस्फुट से स्वर मे मैंने कहा और हृदय पर पत्थर-सा रखे चला आया।

× × ×

मैं अब उत्सुक हूँ—हर तरह से उत्सुक। वर्जित प्रदेश नाम की वस्तु का अब मेरे लिए कोई अस्तित्व नहीं रहा है। संसार मे न मेरा कोई है और न ही मैं किसी का हूँ। सोमा से फिर मेरी भेंट हुई—एक दो बार नहीं वरन् अनेक बार—किन्तु दूसरे रूप में।

दूसरी बार जब सोमा से मिला तब मैं अकेला नहीं था।

मेरे साथ एक युवती भी थी। सच तो यह है कि उस युवती को भरती कराने के लिए ही मैं वहाँ गया था। मेरे प्रति सोमा का व्यवहार इस वार भी, पहले की तरह ही, निस्संग रहा। किन्तु उस युवती के प्रति सोमा के हृदय की सम्पूर्ण वेदना उमड़ आ। सोमा और उस युवती को एक साथ देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो जन्म-जन्मान्तर से दोनों एक साथ रहती आई हों।

उस युवती को सोमा ने तुरन्त अपने हृदय से लगा लिया। उस समय सोमा के मुख पर एक ऐसी दैवी आभा खेल रही थी कि मैं एक टक देखता रह गया। उस आभा को देख कर मुझे आन्तरिक सन्तोष प्राप्त हुआ—ऐसा सन्तोष जिसका मोह मैं कभी न छोड़ सका, जिसे पाने के लिये मैंने अनेक युवतियों के साथ क्षणिक सम्बन्ध स्थापित किया और......।

मुझे जन्म देकर पिता ने जिस जीवन-चक्र का सूत्रपात किया था, सोमा को पाकर वह पूर्ण हो गया। जीवन की इस गति पर अकेले में बैठ कर जब कभी मैं सोचता था तो एक विचित्र प्रकार का रस मुझे प्राप्त होता था। सोमा की कल्पना इस रस में और भी तीखापन ला देती थी। सातवीं बार एक युवती को लेकर जब मैं नर्सिंग होम गया तो मुझ से न रहा गया। सोमा के हृदय के अन्तिम प्रदेश की थाह लेने के लिए मैंने कहा—"सोमा, तुम्हारी वजह से ही मुझे इस पथ का

पथिक होना पड़ा है। तुम से मिलने का जैसे यही एक तरीका मेरे पास रह गया है। यदि तुम...!"

"मैं सब जानती हूँ," सोमा ने बीच मे ही बात काटकर कहा—"सब कुछ जानबूझ कर भी न मैं यह जगह छोड़ना चाहती हूँ, न तुम्हारे साथ चल कर घर पर ही रहना चाहती हूँ। तुम जो कुछ कर रहे हो, उसे भी मैं बुरा नही समझती। मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा कर रही हूँ जब यह सम्पूर्ण देश ही इस संस्था के अनुरूप हो जाएगा।"

"इसका मतलब ?" मैं ने कहा।

"मतलब यह कि जब नारी के जीवन मे पुरुष का उपयोग आज की तरह स्थायी—जन्म-जन्मान्तर तक चलने वाला न रहकर क्षणिक हो जाएगा। पुरुष जाति के ध्वंसावशेष पर ही नवयुग का निर्माण होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि..."

"पुरुष-जाति का ध्वंसावशेष।" मन-ही-मन मैंने दोहराया और उल्टे-सीधे भावो से मेरा हृदय भर उठा। कुछ रुक कर फिर मैंने कहा—"हाँ, सोमा, संसार को सुखी बनाने की जो कल्पना मैं कभी-कभी करता हूँ, वह भी ऐसी ही है। राज्य की ओर से मुनादी करा देनी चाहिए कि पहला लड़का कोई भी उत्पन्न न कर सके। पहले लड़के के स्थान पर यदि लड़कियाँ..."

"देखिए, पुरुषों के लिए यहाँ अधिक देर तक टिकने का विधान नही है," बीच में ही बात काट कर सोमा ने कहा—"आप का काम होगया। अब जाइये।"

यह कह कर सोमा तेज़ी से चली गई। कुछ देर मैं खोया-सा खड़ा रहा। फिर सोमा से शीघ्र ही मिलने की आशा हृदय में लिए लौट आया—जीवन के वक्रपथ पर वक्र गति से आगे बढ़ने के लिए।